BED III- CPS 12

हिन्दी का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

Pedagogy of Hindi (Part II)

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-80-0
BED III- CPS 12 (BAR CODE)

BED III- CPS 12

हिन्दी का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद	□**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा
□**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली	□**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल
□**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड	□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
डॉ० गिरीश कुमार तिवारी अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-80-0

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: हिन्दी का शिक्षणशास्त्र (भाग II), पाठ्यक्रम कोड- BED III- CPS 12)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित।

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17

पाठ्यक्रम का नाम: हिन्दी का शिक्षणशास्त्र (भाग II), पाठ्यक्रम कोड- BED III- CPS 12

इकाई लेखक	खण्ड संख्या	इकाई संख्या
सुश्री विजेता कुमारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जमशेदपुर महिला महाविद्यालय, जमशेदपुर, झारखण्ड	1	1 व 2
डॉ० गिरीश कुमार तिवारी अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	1	3
	2	5
डॉ० रमेश कुमार सहायक प्रोफेसर, बी० एड० विभाग, बासमती देवी संकटा प्रसाद महिला महाविद्यालय, वाराणसी	1	4
डॉ० तारकेश्वर गुप्ता सहायक प्रोफेसर, बी० एड० विभाग, महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरदोई, उ०प्र०	1	5
	2	1
श्री मोहित राज कमरा सं०- **13**, मकान सं०- **A/7,** फेज **5,** संडे मार्केट, आयानगर, नई दिल्ली	2	2, 3 व 4

BED III- CPS 12
हिन्दी का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

खण्ड 1		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	भाषा अधिगम के विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांत	2-13
2	भाषा अधिगम के विभिन्न भारतीय सिद्धांत	14-28
3	अधिगम योजना	29-47
4	भाषायी कौशलों का विकास एवं उनका मूल्यांकन: हिन्दी भाषा के विशेष सन्दर्भ में	48-64
5	भाषा शिक्षक: हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में	65-82

खण्ड 2		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	पाठ्यक्रम और पाठ्य समाग्री का निर्माण	84-101
2	हिंदी शिक्षण की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन	102-120
3	हिंदी भाषा में उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु परीक्षण	121-142
4	परीक्षण, मापन एवं मूल्यांकन: हिंदी भाषा के शिक्षण एवं अधिगम के विशेष संदर्भ में	143-160
5	हिन्दी शिक्षण एवं क्रियात्मक अनुसंधान	161-178

खण्ड 1

Block 1

इकाई 1- भाषा अधिगम के विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांत

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भाषा अधिगम के पाश्चात्य सिद्धांत
1.4 जॉन डीवी
1.5 ज्याँ पियाजे
1.6 लिव सिमनोविच व्यगोत्स्की
1.7 नोम चाम्सकी
1.8 स्टीफन क्राशन
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई के माध्यम से भाषा संबंधी पाश्चात्य उपागम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।भाषा संबंधी ज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत से विचारकों, चिंतकों ने अपने- अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। भाषा के अध्ययन की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन है, परंतु पाश्चात्य परंपरा आधुनिक काल में शुरू हुई है। यह भाषा को व्यवस्थित करते हुए एक संरचनात्मक भाषा प्रदान करने का कार्य करता है। 20 वीं सदी में फर्दीनांद- द सस्यूर (1857- 1913, फ्रांस) और ब्लूमफील्ड ने (1887- 1949, अमेरिका) संरचनात्मक भाषा विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसके बाद मनोविज्ञान इसके सहयोगी के रुप में उभर कर हमारे समक्ष आया। भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण व भाषाओं का वर्गीकरण, उनके विभिन्न रूपों का ऐतिहासिक व तुलनात्मक परिवर्तन का अध्ययन शुरू हुआ।

1.2 उद्देश्य

1. आधुनिक भाषा विज्ञान के पाश्चात्य सिद्धांत के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे ।

2. जॉन डीवी(रचनावाद) के शिक्षा संबंधी विचारों से अवगत हो सकेंगे।
3. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांतों के आधार पर बालक की भाषा विकास की अवस्था का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. चोमस्की के रूपांतरण निष्पादन व्याकरण के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. क्राशेन के द्वितीय भाषा से जुड़े सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 भाषा अधिगम के पाश्चात्य सिद्धांत

भाषा एक ऐसी व्यवस्था है , जो समाज के लिए बहुत उपयोगी है। इसे बालक अपनी मातृभाषा में सहज वातावरण में रहते हुए उचित प्रयासों से सीखता है। संरचनात्मक व मनोभाषाविज्ञान दोनों ही भाषा विज्ञान से संबंधित है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान जहां वाक्य की संरचना ,वाक्य विन्यास से जुड़ा है ,वही मनोभाषाविज्ञान में वाक विकार व मानसिक अभिरुचि ,स्मरण के विषय में चर्चा की जाती है। भाषा विज्ञान वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है इसके अंतर्गत भाषा मनोविज्ञान व संरचना की समन्वित प्रणाली पर विचार किया जाता है। बीसवीं शताब्दी आने के बाद संरचनात्मक व मनोभाषाविज्ञान पर बृहद रूप में कार्य व अनुसंधान किए जाने लगे। इनके अंतर्गत मान्य अधिगम सिद्धांत , वाचिक व्यवहार व भाषा के सार्वभौमिक तत्व, भाषा ,संज्ञान व मनोविज्ञान के मिले-जुले भाषिक रूपों के साथ भाषा की प्रवृत्ति और संरचना को समझने के प्रयास को एक साथ अध्ययन का क्षेत्र माना जाने लगा है ।साथ ही बालक के शारीरिक, मानसिक परिवर्तनों ,विकासात्मक अवस्था के अध्ययन को एक सतत प्रक्रिया मानकर भाषा विज्ञान को व्यापक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया जा रहा है।

1.4 जॉन डीवी (1859-1952)

जॉन डीवी अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षाविद व दार्शनिक हैं। उन्होंने हॉपकिंस विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की ।1894 में उन्हें शिकागो विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान एवं शिक्षा विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया । उनकी कुछ प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं- हाउ वी थिंक, एजुकेशन ऑफ टुडे, प्रॉब्लम्स ऑफ मैन, द स्कूल एंड सोसाइटी, स्कूल ऑफ टुमारो, सोर्सेस ऑफ साइंस एजुकेशन, चाइल्ड एंड करिकुलम,साइकोलोजी, एप्लाइड साइकोलॉजी, एक्सपीरियंस एंड नेचर, द थ्योरी ऑफ इंक्वायरी ,फिलॉस्फी एंड सिविलाइज़ेशन ।डीवी के अनुसार शिक्षा अनुभव के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है शिक्षा का असली मकसद बच्चे में सही रुझानों के द्वारा बुद्धि को विकसित करना है, इसलिए उन्होंने अनुकूल वातावरण व परिस्थितियों के निर्माण पर बल दिया है, जो बच्चों में सद्गुणों का विकास करें। शिक्षा जीवन की प्रमुख प्रक्रिया है, इसलिए यह जीवन भर चलती रहनी चाहिए। जॉन डीवी के दर्शन में अनुभव को प्रमुख स्थान दिया गया है। उनके अनुसार अनुभव –"आनुभविक दृष्टि से वस्तुएं मर्मस्पर्शी, कारुणिक , सुंदर, हास्य कर, स्थिर अशांत, सुखद, कष्टकर, निष्ठुर, भव्य, भयंकर होती है- ऐसा उनका आंशिक

स्वभाव होता है।" अनुभव एक दूसरे से संबंधित और समावेशी होते हैं। उन्होंने ज्ञान और अनुभव के सफल सामंजस्य पर ध्यान केंद्रित किया है। साथ ही उनके तार्किक अन्वेषण जैसे सिद्धांत में प्रयोगात्मक तर्कशास्त्र के प्रयोग से हम किसी भी कठिन परिस्थिति से बाहर आ सकते हैं, क्योंकि समस्या को स्पष्ट समझना ,उसके कारण को ज्ञात करना, समझना बहुत आवश्यक है, उसके पश्चात ही हम उस परिस्थिति को स्पष्ट समझते हुए उसे बाहर आने के समाधान को ढूंढ सकते हैं। रचनावाद के अनुसार बच्चे ज्ञान के सृजन के लिए अपने आसपास की घटनाओं का निरीक्षण करते हैं, प्रकृति व लोगों के सानिध्य में रहते हुए बहुत ही संकल्पनाएं बनाते रहते हैं। शिक्षक पहले विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को टटोलने का प्रयास करें कि किसी विषय से संबंधित बच्चों को कितना ज्ञान है।विभिन्न नवीन संकल्पनाओं के लिए बच्चों में प्रश्नों के माध्यम से जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है। डीवी के अनुसार ज्ञान व अन्वेषण सत्य को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक है, और तर्क की विमर्श आत्मक चिंतन प्रक्रिया के द्वारा हम वैज्ञानिक अन्वेषण करते हैं । तर्क मानव व्यवहार का एक प्रकार है और मानवीय समस्याओं को सुलझाने के लिए यह एक 'कारण' है ।इसी कारण इसी वजह से तार्किक अन्वेषण की पद्धति "कारण वाद" के नाम से भी जानी जाती है। डीवी के अनुसार शिक्षा अनुभव के सतत पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है ।इसमें कार्य द्वारा सीखना "लर्निंग बाए डूइंग" पर बल दिया जाता है। बच्चों के सक्रिय रूप जिसमें वह क्रियाशील उत्सुक व जिज्ञासु प्रवृत्ति वाले व्यक्तित्व के रूप में हमारे समक्ष आते हैं, शिक्षा योजना में उनकी इस क्रियाशीलता को ध्यान में रखते हुए बच्चों के अनुभवों को स्वतंत्र रुप से विकसित करने पर हमें ध्यान केंद्रित करना होगा ।इसके लिए शिक्षा प्रदान करने में हमें उचित परिस्थिती व बच्चों के अनुरूप वातावरण तैयार करने पर विशेष ध्यान देना होगा ।बच्चों में उत्साह ,साहस ,सद्गुणों का विकास करने के लिए स्कूली वातावरण में खुलापन, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता , सही सकारात्मक सोच,, व्यवस्थित प्रजातंत्र आत्मक वातावरण तैयार करना होगा। जॉन डीवीके मतानुसार *शिक्षा जीवन के लिए तैयारी* है । बच्चों में चिंतन को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने इसके 5 पद बताए हैं –

1. किसी व्यक्ति समस्या या कठिनाई की अनुभूति
2. संपूर्ण वस्तु स्थिति का विश्लेषण
3. समाधान को खोजना और उसके लिए निश्चित समाधान ढूंढने का प्रयास करना
4. समाधान उपयुक्त है अथवा नहीं इस को जांचना
5. उपयुक्त समाधानों को समस्या सुलझाने में प्रयोग में लाना उसे स्वीकार अथवा स्वीकार करते हुए पुनः निरीक्षित करते हुए नए समाधान को प्रयोग में लाना

उनके अनुसार शिक्षा के दो पक्ष हैं- पहला मनोवैज्ञानिक और दूसरा सामाजिक ।मनोवैज्ञानिक पक्ष में हम बच्चे के व्यक्तित्व , भावात्मक, बौद्धिक विशेषता, , प्रवृत्ति आदि का अध्ययन करते हैं, और सामाजिक पक्ष में हम उसके परिवार,, आस-पड़ोस, समाज- संस्कृति, विद्यालय आदि के सामाजिक वातावरण का अध्ययन करते हैं। उन्होंने अनुसार स्वयं अनुभव द्वारासीखना ,खोज विधि ,सहसंबंध विधि, योजना विधि का अधिकाधिक प्रयोग करने पर बल दिया है। इन सभी विधियों के अतिरिक्त निरीक्षण विधि, आगमन -

निगमन विधि, प्रयोग विधि, पाठ्य सहगामी क्रियाओं, सामूहिक कार्य जिसमें बहुत ही बौद्धिक व विवेकपूर्ण पद्धति का प्रयोग हो उन्हें अधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि इन सभी विधियों के द्वारा बच्चा अपनी योग्यता के अनुसार पूर्व अनुभव के द्वारा सीखे ज्ञान व नवीन तथ्य के बीच में स्वयं तर्क के द्वारा, ज्ञात से अज्ञात के सिद्धांत के आधार पर समस्या का निदान ढूंढने का प्रयास करता है। वर्तमान , रचनावाद बच्चों के इसे इसी ज्ञान का प्रयोग करता है जिसमें बच्चा पूर्व अनुभव के आधार पर स्वयं को नवीन तथ्यों व नए ज्ञान के साथ जोड़ता है।

1.5 जीन पियाजे (1896-1980)

जीन पियाजे (1896-1980)का जन्म स्विट्ज़रलैंड में हुआ। पियाजे, अल्फ्रेड बिने के साथ बुद्धि परीक्षणों पर उनके प्रयोगशाला में काम कर रहे थे, उसी समय उन बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर उन्होंने कार्य काम शुरू किया। उन्होंने 1923 से 1932 के बीच में पांच पुस्तकें प्रकाशित की जिसमें संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की जो विचारधारा है उसे एक अंतर क्रिया वादी विचारधारा मात्र है। पियाजे की के संज्ञानात्मक विकास यह सिद्धांत में बालक की सक्रिय भूमिका मानी गई है। इसलिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय बालक की आवश्यकता प्रेरणा अभिरुचि पर विशेष बल देने की बात कही गई है उनके अनुसार 7 से 11 वर्ष की आयु में शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक को ऐसे व्यक्तित्व में परिवर्तित करना है जो कि सृजनशील, नई खोजों की तरफ प्रेरित होने वाला वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर अपनी बात को समक्ष रखने योग्य हो। ऐसा करने के लिए उन्होंने खेल विधि के माध्यम से बालकों में संज्ञानात्मक विकास को ऊंचे स्तर तक ले जाने में प्रभावी बताया है से उनमें स्वायत्तता ,आत्मविश्वास जैसे गुणों का विकास होता है क्योंकि वह अपनी क्रियाओं द्वारा एक नई समझ विकसित करते हैं।

उन्होंने बच्चों के संज्ञानात्मक विकास पर कार्य किया है। पियाजे के अनुसार बालक में वास्तविक स्वरूप का चिंतन व परिपक्वता स्तर उसके अनुभव पर निर्भर करता है। वह इन दोनों की अंतर्क्रिया द्वारा निर्धारित भी होताहै अतः यह एक अंतक्रिया वादी विचारधारा है। बच्चों में तर्क, चिंतन, जैविक विकास व संरचनात्मक तत्वों पर के विकास पर बल देते हुए उन्होंने संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या की है। उन्होंने चार अवस्था में संज्ञानात्मक विकास का प्रतिपादन किया है यह अवस्थाएं हैं-

1. संवेद चालक अवस्था(जन्म से 18 या 24 माह तक)
2. पूर्व संक्रिया अवस्था(2 से 7 वर्ष तक)
3. स्थूल संक्रिया अवस्था(7 से 12 वर्ष तक)
4. रितिक संक्रिया अवस्था(12 से 19 वर्ष किशोरावस्था तक)

उनके अनुसार संज्ञानात्मक विकास की चारों अवस्थाओं में पहली अवस्था जन्म से 2 वर्ष तक रहती है इसमें बच्चा शारीरिक रूप से चीजों को पहचानने व पकड़ने की कोशिश करने लगता है। पियाजे के अनुसार इस समय तक शिशु का बौद्धिक अथवा संज्ञानात्मक विकास 6 अवस्थाओं से होकर गुजरता है।

पहला प्रतिवर्ती क्रियाओं की अवस्था प्रतिवर्त जो की जन्म से 30 दिन तक रहती है इसमें बालक प्रतिवर्ती क्रियाओं में चूसने का कार्य करता है। दूसरा अवस्था एक से 4 महीने की अवधि तक रहती है इसमें बच्चा शरीर की प्रतिवर्ती क्रियाओं को अनुभूतियों के द्वारा दोहराता है और उन क्रियाओं में अधिक समन्वित क्रियाएं होने लगती हैं। तीसरी अवस्था 4 से 8 महीने की होती है यह इसमें बच्चा सामान को उलटने-पलटने व छूने पर अपना ध्यान अधिक ध्यान देता है और जो चीज उससे मनोरंजक लगती है उस पर अधिक ध्यान देता है चौथा यह अवस्था 8 से 12 महीने की अवधि तक की होती है इसमें वह वस्तुओं की खोज व बड़ों के द्वारा किए गए कार्यों का अनुकरण शुरू कर देता है। पांचवी अवस्था में तृतीय वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था यह अवस्था 12 से 18 महीने की अवधि की होती है इसमें बच्चा प्रयास एवं त्रुटि से सीखने की कोशिश करता है छठी अवस्था , नए साधनों की खोज की अवस्था 18 से 24 महीने की अवधि की होती है इसमें बच्चा वस्तुओं के बारे में चिंतन शुरू कर देता है ।जब कोई वस्तु उसके सामने से हट होती है तो वह अब उसके विषय में सोचना शुरु कर देता है।

दूसरा अवस्था 2 से 4 साल तक की होती है , इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास बच्चे वस्तु, शब्द चिंतन के विषय में विचार करने लगते हैं। मानसिक चिंतन के द्वारा बातों को समझने लगते हैं।तीसरी अवस्था, यह अवस्था 7 वर्ष से शुरू कर 12 वर्ष तक चलती है। इसमें बच्चे दो ठोस वस्तुओं के आधार से संक्रियाएं करके समस्या का समाधान निकालने लगते हैं। उनकी चिंतन एवं तर्कशक्ति अधिक क्रमबद्ध व तर्कसंगत हो जाती है ।

चौथी अवस्था, यह अवस्था 11 साल से प्रारंभ होकर किशोरावस्था तक चलती है इस अवस्था में उनकी चिंतन में क्रमबद्धता आ जाती है। वह किसी समस्या का सामाधान काल्पनिक रूप से करने लग जाते हैं ।उनके चिंतन में वस्तुनिष्ठता व वास्तविकता का समावेश हो जाता है पियाजे के अनुसार दो विषय ऐसे हैं जिन पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है- बच्चों के मन का सिद्धांत और दूसरा सूचना संसाधन उपागम। पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास के अपने सिद्धांत में बच्चों के द्वारा वातावरण को स्वतंत्र रूप में से खोजबीन करके संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया पर बल दिया है ।इसमें परिपक्वता एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उभरता है ।वह अनुभूति पियाजे के सिद्धांत में बालकों के चिंतन में उनकी परिपक्वता एवं अनुभूतियां तुलनात्मक रूप से अधिक महत्वपूर्ण होती है। तर्क व व्यवहारिकता का बालक के व्यवहार का समावेश हो जाता है। वह निगमन तथा आगमन प्रक्रिया द्वारा अपने जीवन से जुड़े व्यापर विचार-विमर्श वर्णन करने लग जाता है। बालक के ज्ञानात्मक विकास वास्तव में आंतरिक और बाहरी होता है ।इसमें अवलोकन व निरीक्षण को समाहित किया जाता है। बालक के ज्ञानात्मक विकास में प्रत्यय निर्माण धीरे-धीरे विकसित होता है। उसका चिंतन, कल्पनाशक्ति, रुचि, ध्यान व इंद्रीय प्रत्यक्षीकरण बोध उसकी आयु के साथ बढ़ते जाते हैं। ज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में टोलमैन व फ्रॉयड ने भी उल्लेखनीय योगदान दिया है।

1.6 लिव सिमनोविच व्यगोत्स्की(1896- 1934)

व्यगोत्स्की, रूसी मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने संज्ञानात्मक एवं सामाजिक सांस्कृतिक संबंध के बीच एक कड़ी जोड़ने का प्रयास किया। उनके अनुसार बच्चे ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं और इसके लिए भाषा

का विकास ,सामाजिक विकास, सांस्कृतिक विकास, शारीरिक विकास सभी उत्तरदाई होते हैं। व्यगोत्स्की के अनुसार बच्चों में विकास में भाषा व सामाजिक विचार कारक विशेष भूमिका निभाते हैं, इसलिए उनके इस संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को सामाजिक- सांस्कृतिक सिद्धांत भी कहा जाता है। उनके अनुसार बच्चों के अंतर व्यक्तिक सामाजिक परिस्थिती व वास्तविक विकास के स्तर जहां तक बच्चे बिना किसी मदद के स्वयं कार्य कर सकते हैं। बच्चों के अंतर व्यक्तिक सामाजिक परिस्थिती व वास्तविक विकास के मध्य अंतर होता है, इसी अंतर को उन्होंने *समीपस्थ विकास का क्षेत्र*, कहा है। जैसे- जैसे बच्चों की क्षमता ,व अभ्यास बढ़ता जाता है निर्देशन की संख्या भी कम होती चली जाती है। उनके अनुसार बच्चे ज्ञान, व्यक्तियों , वातावरण एवं समुदाय से प्राप्त करता है। उनके शब्दों में-" हमारे स्वयं का विकास, दूसरों के द्वारा होता है" उनके अनुसार जैविक कारक मानव विकास में कम किंतु आधारभूत भूमिका निभाते हैं, जबकि सामाजिक कारक उच्चतर संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे भाषा, चिंतन, स्मृति आदि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसका सीधा मतलब यह है कि जहां पर बच्चे कठिन काम को खुद नहीं कर पाते, वहां वे बड़े और कुशल व्यस्क व्यक्तियों से मदद लेते हैं और वही कार्य आसानी से संपादित कर लेते हैं। उनके अनुसार बच्चों के के समीपस्थ विकास का क्षेत्र का दायरा बढ़ाने के लिए अर्थपूर्ण क्रियाओं पर अधिक से अधिक बल दिया जाना चाहिए। उनके अनुसार जब बच्चे अपने से किसी बड़े अथवा विशेषज्ञ के साथ मिलकर सीखने का प्रयास करते हैं ,तो उनकी समस्या निवारण क्षमता व नियोजन क्षमता अधिक बढ़ जाती है। उनके ज्ञान का दायरा ज्यादा विस्तृत हो जाता है विद्यालयों में व्यक्तिक विभिन्नता के स्तर को ध्यान में रखते हुए बच्चों की क्रियात्मक सहभागिता पर जोर दिया जाता है । व्यगोत्स्की ने स्कूलों में विद्यालयों में *सहायता प्राप्त खोज विधि* तथा *साथी संगी के सहयोग* से समीपस्थ विकास का क्षेत्र को और भी विकसित करने की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा है। उनके अनुसार बच्चों में गणित, साहित्य, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान जैसे से महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित शिक्षकों को यह सलाह दी है कि इन विषयों के माध्यम से वे बच्चों की को नई सूचनाएं प्रदान करें, उनकी जिज्ञासा को संशोधित व परिमार्जित करके उनकी संज्ञानात्मक क्रियाओं को और भी बढ़ाएं, जिससे बच्चे अपनी संस्कृति व समाज दोनों से जुड़े। व्यगोत्स्की के अनुसार उनके अनुसार एक शिक्षक चार या पांच छात्रों का समूह एक सहयोगी अधिगम समूह बनाकर एक विषय या परिच्छेद पर बात करें, एक दूसरे को उसका सारांश बताएं, व्याख्या करें, स्पष्टीकरण करें व पूर्व अनुमान लगाने का भी काम करें इस पारस्परिक शिक्षण से बच्चों के समीपस्थ विकास का क्षेत्र और भी विकसित किया जा सकता है। उन्हें ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाने का कार्य करें।

व्यगोत्स्की ने व्यक्तिक भिन्नता, छात्रों की सक्रिय सहभागिता, के अनुसार छात्रों की समस्या को सुलझाने व नियोजन करने की शक्ति को और बढ़ाने व शिक्षण प्रक्रिया को और भी अर्थपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। इस तरह की के सहयोगात्मक अध्ययन से छात्र का सामाजिक अंतक्रिया का दायरा बढ़ जाता है। शिक्षक या कोई भी बड़ा व्यक्ति उसके लिए एक मॉडल के रूप में काम करता है और उनका समर्थन छात्रों के कार्य निष्पादन को और अधिक सफल बनाता है। समीपस्थ विकास का क्षेत्र के लिए उनका मत है कि

बच्चों में पहले से ही क्रमबद्ध ,असंगत, उत्तम व स्वत: प्रवर्तित संप्रत्यय होते हैं। जब भी अपने से बड़े व कुशल व्यक्तियों के संपर्क में ज्यादा समय बिताते हैं तो वही विचार तर्कपूर्ण, क्रमबद्ध तरीके से पूर्ण होते हैं। 1962 में व्यगोत्स्की ने बच्चों में चिंतन व सामाजिक संचार के माध्यम से स्वयं को नियंत्रित करके निजी संभाषण का उपयोग करते पाया। उनके विचार से यह एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।बच्चों के सभी मानसिक कार्य, चिंतन व भाषा स्वतंत्र रूप से ही विकसित होते हैं। बाहरी दुनिया के संपर्क में आने के बाद वह स्वयं से बातचीत करना शुरू कर देते हैं। वह अपनी बात को स्पष्ट बोलने लगते हैं, स्वयं कार्य भी करने लगते हैं ,और उन की आंतरिक संभाषण की क्रिया भी विकसित होने लगती है। इसी के संदर्भ में व्यगोत्स्की का कहना है कि जो बच्चे स्वयं से अधिक निजी संभाषण करते हैं, सामाजिक रुप से अधिक दक्ष होते हैं।

1.7 नोम चाम्सकी (1935)

नोम चोमस्की अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक है। उन्होंने ने 1957 में सिंथेटिक स्ट्रक्चर नामक ग्रंथ लिखा व उनके व्याकरणिक सिद्धांत रूपांतरण निष्पादन व्याकरण के नाम से जाना जाता है। 1965 में आस्पेक्ट ऑफ द थ्योरी ऑफ सिंटेक्स नामक ग्रंथ में संशोधित व्याकरण को दुबारा प्रस्तुत किया गया। भाषा के लिए चोमस्की का कहना है कि भाषा के व्यवहार की क्षमता मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है ।मानव मस्तिष्क की अंतर्निहित क्षमता है ।उनके अनुसार मन भाषा के तत्वों को संशोधित करके नियमों में बांधता है, निर्धारित करता है, और उसके पश्चात हम उस भाषा को अर्जित करते हैं। चोमस्की भाषा की सृजनात्मकता पर विशेष बल देते हैं बच्चे के जन्म के बाद से ही वह सीखने की प्रवृत्ति की ओर बढ़ने लगता है भाषा को सुनता है। मन के अंदर नियमों को अंकित करता जाता है ।इन्हीं अंकित किए हुए अथवा आत्मसात किए हुए नियमों को ध्यान में रखते हुए वह वाक्यों का अर्थ निकलता है । चोमस्की इन आत्मसात किए हुए गुणों को आंतरिक व्याकरण कहते हैं। उनके अनुसार आंतरिक नियमों को व्याकरण के क्रमिक नियमों के समुच्य के रूप में दिखाना आवश्यक है। भाषा में वाक्यों की संख्या वाक्य अनंत है, परंतु उनकी संरचना के साधन प्रयोग का कोई अंत नहीं है। इसलिए भाषा वैज्ञानिक उन सभी साधनो को प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करते हैं जिनसे वाक्य का जन्म होता है। चोमस्की नें 3 नियम निर्धारित किए

1. भाषा के सामान्य सिद्धांत को समझना व सार्वभौमिक व्याकरण का निर्माण करना।
2. वाक्य की निर्माण व उसकी ज्ञान के विकास की प्रक्रिया को समझना।
3. अचेतन ज्ञान का पता लगाने का प्रयास करना जिससे की कोई भी व्यक्ति अपनी भाषा का शुद्ध व सफल प्रयोग करता है।

चॉम्स्की के अनुसार प्रेक्षण की पर्याप्तता , वर्णन की पर्याप्तता इन दोनों गुणों के माध्यम से वक्ता के बोलने की क्षमता का वर्णन भी हो जाता है । इस मॉडल के अनुसार वक्ता के मन की प्रक्रिया , भाषा अर्जन व भाषा- दोषो का विश्लेषण एक क्रमबद्ध तरीके से होता है, जैसे- शब्द ,दो शब्द, वाक्य आदि ।छोटे बच्चे

भी भाषा सीखने के लिए एक क्रम के अनुसार चलते हैं। 5 या 6 वर्ष तक वे अपनी मातृभाषा को पूरे अधिकार के साथ बोलने व समझने लगते हैं। भाषा विज्ञान के आधार पर व विश्लेषण की पर्याप्तता का चरण भी पूरा कर लेता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया तीन गुणों के साथ संपूर्ण होती है इस संपूर्ण प्रक्रिया के लिए दो तरह के कारक भी बताए गए हैं- जहां व्याकरण की दक्षता विशेष है ,वही ग्राह्य व्यवहार का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। 1965 की उनके ग्रंथ में तीन तरह के नियमों की कल्पना की गई है

- पदबंध रचना नियम
- रुपांतरण नियम
- स्वनिमक नियमपदबंध

भाषा वाक्यों का समुच्चय है, और इसे ध्यान में रखकर उन्होंने रूपांतरण प्रजनक व्याकरण की रचना की जिसमें वाक्य विन्यास के दो भाग होते हैं -आधार संघटक \मूल्य वाक् रुपांतर मूल वाक्य की संरचना \ आंतरिक संरचना को जन्म देता है और रुपांतर घटक उसके बाहरी संरचना में परिवर्तन लाता है- जैसे

मोहन ने खाना खाया। (बीज वाक्य)
मोहन के द्वारा खाना खाया गया। (रुपांतरित वाक्य)

रूपांतरण की धारणा में गहन संरचना और बाह्य संरचना की धारणा को व्यक्त किया गया है। चॉम्स्की के प्रारूप के अंतर्गत सभी रूपांतरण नियमों में व्याकरण में अर्थ का गया घटक जोड़ा है।

रचना नियम के अनुसार सही व स्वीकार करने योग्य वाक्य को घटकों में दिखाते हैं। वाक्य संज्ञा पदबंध ,क्रियापद पदबंध जैसे- गीता बाजार गई। इस वाक्य में संज्ञा पदबंध, संज्ञा की ओर ध्यान केंद्रित करता है- गीता व क्रिया पदबंध संज्ञा व क्रिया पदबंध को दिखाता है- बाजार गई। यहां अलग-अलग क्रियाओं के रूप को दिखाया जाता है। रूपांतरण नियम के अनुसार हम वाच्य क्रिया या नाभिकीय बीज वाक्यों का प्रयोग करते हैं जिसमें सकरमक क्रिया का प्रयोग होता है। रूप स्वनिमिक- इस नियम के अनुसार क्रिया के अलावा हम उपरोक्त दोनों नियमों के बाद सामान्य वाक्य के उच्चारण का रूप परिवर्तित हो जाता है। वाक्य विन्यास के तत्वों के अनुसार बाहे संरचना पदबंध नियम वाक्य का अर्थ व स्वरूप सभी वाक्य की संरचना आंतरिक का रुप बदल जाते हैं। 1965 के नियमों का आधार पदबंध रचना नियम और शब्दावली है यह वाक्य में गलत प्रयोग को रोकने का कार्य भी करती है। 1965 के मॉडल में सामान बाह्य रूप विभिन्न आंतरिक संरचना , बाह्य संरचना के विकास पर संरचनात्मक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। उनके मानक सिद्धांत की व्यवस्था को स्थापित करने के बाद भी रूपांतरण विषयों में अर्थ परिवर्तन होता रहता है। इसके लिए उन्होंने विस्तारित मानक सिद्धांत भी प्रस्तुत किया जिसमें रूपांतरण के द्वारा प्राप्त बाहरी संरचना को भी अर्थ निर्णय के लिए स्वीकार किया गया है ।1972 के बाद सिद्धांत को संशोधित विस्तारित मानक सिद्धांत कहा गया है ।इसमें वाक्य विन्यास में बाध्यता और अवशेष सिद्धांत का विकास किया गया ,जिसके अनुसार जब वाक्य का कोई अवयव अपने स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर चला जाए

तो मूल स्थान पर कोई अवयव छोड़ देता है, जिससे उसका संबंध हो। 1981 में इसे सार व्याकरण की संज्ञा दी गई थी।

1981 में लेक्चर इन गवर्नमेंट एंड बाइंडिंग नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने अपने नए उपागम की घोषणा की जिसमें संचरण में भी बदलाव आते रहते हैं ,क्योंकि सारी भाषाई संरचनाओं को एक ही नियम में बांध पाना बहुत ही मुश्किल है । सार्वभौमिक व्याकरण के उद्देश्य से हट कर उन नियमों को अमूर्त स्तर पर विखंडित करके देखा जा सकता है।।इसलिए उन्होंने भाषा के आंतरिक स्तर , वाक्य विन्यास के नियम के अनुरूप बाह्य संरचना में बदलाव को अनुशासन और अनुबंध का सिद्धांत कहा है। इसमें नियमों के व्याकरण की उसकी जगह सिद्धांतों वयवस्था की व्यवस्था प्रक्रिया को रखते हुए उप का प्रयोग किया है इस अवस्था में व्याकरण के नियमों की जगह ऊप व्यवस्थाओं का सिद्धांतों की प्रवृत्ति का प्रयोग किया है जो कि सार्वभौम व्याकरण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य करती है। चॉम्स्की के अनुसार भाषाई सार्वभौम तत्व को लक्ष्य करके सार्वभौम व्याकरणिक संरचना को स्थापित करने का प्रयास किया गया ।सार्वभौम व्याकरण संसार की सभी समाज भाषा का प्रयोग करते हैं। वे सभी भाषा का व्यवहार भी करते हैं सब की भाषा सीखने समझने व व्यवहार करने की वजह है, इसमें बहुत सारे सार्वभौम तत्व मिलते हैं जैसे सभी भाषाओं में संज्ञा, क्रिया ,सर्वनाम आदि शब्द प्रयोग में आते हैं। यह सभी तत्व बोलने की क्षमता, अभिव्यक्ति ,सहनशक्ति , सृजन शक्ति को प्रदर्शित करते हैं। मानवीय अभिव्यक्ति के लिए संगठित वाक्य, जो व्याकरण के अनुरूप भी हो उन्हें ग्रहण करना संभव हो ,उन्हें अध्ययन का आधार बनाया जाता है। चोमस्की नें भाषा सीखने और उसके प्रयोग के संदर्भ में यह कहा है कि मानव किसी भाषा को सीखने के बाद नए नए विचारों व वाक्यों का सृजन स्वयं कर लेता है। उन्होंने भाषा विज्ञान को मनोविज्ञान से संबद्ध माना है उनके अनुसार से भाषा में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के साथ संज्ञानात्मक मनोविज्ञान भी सहायक होगा।

1.8 स्टीफन क्राशन (1941)

स्टीफन क्राशन का का जन्म 1941 में शिकागो में हुआ ।उन्होंने इथियोपिया में शांति सेना में 2 वर्ष कार्य किया जहां उन्होंने आठवीं ग्रेड को अंग्रेजी व विज्ञान की शिक्षा प्रदान की। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से उन्होंने भाषा विज्ञान में पीएचडी प्राप्त की ।उसके पश्चात , वर्तमान में वे साउथ कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में भाषा विज्ञान के प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने लगभग 350 पुस्तकें , लेख लिखे व प्रकाशित किए हैं। वह अपनी द्वितीय भाषा अधिगम सिद्धांत के लिए जाने जाते हैं। द्वितीय भाषा के तौर पर सीखने की प्रक्रिया व अधिगम पर बल देते हुए उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है सेकंड लैंग्वेज एक्यूजीशन। अमेरिका में यह सिद्धांत द्वितीय भाषा के तौर पर अंग्रेजी, जानी जाती है , वैज्ञानिक शोधों की कमी और व्याकरण पर अधिक बल ना देने की वजह से इसे बहुत आलोचनाओं से भी गुजरना पड़ा है। उनका यह सिद्धांत पांच अलग-अलग सिद्धांतों से जुड़कर बना है। इसमें भाषाई दक्षता प्राप्त करने के लिए अधिगम व ग्राह्यता के बीच में संबंध स्थापित करने पर बल दिया गया है। क्राशन के द्वित्व भाषा ग्राह्यता संबंधी सिद्धांत में पांच प्रमुख सिद्धांतों का समावेश है। जिसका प्रयोग भाषा शिक्षण में किया जा रहा है।

प्राकृतिक क्रम सिद्धांत इसके अंतर्गत सीखने वाला व्यक्ति द्वितीय भाषा को पूर्वनियोजित संरचनात्मक आधार पर ही ग्रहण करता है, जिसमें से कुछ तो बहुत ही जल्दी ग्रहण कर लिए जाते हैं। प्राकृतिक क्रम संकल्पना के अंतर्गत छात्र त्रुटि को सुधार करते रहते हैं। जब तक की वह संरचनात्मक तौर पर भाषा को सही ढंग से ग्रहण नहीं करने लगते हैं। छात्रों के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने के लिए भाषा संरचना के व्यवहार के समय उनकी गलतियों को सुधारते हुए सही ज्ञान दिया जाए, परंतु यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि हम भाषा के क्रम को नहीं बदलते हैं। क्राशन के विचार से हम बिना किसी चेतन शील प्रयास के भाषा को बिना किसी मुश्किल के आराम से प्रस्तुत कर सकते हैं ,अथवा बोल सकते हैं। इसके लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में संबंधित अध्याय अथवा परिस्थिति का प्रयोग करने समय यह ध्यान रखें कि उनमें संशोधन किया गया हो।

इनके द्वितीय भाषा ग्राह्यता में मॉनिटर थ्योरी सबसे महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार द्वितीय भाषा में भाषाई कौशल के विकास के लिए ग्राह्यता , अवचेतन व स्व क्रिया द्वारा होती है। यह परिकल्पना तीन प्रकार के मॉनिटर उपयोगकर्ताओं को ध्यान में रखता है: (1) अति-निगरानी वाले उपयोगकर्ता, यानी, जो छात्र वे अपनी सीखा का उपयोग करके हर वाक्य का उत्पादन करते हैं

क्षमता ऐसे बोलने वालों को हिचकिचाहट से बोलना निश्चित है और कोई प्रवाह नहीं है (2) अंडर मॉनिटर उपयोगकर्ता, अन्य चरम, यानी, वे वक्ताओं जो वास्तव में शुद्धता की परवाह नहीं करते हैं, केवल अर्थ हैं। ये स्पीकर आमतौर पर बहुत ही अच्छे हैं अपनी मातृभाषा में भी बातूनी है अति-निगरानी वाले उपयोगकर्ताओं की तुलना में अधिक गलती करते हैं, वे

भी अधिक अर्थ व्यक्त करेंगे (3) इष्टतम मॉनिटर उपयोगकर्ता, या अधिग्रहणकर्ता जो केवल मॉनिटर का उपयोग करने का प्रबंधन करते हैं, सीखना / अधिग्रहण भेदभाव- क्रस्न और अन्य एसएलए विशेषज्ञों के अनुसार (क्रोशेन और टेरेल 1 9 83; लिटिलवुड, 1 9 84; एलिस, 1 9 85) छात्रों की दूसरी भाषा में कौशल विकसित करने के दो अलग-अलग तरीके हैं: अधिगम और अधिग्रहण। सीखना है एक जागरूक प्रक्रिया जो भाषा (संरचना) के रूप में छात्रों का ध्यान केंद्रित करती है। अधिग्रहण, ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमने अपनी मातृभाषा अर्जित की, और जो प्रतिनिधित्व करता है अवचेतन गतिविधि जिसके द्वारा हम नई भाषा का आंतरिककरण करते हैं, संदेश पर जोर देते हुए (अर्थ) अधिग्रहण की सुविधा के बजाय व्याकरण के नियम या उपयोग के नियमों को पढ़ाते हुए कक्षाओं में अंग्रेजी; फलस्वरूप, हम उस प्रकार के गतिविधियों को बदलने के लिए आवश्यक हैं जो हम कक्षा में करते हैं छात्रों को एक सटीक, स्वत: और लंबी-लंबी दूसरी भाषा विकसित करने में सहायता करने के लिए आदेश संवादात्मक भाषा शिक्षण में कक्षा में शिक्षकों द्वारा उपयोग की जाने वाली तकनीकों में सुधार हुआ है इनपुट हाइपोथीसिस कशेन के लिए, इनपुट परिकल्पना उनकी पांच अवधारणाओं में सबसे महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि लोगों का अधिग्रहण संदेशों को समझकर भाषाएं-अर्थात, जो समझने योग्य इनपुट को प्राप्त करते हैं। हम इसे इस तरह का वर्णन करें: किसी व्यक्ति को ड्राइव करने का तरीका जानने में मदद के लिए, हमें पहले उसे दिखाए जाने चाहिए कि वह कैसे करना है होंगे।

प्रभावित फिल्टर हाइपोथीसिस एक संदेश को समझना भाषा अधिग्रहण को आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है; एक को संदेश के लिए खुला होना चाहिए जिससे कि यह भाषा अधिग्रहण डिवाइस (एलएडी) (पहुंच) तक पहुंचता है सभी इनपुट लैड तक नहीं पहुंचता है; कहीं कहीं साथ जिस तरह से इसे फ़िल्टर्ड किया जाता है, और इसके केवल एक हिस्से का अधिग्रहण किया जाता है। यह फिल्टरिंग प्रक्रिया उत्तेजित फिल्टर में होती है तनावपूर्ण या नकारात्मक वातावरण में हैं, इनपुट उपलब्ध कराने के हमारे प्रयास बेकार होंगे।

1.9 सारांश

बीसवीं शताब्दी, भाषा के संरचनात्मक, मनोवादी भाषा विज्ञान के विकास का काल रहा है। पाश्चात्य देशों में बहुत से भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा संरचना, व्याकरण संबंधी अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इस पाठ के माध्यम से आप जॉन डीवी की रचनावाद से परिचित हुए तथा उस उनके अनुसार अनुभव छात्र केंद्रित शिक्षा के विषय में आपने जानकारी प्राप्त की ।प्याजे की संज्ञानात्मक विकास की अवस्था के माध्यम से हमने बालकों की शारीरिक, मानसिक व संज्ञानात्मक पक्ष को विशेष बल दिया है। इसके साथ ही व्यगोत्स्की के अनुसार बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के साथ ही उनमें सामाजिक विचार व भाषा के महत्वपूर्ण योगदान पर बल देते हुए समीपस्थ विकास का क्षेत्र की अवधारणा का विकास किया गया। उसके पश्चात व्यगोत्स्की, व्याकरण रूपांतरण –निष्पादन व सार्वभौमिक व्याकरण के संप्रत्यय के माध्यम से व्याकरण संबंधी ने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया। पाठ के अंत में स्टीफन क्राशन के द्वितीय भाषा अर्जन सिद्धांत व उसकी प्रक्रिया को समझने की पश्चात आप भाषा के विचारों एवं भाषा विज्ञान के विकासात्मक रुप से परिचित हो गए होंगे।

1.10 शब्दावली

1. **संज्ञानात्मक -** मस्तिष्क से संबंधित भाग अथवा पक्ष
2. **संप्रत्यय-** सामान्य विचार या धारणा, संकल्पना
3. **अंतर्निहित-** आंतरिक अथवा स्वयं के अंदर निहित
4. **सार्वभौम-** विश्व व्यापकता , सार्विकता

अभ्यास प्रश्न

1. जॉन डीवी_____शिक्षाशास्त्री थे। (रूसी \ अमेरिकी \ अफ्रिकी \फ्रांसीसी)
2. चॉम्स्की ने_____सिद्धांत का प्रतिपादन किया । (रूपांतरण निष्पादन \ संज्ञानात्मक \ संवेदनात्मक \ मनोवैज्ञानिक)

3. स्टीफन क्राशन ने _____भाषा संबंधित ग्राह्यता का नियम दिया। (प्रथम \ तृतीय \द्वितीय \ उपरोक्त सभी)
4. पियाजे के _____विकास में चार अवस्थाएं हैं । (संज्ञानात्मक\ भाषा-वैज्ञानिक\ मनोविज्ञान \सामाजिक सांस्कृतिक नियम)
5. जॉन डीवी ने बच्चों को शिक्षा देते समय_____पर विशेष बल दिया है। (अनुभव \योग्यता \ नवीन तथ्य \ उपरोक्त सभी)

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अमेरिकी
2. रूपांतरण निष्पादन
3. द्वितीय
4. संज्ञानात्मक
5. उपरोक्त सभी

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉक्टर वर्मा, सुरेंद्र (2005) *पाश्चात्य दर्शन की समकालीन प्रवृत्तियां* ,मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल
2. सिंह, अरुण कुमार(2003 , 2010) *शिक्षा मनोविज्ञान*, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
3. डॉक्टर त्रिपाठी, शालिग्राम (2006*) शिक्षा मनोविज्ञान* ,कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स
4. 4.डॉक्टर सिंह, ओपी(2008) *शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री* ,शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
5. डिवी, जॉन, अनुवादक लाडली मोहन माथुर (2004) *शिक्षा और लोकतंत्र* ,श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्राइवेट लिमिटेड
6. सहायक सामग्री Ibrahim Abukhattala1 English Language Teaching; Vol. 6, No. 1; 2013 ISSN 1916-4742 E-ISSN 1916-4750

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का शैक्षिक आशय का वर्णन करें?
2. शिक्षा में रचनावाद के परिपेक्ष में जॉन डीवी के विचार की विवेचना कीजिए।
3. चॉम्स्की के रूपांतरण निष्पादन सिद्धांत की व्याख्या कीजिए ।
4. लिव व्यगोत्स्की के सामाजिक - सांस्कृतिक सिद्धांत का वर्णन करें।

इकाई 2- भाषा अधिगम के विभिन्न भारतीय सिद्धांत

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भारतीय दर्शन व शिक्षा दर्शन
2.4 प्रतिपादित सिद्धांत
2.5 भृर्तहरी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत
2.6 न्याय दर्शन एवं भाषा शिक्षण
2.7 मीमांसा दर्शन एवं शिक्षण
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में भारतीय दर्शन के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। आप जानते हैं कि संसार के सभी देश अलग अलग भौगोलिक परिस्थिति, निवासियों की जीवन पद्धति, साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन, समाज व्यवस्था को दर्शाते हैं। समाज के सुव्यवस्था के वहां फल स्वरुप के नागरिकों को जब अवसर मिलता है कि वह जीवन से जन्म से लेकर मृत्यु तक घटित होने वाली घटनाओं नए अनुभव, नीतियों, नियमों के निष्कर्ष पर पहुंचता है, इस रिश्ते से दर्शन, जीवन का आवश्यक पक्ष है। हर व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई दर्शन जरूर होता है, चाहे उसके संबंध में व्यक्ति सचेतन हो या ना हो। नई परिस्थितियों में निष्कर्ष निकालना ,सत्य का अन्वेषण करना, सत्य व तथ्य का अन्वेषण करना उसका स्वभाव है। इस तरह हम पाते हैं हर व्यक्ति अपने जीवन दर्शन के अनुरूप संसार के प्रति अपनी एक अलग धारणा बनाते हुए जीवन यापन करता है। यहां हम इस पाठ में भारतीय दर्शन के कुछ पक्षों पर ध्यान देंगे, साथ ही शिक्षा दर्शन के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे। इसके अलावा भारतीय दर्शन की शाखाओं न्याय, मीमांसा व व्याकरण के परिपेक्ष्य में पाणिनि, भृर्तहरी के विषय में पढ़ेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन पश्चात आप-

1. भारतीय दर्शन की अवधारणा से अवगत हो पाएंगे।
2. भारतीय दर्शन व शिक्षा दर्शन के मध्य के संबंध को समझ सकेंगे।
3. भारतीय दर्शन के अंतर्गत आने वाले षड्दर्शन के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. पाणिनि के व्याकरण के सिद्धांत व प्रतिहारी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत से अवगत हो सकेंगे।
5. न्याय दर्शन व मीमांशा दर्शन के अध्ययन द्वारा प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का अनुमान लगा सकेंगे।

2.3 भारतीय दर्शन व शिक्षा दर्शन

दर्शन शब्द की उत्पत्ति दृश् धातु से हुई है जिसका अर्थ है सम्यक रूप से देखना , *जिसे देखा जाए* अर्थात *ज्ञान प्राप्त किया जाए*। ज्ञान प्राप्त करने के बहुत से साधन है जैसे- प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान लेकिन सभी में प्रमुख है, प्रत्यक्ष *जो देखा जाए समझा जाए* वह दर्शन है इस तरह हम पाते हैं कि दर्शनशास्त्र में सभी विचारधाराएं जो युक्तियों की कसौटी पर प्रमाणित की जाती हैं, सभी सम्मिलित हैं। आज दर्शन का पाश्चात्य अर्थ है- फिलॉसफी जो कि दो यूनानी शब्दों से जुड़कर बना है फिलो जिसका अर्थ है प्रेम तथा सोफिया जिसका अर्थ है विस्डम या ज्ञान, इस प्रकार फिलॉस्फी शब्द का अर्थ है- *ज्ञान से प्रेम* ।भारतीय दर्शन में असंतोष व अतृप्ति से दर्शन का उद्गम होता है ।मानव अपने असंतुष्ट वर्तमान में कुछ नया प्राप्त करने के लिए खोज करता रहता है यही सोच ईश्वर, जगत, आत्मा आदि को समझने, जानने की इच्छा में भी दिखाई देता है। यहां दर्शन व्यवस्थित व क्रमबद्ध तरीके से चिंतन करने की कला है ,जो कि तार्किक दृष्टिकोण के साथ जीवन के समग्र वस्तुओं पर विचार करती है, अतः हम कह सकते हैं कि समस्याओं का चिंतन दर्शन कहलाता है। भारतीय दर्शन में चिंतन मनन के साथ वेदों को बहुत महत्व दिया गया है। भारतीय दर्शन की कुछ मूल विशेषताएं हैं ,जो निम्नलिखित हैं-

1. चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं। मृत्यु से शरीर समाप्त हो जाता है और आत्मा एक शरीर के अंत के बाद दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है यहां यह जानना आवश्यक है कि जब ज्ञान से अज्ञान की समाप्ति हो जाती है तब आत्मा बंधन से मुक्त हो जाती है।
2. आत्मा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। वह सुख-दुख अनुभूतियों से रहित है। भारतीय दर्शन आत्मा के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास रखता है।
3. भारतीय दर्शन जीवन के लक्ष्य को समझने व पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देता है।
4. सभी दर्शन यह मानते हैं कि संसार दुख मे है, और इस दुख का निवारण अवश्यंभावी है।
5. चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दर्शन नियम को स्वीकार करते हैं, शुभ कर्म का शुभ फल व अशुभ कर्म का अशुभ फल होता है। यह कर्म का नियम है, यही जगत की व्यवस्था का निर्धारण करती है।

6. मोक्ष का सिद्धांत लगभग सभी दर्शनों में है, सिर्फ चार्वाक दर्शन इसे स्वीकार नहीं करता है।
7. सभी दर्शन जगत की सत्यता में विश्वास रखते हैं और उनके अनुसार सभी कार्य नियम और कर्म के अधीन है, व्यवस्थित है, जगत सत्य है, वह प्रकृति का परिणाम है।
8. वेदों की प्रमाणिकता को मानना, न कि वेदों का अंधानुकरण करना ,यहां हम तर्क वितर्क अथवा विश्लेषण के द्वारा हम वेदों को सम्मानित मान सकते हैं।

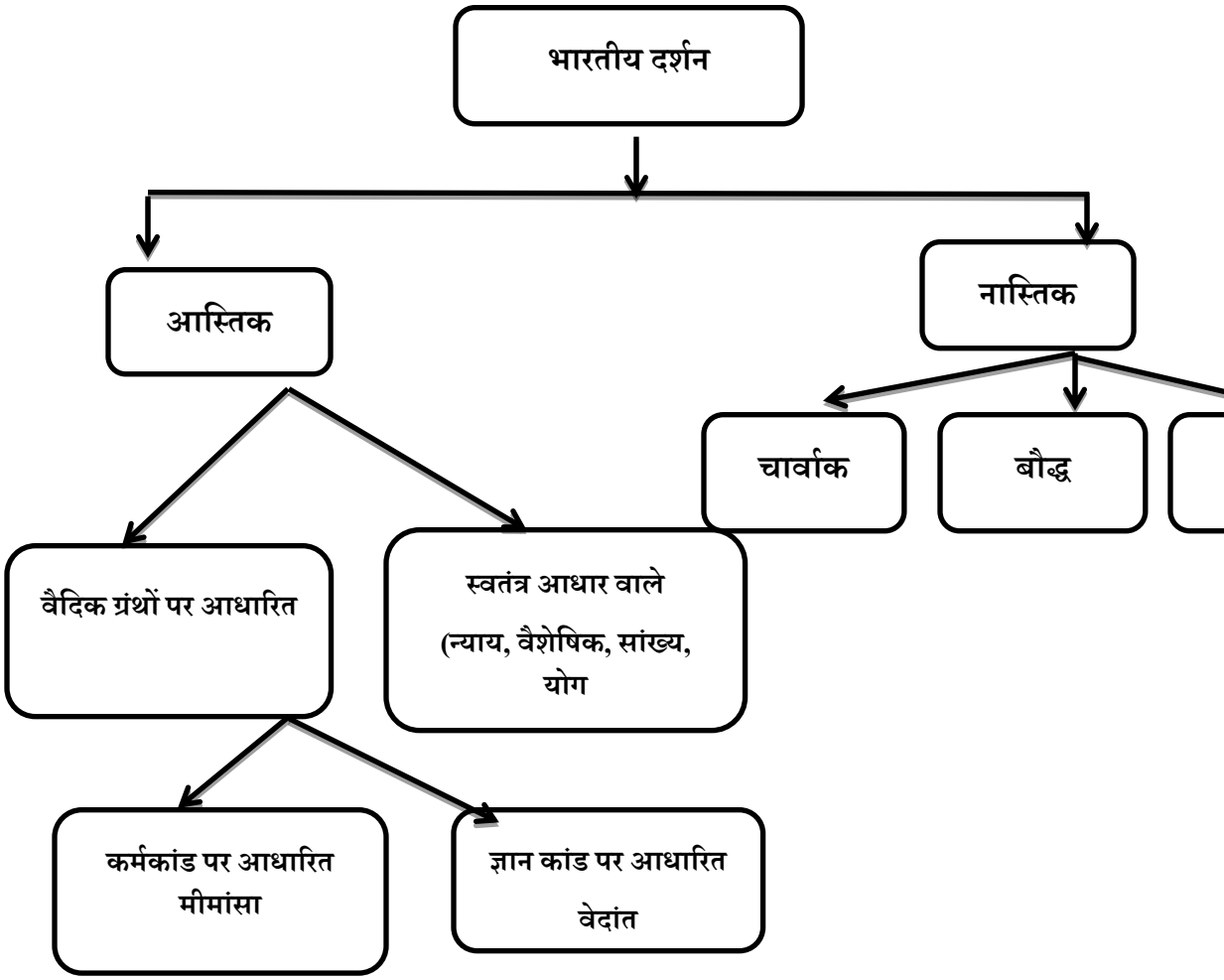

भारतीय शिक्षा **दर्शन -** भारतीय भाषाओं में शिक्षा के पर्याय के रूप में ज्ञान व विद्या शब्द को प्रयोग में लाया जाता है, जिसका अर्थ है- जानना ,पता लगाना अथवा सीखना। डॉक्टर राधाकृष्ण ने भारतीय दर्शन के अनुसार कहा है-" दर्शन यथार्थ के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।" आत्मानुभूति के द्वारा प्राप्त सत्य ज्ञान को आत्मसात करना ही शिक्षा दर्शन है। सर जॉन ऐडम्स के मतानुसार-" शिक्षा, दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू है तथा जीवन के आदर्श को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।" उनके अनुसार शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व , दूसरे व्यक्तित्व के विकास में सुधार के लिए असर डालता है। यह प्रक्रिया केवल चेतन शील , ही नहीं वरन आयोजित भी है। चेतना शील शिक्षक के मन मे छात्र के विकास व सुधार का आशय रहता है । शिक्षक के पास दो साधन है-1. शिक्षक के व्यक्तित्व का शिष्य पर सीधा प्रभाव 2. ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग।

दर्शन का वह भाग जो शिक्षा के समस्याओं का अध्ययन करता है, शिक्षा दर्शन कहलाता है। शिक्षा दर्शन प्रयोगों पर आधारित विज्ञान नहीं, अपितु तर्क प्रधान शास्त्र है। शिक्षा दर्शन, एक निश्चयात्मक विज्ञान नहीं बल्कि निर्देशात्मक शास्त्र है। दर्शन शास्त्र व शिक्षा शास्त्र का संयुक्त रूप है , शिक्षा की समस्याओं व दार्शनिक हल निकालने का प्रयास करता है। किसी भी शैक्षिक समस्या का संभावित समाधान निकालने का प्रयास करता है ।वर्तमान में जीवन यापन, शिक्षा व कौशल में काफी अंतर आ गया है, इसलिए शिक्षा दर्शन का महत्व भी बहुत बढ़ गया है। स्पेंसर के अनुसार- " वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दर्शन ही कर सकता है।" दर्शन के द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय संगठन, अनुशासन आदि को निश्चित रुप दिया जाता है। दर्शन का अध्ययन बहुत ही आवश्यक है क्योंकि इसी से शैक्षिक दृष्टिकोण व शिक्षा का पथ प्रदर्शित किया जाता है। दर्शन शिक्षण विधि का लक्ष्य बताता है, वह अनुशासन का निर्धारण भी करता है, दार्शनिक विचार धाराओं के अनुरूप अनुशासन के विभिन्न रूप व जीवन के दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। विचार, आवश्यकता व आदर्श के अनुरूप शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण करना उसकी सामग्री का चयन करना,, पाठ्य पुस्तकों के निर्माण आदि में भी दर्शन आधार प्रदान करता है। इस तरह पाठ्यपुस्तकों के नवनिर्माण में जीवन की मान्यताओं, आदर्श व सिद्धांत को ध्यान में रखकर दर्शन के द्वारा नए विचारों व सिद्धांतों का समावेश करके पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया जाता है। हम कह सकते हैं कि शिक्षा दर्शन शिक्षा शास्त्र की वह शाखा है जो शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों, शिक्षा संबंधित अन्य समस्याओं के दार्शनिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। विश्व में भारत का साहित्य प्राचीनतम साहित्य में गिना जाता है ,और भाषा के संबंध में शुरुआत के संकेत उसी समय से मिल सकते हैं। ऋग्वेद के मंडलों के अंत में भी यह इंगित किया गया है- यजुर्वेद संहिता में यह कहा गया कि देवों ने देवराज इंद्र से कहा कि हम लोगों के कथन को टुकड़ों में कर दीजिए इससे स्पष्ट है कि वह जानते थे कि वाक्यों को खंडों में विभाजित किया जा सकता है और भाषा संबंधी ज्ञान का भी पता था। विभिन्न ब्राह्मण आरण्यक ग्रंथों में भी उसके संकेत मिले हैं। अनेक शास्त्रों, और भाषा विज्ञान की भारतीय भाषा संबंधी अध्ययन सभी देशों में होते रहे हैं। भारत में भाषा विज्ञान संबंधी अध्ययन को दो वर्गों में रखा गया है- प्राचीन और आधुनिक। प्राचीन अध्ययन का काल वैदिक से 17वीं शताब्दी तक है, जबकि आधुनिक

अध्ययन का काल 18 वी शताब्दी के मध्य से शुरु होता है। भारतीय वेदांत भारतीय दर्शन में वेदांग के 6 विधान माने गए हैं, 6 वेदांग माने गए हैं- , कल्प, कर्मकांड, व्याकरण, निरुक्त अर्थात भाषा विज्ञान, छंद और ज्योतिष। इस सब में से व्याकरण को प्रमुख स्थान दिया गया है। व्याकरण के शिक्षा के बिना बालक शुद्ध रूप से भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है ।यह लक्ष्य शास्त्र है और इसका अध्ययन भाषा की शुद्धता के लिए किया जाता है। इसके बिना रचना ,अनुवाद, वाक्य रचना, शब्द रचना संभव नहीं है। व्याकरण नए नियम नहीं बनाता वरन वह नियमों को खोजता है ,व्याकरण शब्दों पर शासन नहीं करता बल्कि उनका अनुशासन करना और उनके प्रवाह को नियंत्रण में रखता है।

2.4 पाणिनि द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत

पाणिनि की अष्टध्याई में 8 अध्याय हैं, एक अध्याय में चार पाद हैं, और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र शामिल है, सभी मिलाकर सूत्रों की संख्या लगभग चार सहस्त्र है। पूरी पुस्तक सूत्र जिन्हें माहेश्वर सूत्र भी कहते हैं ,पर आधारित है। पाणिनि के अनुसार भाषा का आरंभ वाक्यों से हुआ है, उनके अनुसार वाक्य ही प्रधान है। भाषा की पूरी संरचना ध्वनि प्रक्रिया ,स्वराघात संबंधी रूप रचना, वाक्य रचना तथा व्याकरण के स्तर पर विवेक अर्थ पक्ष का पूरा विवरण इस में सम्मिलित है। किसी भाषा के परिनिष्ठित रूप में पूरे भौगोलिक एवं सामाजिक विस्तार को एक साथ में समझने वाला यह पहला व्याकरण है। साथ ही यह अभी तक इस क्षेत्र में अंतिम भी है। ब्लूम फील्ड इन्हें *ना भूतो ना भविष्यति* कहा है। सभी दृष्टि से यह पूर्ण व्यवस्थित व्याकरण है, बाद में ढाई हजार वर्षों में जितने भी व्याकरण लिखे गए हैं इतनी सुव्यवस्थित नहीं पाए गए। 14 सूत्रों के आधार पर लगभग 4000 सूत्रों में भाषा के सभी स्तरों की व्यवस्था का विश्लेषण संक्षेपण और स्पष्टता के साथ उपलब्ध है। पाणिनि के व्याकरण विश्व के सबसे अधिक वैज्ञानिक भाषा व्याकरण में सम्मिलित है, पश्चिम के व्याकरण इसके समक्ष नहीं टिकते हैं। लौकिक व वैदिक संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन भी इसकी प्रमुख विशेषता है। अष्टध्याई के अतिरिक्त धातू पाठ ग्रंथ भी लिखा जिसमें धातुओं की सूची प्रस्तुत की गई है। पाणिनि के दूसरे ग्रंथ गणपाठ के अनुसार किसी भाषा की वाक्य रचना का अध्ययन उसके व्याकरणिक अध्ययन का एक प्रमुख अंग है ।प्रमुख भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य ही है, अतः जब तक उसका वाक्य में प्रयोग कर अन्य पदों के साथ संबंध निर्धारण ना किया जाए। किसी भी पद का महत्व एवं अर्थ वाक्य में प्रयोग करने पर ही ज्ञात किया जा सकता है- वाक्य, पद का वह समूह है जिसमें पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। प्रतिहारी भी इस बात से सहमत है कि इन आकृतियों को अलग-अलग रूप में वाक्य नहीं कहा जा सकता जब यह समग्र भावना के लिए जोड़कर अर्थ बताते हैं तब उनका अस्तित्व सिद्ध होता है, जहां भाषा व्यवहार में व्याकरण के पदों की पृथकता को स्वीकारना कर मात्र वाक्य को ही वास्तविक अनुभव इकाई मानते हैं । पाणिनि के अनुसार कर्ता क्रिया का स्वतंत्र स्रोत है वह किसी भी कार्य की शुरू अथवा समाप्ति के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं है वह कार्य की प्रेरक शक्ति होता है। कर्म के लिए उन्होंने कहा है कि वह कर्ता का क्रिया द्वारा प्राप्त करने का सबसे प्रमुख कारक कर्म है। अधिकरण को कारक नहीं माना है , क्योंकि क्रिया से इसका प्रत्यक्ष संबंध

नहीं होता है। पाणिनि के "साधकतम कर्णम" सूत्र के अनुसार क्रिया को संपन्न करने के लिए क्रिया की साधक वस्तुओं का होना आवश्यक है। उन्होंने कर्ता के साथ करण , क्रिया के माध्यम से संबंध करना चाहेगा तब उस अर्थ को संप्रदान की संज्ञा दी जाएगी ।अपादान कारक के परिपेक्ष्य में पाणिनि बताते हैं कि किसी सापेक्षिक रूप से किसी का स्थिति से हट जाना या अलग हो जाना अपादान कहलाता है। पद विचार करते समय एक अंश को प्रकृति कहता है तथा दूसरे अंश को प्रत्यय (विभक्ती प्रत्यय) । पाणिनीय शिक्षा के अनुसार 64\ 63 वर्ण है, स्वर 22, स्पर्श 25, अंतस्थ4, उष्म 4, आयोगवाह 4, यम 4 । ध्वनि विवेचन उत्पादन में मुख विवर में विभिन्न प्रक्रियाओं के योग से वायु वर्णों को जन्म देती है जिससे हम पांच वर्णों में बांट सकते हैं- स्वर ,,काल, स्थान, प्रयत्न और अनूप। ध्वनि से संबंधित- मानव तंत्र में पहले यह कंठ प्रदेश, शिरोभाग फिर मुख रंध्र से होकर बाहर निकलती है, इस प्रकार यह बाह्य प्रक्रियाओं योग से वायु वर्ण को उत्पन्न करके बाहर निकालती है । दूसरा मन की इच्छा से प्रेरित होकर ध्वनि जठरागिनी को जगाती है, जो अग्नि को प्रेरित करती है और वह वायु को। इस प्रकार यह क्रिया ध्वनि उत्पन्न करती हुई कंठ, प्रदेश की ओर जाती है इसमें आंतरिक क्रिया का कार्य रहता है । जिसमें आत्मा, बुद्धि, मन, इच्छा, अग्नि, वायु, मानव मुख् प्रदेश आदि सभी सम्मिलित होते हैं।इसके अतिरिक्त वाचन व सामाजिक भाषा मैं उच्चारण की शुद्धता पर गहराई से विचार किया गया है। उनके अनुसार वर्ण, पद, वाक्य को स्पष्ट और पूरा पूरा उच्चरित करना चाहिए। इसके अलावा अर्थ की प्रकृति ,अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया, अर्थ निश्चय के क्षेत्र में भी प्राचीन भारतीय भाषा चिंतकों का अपूर्व योगदान रहा है।

2.5 भृर्तहरी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत

आधुनिक भारत में भाषा विज्ञान का इतिहास प्राचीन रहा है जिसमें यास्क, पाणिनि, पतंजलि , भृर्तहरी का नाम आदर से लिया जाता है। भृर्तहरी का एक मात्र ग्रंथ है *वाक्य दीप* जोकि भाषा की विवेचना करता है, इसके तीन खंड हैं- ब्रह्म कांड(आगम कांड), वाक्य कांड और पद कांड (प्रकीर्ण कांड)।वाक्य दीप को व्याकरण का दर्शन भी कहा जाता है, इसमें भाषा की विवेचना की गई है। भृर्तहरी के द्वारा सफोट सिद्धांत भारतीय व्याकरण परंपरा में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। भाषा, जिससे हम अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं उसे सफोट कहा जाता है यह है भाषा व मन से जुड़े भावों को जाने का प्रयास करता है। सफोट का तात्पर्य है फूट पड़ना, उदगार अथवा किसी शब्द के माध्यम से अर्थ की पूरी अभिव्यक्ति किए जाना ही सफोट सिद्धांत है ।इसके अंतर्गत भृर्तहरी के अनुसार - वाक्य दीप में लिखा है की फोटो व ध्वनि दोनों ही एक साथ शुरू होते हैं उनमें कोई समय अंतराल नहीं होता उनके अनुसार वाक्य को भाषा विज्ञान के अंतर्गत या स्पोर्ट ध्वनि के अंतर्गत दो भागों में विभाजित करके पढ़ा जा सकता है यह वाक्य को वास्तविक अर्थ प्रदान करता है जो कि इसके द्वारा किए शब्द अर्थ व वाक्य वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने के लिए पूरी प्रक्रिया चलाते हैं। भृर्तहरी शब्द अद्वैत शाखा से संबंधित थे, जो की भाषा व संज्ञान की दिशा में कार्य करता है। उनके अनुसार भाषा के चार रूप है -

- बैखारी- वाक का वह रूप है जिसको हम बोलते अथवा सुनते हैं, यह मुख्य के द्वारा उच्चरित ध्वनियों के माध्यम से बाहर आती है। इसका सीधा संबंध शवास प्रक्रिया से होता है।
- मध्यमा- मानव अपने मन मस्तिष्क में जो कुछ भी सोचता है, उसका माध्यम भाषा होती है और मन के आंतरिक भाषा भाव हो मध्यमा कहा गया है। यह हमारे मस्तिष्क में ही रहती है।
- पश्यंति- एक ऐसी स्थिति है जहां पर भाषा हीनता का भाव आ जाता है, यह भाषा का सूक्ष्म रूप है। पश्यंति में ध्वनि या पद का कोई क्रम नहीं रहता। यह केवल योगियों के द्वारा महात्मा के द्वारा देखी जा सकती है।
- परा - जिसे हम निर्विकल्प समाधि से जोड़कर देखते हैं, इसे पराप्रकृति वाक भी कहा गया है इस स्थिति में आने पर ज्ञान और जानने योग योग्य कोई वस्तु का भेद मिट जाता है।

भृर्तहरी के अनुसार वाक्य ब्रह्म का का रूप है, जिस प्रकार जीव ब्रह्म अर्थात अंतिम सत्य की ओर जाते हैं ,उसी प्रकार शब्द उसकी चेतना की अभिव्यक्ति है इसलिए शब्द अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण इकाई है। भृर्तहरी के अनुसार वाक्य में क्रिया की संकल्पना सही होनी चाहिए क्योंकि- कार्य या क्रिया किए अंतर्गत कई क्रियाएं चल रही होती हैं, इसलिए सभी अन्य क्रियाओं को छोड़ कर एक मुख्य क्रिया का चुनाव किया जाता है अर्थात यह दो स्थितियों से गुजरती है -साध्य व सिद्धि। सिद्धि को करने के लिए साधन की आवश्यकता होती है जिसमें कारक के भेद कर्ता, कर्म, अधिकरण, करण, संप्रदान, अपादान का प्रयोग किया जाता है। कर्ता, कार्य करने वाला व्यक्ति करता है, वह स्वतंत्र है। क्रिया की समाप्ति तक वह कारकों के साथ संबंधित रहता है। कर्म, किसी भी व्यापार व क्रिया से उत्पन्न फल को हम कर्म कहते हैं। अधिकरण - कर्ता व कर्म के क्रिया को संपन्न करने के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह करण क्रिया के होने में साधन का कार्य करता है, जो बिना किसी व्यवधान के क्रिया के फल को उत्पन्न करने का कार्य करता है ।अंत में संप्रदान व अपादान जिस अर्थ के साथ कर्म ,कर्ता या क्रिया के मध्य में संबंध करना चाहे तब वह संप्रदान होती है, तथा अपादान कारक जब सामान्यता क्रिया के कार्य परिणाम स्वरुप कोई किसी से दूर होता है, यह स्थान या काल के किसी बिंदु पर संभव हो सकता है यह अपादान कारक कहलाता है इसके साथ कारक के क्रिया निष्पादन में वाक्य की अभिव्यक्ति में विभिन्न विभक्ति के ऊपर ध्यान रखना भी आवश्यक है। इसी प्रकार काल के निर्धारणकार्य भी किया गया है जिसमें भूत, भविष्य व वर्तमान एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भूत काल- अगर कोई काम या क्रिया शुरू होकर खत्म हो गई है अर्थात वर्तमान में नहीं चल रही है , वह भूतकाल है। वर्तमान काल- जो क्रिया जो अभी चल रही है, पूर्ण नहीं हुई है वह वर्तमानकाल कही जाती है, व भविष्य काल वर्तमान काल के बाद आने वाला समय भविष्य काल है ।

2.6 न्याय दर्शन एवं भाषा शिक्षण

भारतीय दर्शन में 'न्याय' शब्द का अर्थ ,'उचित' अथवा 'वांछनीय' है। न्याय दर्शन से सही विचार तथा आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने समझने की शक्ति बढ़ती है। इसमें मुख्यता शुद्ध विचार के नियमों तथा तत्व ज्ञान प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया गया है। न्याय दर्शन के प्रमुख विषय ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति के साधन तथा प्रक्रिया है। इसके अनुसार बारी वस्तुओं का अस्तित्व हमारे ज्ञान पर निर्भर नहीं करता है। वस्तुओं का अस्तित्व हमसे स्वतंत्र रहता है सभी मानसिक भाव व संवेग जैसे – खुशी, दुख, क्रोध, डर हमारे मन पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा एक और बात जो इस में सम्मिलित है की है कि बच्चे के जन्म के बाद वह जो भी मनोभाव अभिव्यक्त करता है वह पूर्वजन्म की स्मृति के फल स्वरुप है। न्याय दर्शन भाग्य पर विश्वास नहीं करता और कर्म को सही मानते हुए सुख व दुख का कारण कर्म को ही मानता है। यह मुख्यता तर्क का विचार करता है। भौतिक जगत, जीवात्मा, परमात्मा के स्वरुप का दार्शनिक विचार करता है। न्याय को तर्क- शास्त्र, प्रमाण –शास्त्र, वाद विद्या कहा जाता है। आचार्य गौतम न्याय दर्शन के प्रवर्तक थे, उन्हें अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने *न्याय सूत्र* की रचना की जिसके ऊपर वात्सायन ने *न्यायभाष्य* नामक भाष्य लिखा, उसके पश्चात उद्योत कर ने न्याय भाष्य के ऊपर *न्याय वार्तिक* लिखा। यह सभी ग्रंथ प्राचीन न्याय दर्शन से संबंधित है। महर्षि गौतम के कालनिर्णय का कार्य बहुत मुश्किल है क्योंकि उनका उल्लेख रामायण व महाभारत दोनों में ही प्राप्त होता है अगर दोनों को ही सत्य मानकर चलें तो लगभग सप्तम ईसा पूर्व का समय और काल होना चाहिए। डॉक्टर विद्या भूषण ने एशियाटिक जनरल के एक लेख में लिखा है जब कात्यायन और पाणिनि ने न्याय शब्द का उल्लेख किया है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि यह न्याय सूत्र का प्रणयन इससे पहले हो चुका था। न्याय सूत्र के प्रणेता महर्षि गौतम का काल पाणिनि से 1000 ईसा पूर्व या 1500 ईसा पूर्व के आस पास होगा। न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र को यथार्थ प्रयत्न व तर्कों द्वारा सत्यापित ज्ञान देना है। इसके अनुसार ज्ञान की उप स्थापना पहले होती है, बाद में उसकी परिभाषा आती है। मानव कभी भी विचारहीन नहीं रहता है, अतः उसके अनुभव परंपरा एवं संस्कारों का ज्ञान उसके मस्तिष्क में विद्यमान रहता है। इसलिए न्याय दर्शन में शिक्षा ज्ञान को तर्क के आधार पर सत्यापित करती है इसके अनुसार व्यक्ति पूर्व जन्म के कर्मों के कारण सुख-दुख क्षमता योग्यता बुद्धि आदि प्राप्त करता है। इसलिए शिक्षा का लक्ष्य है कि वह छात्र के विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने का कार्य करें। न्यायशास्त्र में शिक्षण की सारी प्रक्रिया का केंद्र छात्र रहता है और यह आधुनिक मनोवैज्ञानिक आधारों की कसौटी पर बिल्कुल सही प्रतीत होता है। शिक्षक व छात्र का संबंध मित्रवत होता है, वह छात्रों पर अपने विचार या ज्ञान को लादता नहीं है, छात्र स्वयं सीख लिया करता है, ज्ञान प्राप्त करता है, तर्क द्वारा उसे सत्यापित करने के बाद जो निष्कर्ष निकलता है ,उसे स्वीकार करता है। दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्ति में चार तत्व होते हैं- प्रमाता, प्रमे, प्रमाण ,प्रणीति। प्रमाता- ज्ञान प्राप्त करने वाला छात्र, प्रमे- जिस विषय का अध्ययन करना है, प्रमाण- जिस माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया जाता है , प्रमिति- यथार्थ ज्ञान को प्रमिति कहते हैं ,जो निश्चित तथा त्रुटि रहित होती है और पदार्थों का स्पष्ट प्रगटीकरण ही ज्ञान कहलाता है। न्याय दर्शन सभी प्रमुख प्रणाली - प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान शब्द तथा छात्रों की स्मृति संशोधन सभी को क्रियान्वित कर देता है,

छात्रों के व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अध्यापक प्रजातांत्रिक तरीके से बच्चों को खुले वातावरण में छोड़ कर स्वयं अपने व्यवहार वा ज्ञान के अनुसार शिक्षा प्रदान करता है।

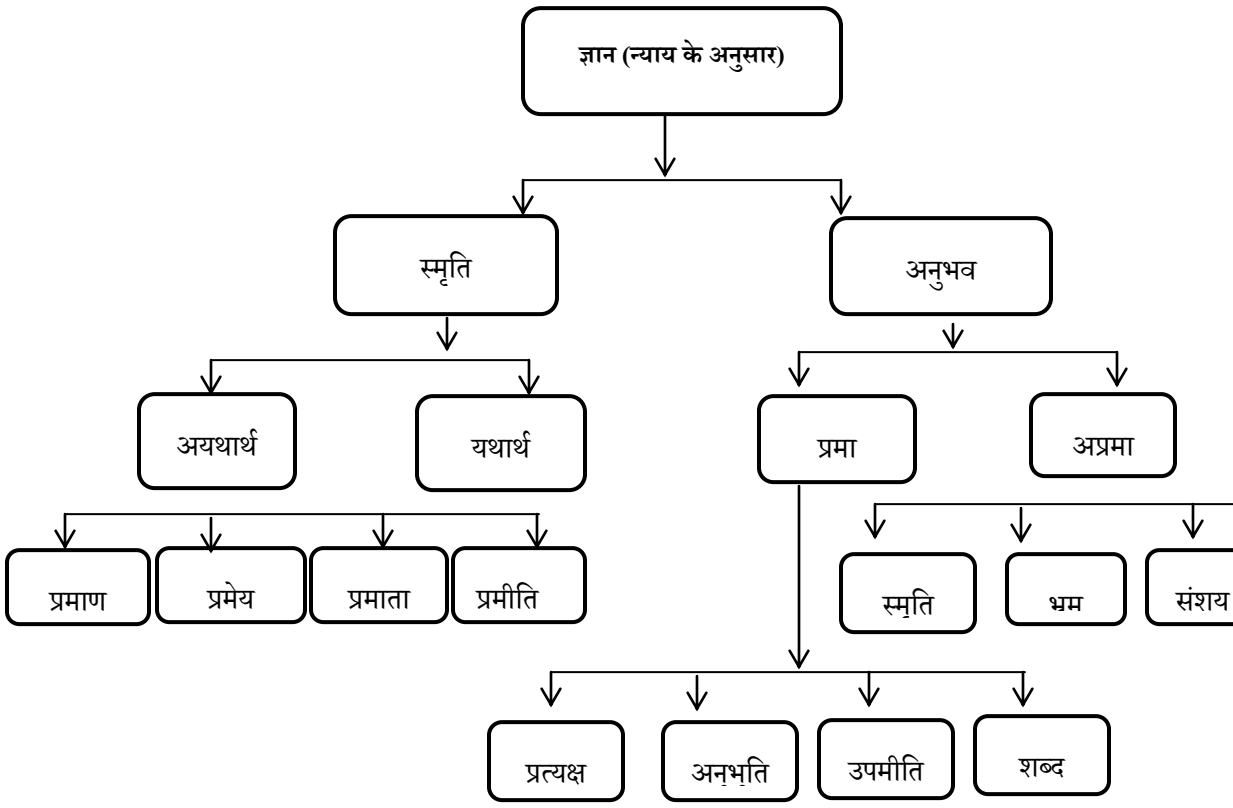

न्याय शास्त्र में प्रत्यक्ष प्रणाली -आगमन -निगमन प्रणाली, प्रोजेक्ट विधि, प्रयोग त्मक प्रणाली आदि को मुख्य रूप से प्रयोग में लाया जाता है। न्याय दर्शन के अनुसार साक्षात रूप से ग्रहण किए जाने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है ।इसको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -1. इंद्रियजन्य ज्ञान 2. अंतर्ज्ञान। वह ज्ञान पदार्थों के संसर्ग से प्राप्त होता है ,इसलिए निश्चित होता है। मनोविज्ञान में इसे संश्लेषण व न्याय शास्त्र में इसे निर्विकल्प अप्रत्यक्ष का नाम दिया गया है, जबकि अंतर्ज्ञान स्वयं अचानक से उत्पन्न हो जाता है ।ज्ञान प्राप्ति के वैज्ञानिक विधियों पर अगर हम ध्यान दें तो हम पाएंगे कि - प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों के मिश्रण से बनती है। अनुमान, पूर्व ज्ञान के बाद आता है इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ध्यान के बाद आने वाले ज्ञान को अनुमान कहते हैं, जैसे - किसी पहाड़ धुएं को देख कर हम यह अनुमान लगाते हैं, उस स्थान पर आग हो सकती है ।आग यहां प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर जाते हुए मतलब धुएं को देखकर आग अनुमान लगाना व्याप्ति वाक्य के फलस्वरुप होता है । अनुमान में कम से कम 3 पद या अवयव है- पक्ष, साध्य और हेतु। पक्ष अनुमान का अवयव है जिसके बारे में अनुमान किया जा रहा है -

पहाड़। पक्ष के विषय में जो सिद्ध किया गया है उसे साध्य कहा गया है- आग।,क्योंकि पहाड़ पर आग होने को सिद्ध करके बताया गया है। अनुमान में जिसके द्वारा पक्ष का साध्य होना दिखाया गया है वह हेतु कहलाता है , यहां धुएं को हेतु मानकर पहाड़ पर आग होने का अनुमान व्यक्त किया गया है। ऊपर लिखे तीनों पदों को क्रम से रखकर आगमन व निगमन विधि द्वारा 5 पद के अनुमान को अभिव्यक्त किया गया है, उदाहरण -

i. प्रतिज्ञा- हम जिस बात को सिद्ध करना चाहते हैं उसका निर्देश करना ही प्रतिज्ञा है, जैसे पहाड़ पर आग है।
ii. हेतु- अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त युक्ति को हेतु कहते हैं। जैसे पहाड़ पर दुआ है
iii. उदाहरण- साध्य को प्रमाणित करने के लिए दूसरे उदाहरण प्रस्तुत करना जैसे दुआ जहां है वही आदमी है जैसे रसोईघर
iv. उपनय- हेतु और साध्य के बीच के संबंध को दिखाने के बाद अपना पक्ष दिखाना उपनय कहलाता है जैसे पहाड़ पर धनवा है।
v. निगमन- जब यह सिद्ध हो जाता है कि तो इसे निगमन कहा जाता है जैसे पहाड़ पर आग है ।

आगमन निगमन विधि का सर्वोत्तम उदाहरण है यहां पहले ही स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान पहले से ही उपस्थित है हम सिर्फ उसका पता लगाते हैं जबकि आगमन विधि में ज्ञान उत्पन्न होकर विकसित होता है। गौतम के प्राचीन न्याय दर्शन के अनुसार अनुमान तीन प्रकार के हैं- पूर्ववत, शेषवत व सामान्तो दृष्ट । पूर्ववत के अनुसार भविष्य में होने वाले कार्य का पूर्वानुमान वर्तमान के कारण से लिया जाए जैसे- आकाश में काले बादलों को देखकर बारिश का अनुमान लगाना । वर्तमान के कार्य अथवा प्रभाव द्वारा अधिक में घटित कारणों का अनुमान लगाना जैसे पुरातन सभ्यता से जुड़े स्थानों के अवशेष को देखने के बाद वहां क्या हुआ होगा अनुमान लगाना। सामान्तो दृष्ट में अनुमान लगाने समय साधन व साध्य दोनों साथ पाए जाते जैसे चंद्रमा को आकाश में अलग-अलग जगहों पर देख कर हम यह अनुमान लगाते हैं कि वह गतिशील है। सामाजिक विज्ञान में अनुमान विधि का प्रयोग होता है, इसके द्वारा छात्रों की विचारशक्ति को उद्वेलित किया जाता है। इस में समस्या विधि, प्रयोगात्मक विधि, खेल विधि, क्रियाविधि , प्रोजेक्ट विधि को शामिल किया जा सकता है। गणित में भी विश्लेषण- संश्लेषण की प्रक्रिया, दो अज्ञात तथ्यों के आधार प्रतिज्ञा तत्व का अनुमान लगाना ।इतिहास में ज्ञात घटनाओं, लक्षणों, परिस्थितियों के आधार पर कारण व प्रभाव का अनुमान लगाना। सभी विषयों के अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय दर्शन में उपमान अथवा तुलना वह साधन है जिससे हम ज्ञात पदार्थ के साथ किसी दूसरी पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करते हैं इस में दो तरह के लोग होते हैं अवयव होते हैं । ज्ञान प्राप्त करने की एकमात्र विधि शब्द प्रमाण है जिसमें शब्दो एवं वाक्यों से वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है, वह ज्ञान जो हमें किताबों से पढ़कर प्राप्त करते हैं। हम प्रश्न उत्तर, चर्चा, व्याख्यान, विचार- विस्तार, भाषण, पर्यवेक्षक -अध्ययन प्रणाली, के द्वारा प्राप्त ज्ञान शामिल किया जा सकता है। अप्रमा के कारण अवैध ज्ञान उत्पन्न करने वाले चार कारकों का

ज्ञान अध्यापक को होना चाहिए यह है- स्मृति, संशय, भ्रम एवं तर्क। पूर्व के अनुभव के आधार पर स्मरणत्मक चेतना को स्मृति कहते हैं। संशय- अनुमान से पहले आता है, और जब ज्ञान सुनिश्चित हो जाता है तो लुप्त हो जाता है- परस्पर विरोधी साक्ष्य से, प्रत्यक्ष ज्ञान की अनियमितता से, ना दिखाई देने के कारण अथवा विस्मृति के कारण संशय उत्पन्न होता है। भ्रम कि स्थिति में जब मन यह सुनिश्चित नहीं कर पाता कि यथार्थ क्या है- जैसे रस्सी को देखकर सांप समझना भ्रम है और यह निश्चय ना कर पाना कि रस्सी है या सांप संशय है , यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में तर्क जब कुतर्क बन जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करता है ।

2.7 मीमांसा दर्शन एवं शिक्षण

मीमांसा दर्शन भारतीय दर्शन में मीमांषा को वेदों का ही अंग माना गया है । मीमांसा को दो भागों में विभक्त किया गया है- पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा जिसे वेदांत भी कहा जाता है। पूर्व मीमांसा में कर्म तथा उत्तर मीमांसा में ज्ञान पर विचार किया गया है ।मीमांसा के अनुसार द्रव्य, गुणकर्म ,सामान्य, परतंत्रता, शक्ति ,सादृश्य वह संख्या नामक आठ पदार्थ है। जिसके अनुसार 9 प्रकार के द्रव्य है- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल और स्थान ।मीमांसा दर्शन के अनुसार देव सत्ता, स्वर्ग- नर्क, कर्म, पुनर्जन्म, आत्मा पर विश्वास अटूट है। पूरी सृष्टि के निर्माण में ही द्रव्यों की आवश्यकता होती है। इसलिए जैमिनी की पूर्व मीमांसा में इसे पांचवा शास्त्र मानकर लौकिक साहित्य में जाना जाता है। प्रधान कर्म का विचार करने के कारण मीमांसा को कर्म मीमांसा अभी कहा जाता है। मीमांसा उन कर्मों ,नियमों को निर्धारित करती है जिसके अनुसार वैदिक विधि के विरोधाभास को दूर करके उनमें समरूपता आती है ।मीमांसा शब्द का तात्पर्य *समादृत विचार* ,पहले इसका प्रयोग वैदिक धर्म कृतियों की व्याख्या करने के लिए होता था परंतु अब इसका अर्थ किसी समीक्षात्मक अधिवेशन के रूप में लिया जाता है। आचार्य जेमिनी को मीमांसा दर्शन का प्रणेता माना जाता है, उन्होंने मीमांशा सूत्र लिखा तथा उस पर शबर ने एक भाष्य लिखा जिससे शाबरभाष्य कहा जाता है। उसके पश्चात कुमारिल भट्ट ने तीन खंडों में एक स्वतंत्र टीका लिखा है जिनके जिसका नाम श्लोक वार्तिक तंत्र वार्तिक और दृष्टिका है। आचार्य जेमिनी व्यास जी के शिष्य थे उनकी शिक्षा दीक्षा हिमालय पर्वत के बद्री क्षेत्र स्थित में आश्रम में हुए स्वयं वेदव्यास से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी और वह उनके चार प्रमुख छात्रों में से एक थे। उन्होंने कर्तव्य, दर्शन ,राजकीय शासन का निरूपण, न्याय का निरूपण किया। पूर्व मीमांसा की एक सूची में जैमिनी कहते हैं-" अथातो धर्म जिज्ञासा" अर्थात अब धर्म जिज्ञासा से प्रारंभ होती है। जेमिनी ने शब्द को नित्य माना है, वह स्थिर है, प्रकृति- विकृति वाला है, बोलने वाले की अधिकता से अधिक हो जाता है । मीमांसा में दो संप्रदाय हैं जिसमें एक के प्रणेता कुमारिल भट्ट तथा दूसरे के प्रभाकर मिश्र है। इन दोनों में प्रमाण, पदार्थ, द्रव्यगुण,, ज्ञान, भ्रम संबंधी दार्शनिक मतभेद है। दर्शन में पूर्व मीमांसा सबसे बृहद है, इसमें 12 अध्याय हैं, सामवेद की 3 शाखाओं में जैमिनीय शाखा में चार पर्व है, जिसमें मंत्रों की संख्या इस प्रकार है - आग्नेय पर्व -116 मंत्र, इंद्र पर्व - 352 मंत्र ,पावयन पर्व - 119 मंत्र, आरण्य पर्व- 55 मंत्र ।जेमिनी के आश्रम में वेदों पर

अनुसंधान, मंत्रों का वर्गीकरण का कार्य चला करता था। मीमांसा दर्शन के अनुसार ज्ञान की अपेक्षा कर्म का पद अच्छा है। शिक्षा लेना भी एक धर्म है परंतु इस कर्म का फल ज्ञान है। मीमांसा का तात्पर्य-विवेचन, ज्ञान प्राप्ति विवेचना की प्रक्रिया है इसे शिक्षा की प्रक्रिया से स्व ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया कहते हैं। यथार्थवादी दृष्टि से शिक्षा की प्रक्रिया को जगत की वस्तुओं से बोध कराने का प्रयास करता है। मीमांसा के अनुसार शिक्षा लेना देना मानव धर्म है, इसलिए व्यक्तिगत व सामाजिक हित की प्राप्ति के लिए शिक्षा का प्रयत्न अवश्यंभावी है। इसका पहला उद्देश्य, वेदांत कर्मों को धर्म के रूप में शिक्षा के द्वारा देना। दूसरा, लोगों में वैदिक धर्म की स्थापना करना। तीसरा ,वैदिक यज्ञ धर्म का प्रसार करना करना। वेदों के विषय विभाग, और अर्थवाद का ज्ञान , समझने की योग्यता प्रदान करना, भाषाशास्त्र व शब्द वाक्य का सही ज्ञान देना, मनुष्य के सामाजिक नैतिक कल्याण की पूर्ति करने के लिए वेदों और शास्त्रों की शिक्षा को भी पाठ्यचर्या में शामिल किया जाना चाहिए। भाषा और व्याकरण के विषय, भाषा शास्त्र इसमें बने शब्द, वाक्य, अर्थ आदि के ज्ञान संबंधी पक्ष पर मीमांसा अधिक जोर देती है। मीमांसा के 12 सूत्रों में धर्म-कर्म, यज्ञ, तंत्र आदि विषयों पर विचार दिए गए हैं। मीमांसा दर्शन के अनुसार शिक्षण विधि में सूत्र विधि, उपदेश, प्रवचन विधि प्रयोग परीक्षण विधि, अभ्यास विधि, तर्क विधि व क्रिया विधि का उल्लेख मिलता है। शिक्षा दीक्षा के समय वैदिक दर्शन के अनुसार विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को ही कर्मकांडी बनना आवश्यक है। छात्र ब्रह्मचारी व त्याग तपस्या का जीवन गुरु के आश्रम में रहकर बिताते हैं। वैदिक संस्कारों के अनुरूप छात्र को यज्ञ-हवन पूजा-पाठ सब सीखना आवश्यक है, व आजीवन व्यवहार में लाना है। छात्र में ज्ञान प्राप्ति की इच्छा हो, उसकी यह कोशिश होती थी कि वह स्वयं गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करें या अर्जित करें। वह आचार्य की तरह ज्ञानी, संस्कारों से युक्त होने की कोशिश करता था। अध्यापक विद्यार्थी दोनों में घनिष्ठ संबंध था। मीमांशा दर्शन के अनुसार संयोग गुरु का धर्म है कि वह विद्यार्थी को कर्तव्य तथा अनुशासन का ज्ञान प्रदान करें। शिक्षा में अनुशासन सुख- सत्कर्म से आती है ।संपूर्ण वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में शिक्षा विद्यालय एक विशिष्ट वातावरण प्रदान करता था जहां विद्यार्थी स्वयं धर्म कर्म की जिज्ञासा एवं प्रेरणा गुरु स्थान पर उपस्थित होकर लाभ ज्ञान लाभ अर्जित करता था।

2.8 सारांश

भारतीय दर्शन मानवीय संवेद समस्याओं के चिंतन का दर्शन है यह जीवन के सभी पहलवान को व्यवस्थित व तार किक दृष्टिकोण के साथ पहलुओं पर विचार करता है मानव के सभी प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है चाहे वह आध्यात्मिक हो अथवा व्यवहारिक इस पाठ को पढ़ने के पश्चात भारतीय दर्शन से जुड़ी विशेषताओं व शिक्षा दर्शन का उससे संबंधसुदर्शन का शिक्षा दर्शन का विद्यालय समस्याओं के निदान में महत्वपूर्ण योगदान को समझने में सहायता मिली है किस प्रकार भारतीय भाषा चिंतकों का भाषा वर्क अथवा शब्द को ड्रम के रूप में ब्रह्म स्थापित कर पूरे सृष्टि को शब्द में शामिल करने का प्रयास किया है भारतीय दर्शन भाषा चिंतक को ने कारकों ध्वनि समास पदबंध काल के निष्पादन से वाक्यों की निर्माण की प्रक्रिया को सरल रूप में दिखाने का प्रयास किया है दिखाया है पानी

पाणिनि अष्टध्याई के भृर्तहरी के सफोट सिद्धांत न्याय दर्शन मीमांसा व मीमांसा दर्शन के अंतर्गत भारतीय शिक्षा व भाषा विज्ञान को उत्कर्ष पर स्थापित कर दिया है।

2.9 शब्दावली

1. **प्रमाणिकता-** वास्तविकता, मौलिकता
2. **इंद्रियजन्य-** इंद्रियों से उत्पन्न
3. **अंतर्ज्ञान-** आंतरिक ज्ञान
4. **निर्विकल्प-** जिसमें परिवर्तन या भेद न हो सदा एक समान रहने बाला

अभ्यास प्रश्न

1. _____आस्तिक दर्शन से संबंधित है।
   i. चार्वाक
   ii. मीमांसा
   iii. बौद्ध
   iv. जैन
2. _____स्पोर्ट सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
   i. कणादी
   ii. कात्यायन
   iii. भृर्तहरी
   iv. जेमिनी
3. पाणिनि द्वारा रचित _____व्याकरण का महत्वपूर्ण ग्रंथ है।
   i. न्याय सूत्र
   ii. वाक्य दीप
   iii. श्लोक वार्तिक
   iv. अष्टध्याई
4. मीमांसा दर्शन_____ पर बल देता है।
   i. पाठ्यचर्या
   ii. धर्म कर्तव्य
   iii. ज्ञान
   iv. विद्यालय स्थापना

5. _____ न्याय दर्शन के प्रणेता थे।
   i. महर्षि गौतम
   ii. वात्सायन
   iii. पाणिनि
   iv. शंकराचार्य
6. _____को निर्विकल्प समाधि कहा गया है।
   i. बैखारी
   ii. परा
   iii. मध्यमा
   iv. पश्यंति
7. भारतीय दर्शन को_____ दर्शन भी कहा जाता है।
   i. षड
   ii. प्रथम
   iii. सप्त
   iv. अष्ट

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मीमांसा
2. भृर्तहरी
3. अष्टध्याई
4. ज्ञान
5. महर्षि गौतम
6. परा
7. षड

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रोफेसर सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद(1999) *भारतीय दर्शन की रूपरेखा* ,मोतीलाल बनारसीदास बंगलुरु दिल्ली बैंगलोर रोड बेंगलुरु
2. डॉक्टर मिश्रा ,जय नारायण मिस्र हृदय(2013) *भारतीय दर्शन* ,शिखर प्रकाशन इलाहाबाद

3. डॉक्टर पांडे ,राम शकल(2005) *भारतीय शिक्षा दर्शन की रूपरेखा* ,विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
4. डॉक्टर एलेक्स, शीलू मैरी(2008) *शिक्षा दर्शन* ,रजत प्रकाशन नई दिल्ली
5. डॉक्टर मिश्रा, महेंद्र कुमार (2011) *भारतीय दर्शन* , अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
6. शर्मा, राजेंद्र(2000) *शिक्षा के दार्शनिक आधार* , श्याम प्रकाशन जयपुर
7. डॉक्टर पाठक, आर पी (2008) *प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन*, कनिष्क पब्लिक डिस्ट्रीब्यूटर्स

निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. प्राचीन भारत में व्याकरण शिक्षा से संबंधित विकास की यात्रा पर एक निबंध लिखें।
3. मीमांसा दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

इकाई 3 - अधिगम योजना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अधिगम योजना : अर्थ एवं परिभाषा
3.4 अधिगम योजना के घटक
3.5 अधिगम योजना का संरचनावादी या 5 – इ मॉडल
3.6 अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल या 5-इ मॉडल का प्रारुप
3.7 संरचनावादी मॉडल या 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना का विस्तृत प्रारुप
3.8 अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल या 5 – इ मॉडल पर आधारित हिंदी विषय की एक अधिगम योजना
3.9 सारांश
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है। निरंतर इसमें परिवर्तन होते रहता है। समाज से शिक्षा का घनिष्ठ संबंध है। समाज की शिक्षा से अनेक अपेक्षाएँ होती हैं। अतः, समाज में होने वाले परिवर्तनों के अनुरुप शिक्षा में परिवर्तन भी वांछनीय है। समाज की निरंतर परिवर्तित होती अपेक्षाओं ने शिक्षा में उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं। इन परिवर्तनों में से एक है विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा। शिक्षा में जैसे ही मनोविज्ञान का समावेश हुआ या यूँ कहिए कि शैक्षिक मनोविज्ञान का जन्म हुआ वैसे ही पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था जिसे की शिक्षक केंद्रित शिक्षा व्यवस्था या पाठ्यक्रम केंद्रित शिक्षा व्यवस्था भी कहा जा सकता है में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभूत होने लगी। परिणामस्वरुप विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। इस परिवर्तन ने पाठ योजना का अधिगम योजना में परिवर्तन कर दिया। पाठ योजना में शिक्षक स्वयं को ध्यान में रखकर किसी विशेष पाठ पर केंद्रित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का नियोजन करता था। अधिगम योजना में विद्यार्थी को ध्यान में रखकर किसी विशेष पाठ पर केंद्रित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का नियोजन किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में अधिगम योजना पर आधारित है। इस इकाई में शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया में

शामिल समस्त व्यक्तियों को अधिगम योजना एवं उसके विविध पक्षों का वर्णन किया गया है जो बहुत ही उपयोगी है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. अधिगम योजना के संप्रत्यय का वर्णन कर सकेंगे।
2. अधिगम योजना के विभिन्न घटकों की चर्चा कर सकेंगे।
3. अधिगम योजना के संरचनात्मक मॉडल या 5 – इ मॉडल का वर्णन कर सकेंगे।
4. हिंदी भाषा शिक्षण के लिए संरचनवादी मॉडल या 5 – इ मॉडल पर आधारित एक अधिगम योजना का निर्माण कर सकेंगे।

3.3 अधिगम योजना: अर्थ एवं परिभाषा

अधिगम योजना का आशय, एक निश्चित समय अवधि के लिए अधिगम के नियोजन हेतु प्रयोग किए जाने वाले दस्तावेज से है। इसका स्वरुप सामान्यतः क्रियात्मक एवं ऑनलाइन होता है लेकिन यह आवश्यक नहीं है। इसका विकास विद्यार्थी द्वारा शिक्षक, अभिभावक एवं परामर्शक के सहयोग से दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामान्यतः माध्यमिक एवं उच्च विद्यालय के स्तर पर किया जाता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि इसका विकास सिर्फ माध्यमिक एवं उच्च विद्यालय के स्तर पर ही किया जा सकता है। इसक प्रयोग प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर भी किया जा सक्ता है। अधिगम योजना के विकास के पीछे यह मान्यता कार्य करती है कि विद्यार्थी स्वयं को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में अधिक शामिल महसूस करेगी और यदि वो इन बातों का निश्चय कर लें को वो सीखना चाहते हैं, वे कैसे सीखना चाहते हैं तथा उन्हें सीखने की आवश्यकता क्यों पड़ी तो वो, सीखने के लिए अधिक अभिप्रेरित होगी, उनकी विद्यालयी उपलब्धि अधिक होगी, तथा अपने शिक्षा पर अधिक स्वामित्व का अनुभव करेगा। अधिगम योजना व्यक्तिगत भी हो सकता है और पूरी कक्षा के लिए भी हो सकता है। अधिगम योजना का प्रयोग विद्यार्थियों द्वारा सामान्यतः व्यक्तिगत रुप से अपने अधिगम को नियोजित करने के लिए किया जाता है लेकिन इसका प्रयोग समूह में भी किया जा सकता है। यहाँ तक कि शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही संस्थाएँ भी इसका प्रयोग कर सकती है। इसे कार्य योजना के रुप में भी समझा जाता है। यह एक ऐसे कार्य योजना का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें शिक्षक द्वारा शिक्षण के प्रभावी संपादन के लिए एवं विद्यार्थी द्वारा व्यक्तिगत रुप से या सामूहिक रुप से अधिगम के प्रभावी संपादन के लिए संचालित किए जाने वाले कार्य-कलाप शामिल होते हैं।

3.4 अधिगम योजना के घटक

एक सुनियोजित अधिगम योजना के निम्नलिखित घटक होते हैं:

1. **अधिगम उद्देश्यों का एक समूह-** यह अधिगम योजना का सबसे महत्वपूर्ण घटक होता है। अधिगम उद्देश्यों का एक समूह उन शैक्षिक उद्देश्यों का समूह होता है जिसे एक व्यक्ति या संगठन प्राप्त करना चाहता है। शैक्षिक उद्देश्य दो प्रकार से लिखे जा सकते हैं- दीर्घकालीन उद्देश्य एवं अल्पकालीन उद्देश्य। एक बेहतर अधिगम योजना बनाने के लिए दीर्घकालीन उद्देश्यों को ऐसे अल्पकालीन उद्देश्यों, जिन्हें कि एक सप्ताह या एक महीने भर के भीतर प्राप्त किया जा सके, के रुप में परिवर्तित कर के लिखना श्रेयस्कर होता है।
2. **वास्तविक व्यवहार के रुप में क्रियाओं का निश्चयीकरण-** प्रत्येक अधिगम उद्देश्य के लिए कुछ क्रियाएँ व्यावहारिक रुप में निश्चित की जानी चाहिए। अधिगमकर्ता इन क्रियाओं के संपादन करता है और उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।
3. **क्रिया का संसाधन या साक्ष्य के साथ संबंध-** संसाधन से आशय उस किसी भी चीज से है जिसका प्रयोग यह अनुभूत करने के लिए किया जा सकता है कि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रियाओं का संगठन किया गया है। ये संसाधन मूर्त भी हो सकते हैं तथा अमूर्त भी। अर्थात यह किसी उपकरण तथा पाठ्यपुस्तक के रुप में भी हो सकता है या फिर किसी विचार या कहानी के रुप में भी। क्रियाओं के संपादन के लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है। अतः, प्रत्येक क्रिया का किसी न किसी साधन के साथ संबंध अवश्य होना चाहिए।
4. **साक्ष्य-** साक्ष्य से आशय शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के संकेतक से है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि साक्ष्य यह प्रदर्शित करता है कि संपादित क्रिया द्वारा निर्धारित अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रगति हुई या नहीं और अंतिम रुप से उद्देश्य की प्राप्ति हुई या नहीं।

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम योजना को अपने शब्दों में परिभाषित करें।
2. अधिगम योजना के विभिन्न घटकों के नाम लिखें ।

3.5 अधिगम योजना का संरचनावादी मॉडल या फाइव - इ मॉडल

यह अधिगम के संरचनावादी उपागम पर आधारित एक अधिगम योजना है जो मुख्यतः यह बताता है कि विद्यार्थी अपने पुराने विचारों के आधार पर नए विचारों का सृजन करते हैं। इसे फाइव - इ मॉडल इसलिए

कहा जाता है कि इसमें शामिल चरणों के नाम की शुरुआत अंग्रेजी भाषा के अल्फाबेट के एक सदस्य 'इ' से शुरु होती है।

ये 5 – इ (E) निम्नलिखित हैं:

1. इन्गेज
2. एक्सप्लोर
3. एक्सप्लेन
4. एलोबोरेट
5. इवैल्यूएशन

i. **इन्गेज-** इस चरण में विद्यार्थियों को उत्तेजित किया जाता है एवं उनकी उत्सुकता को आकर्षित किया जाता है। यहाँ विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें पढ़ने के लिए आमंत्रित किया जाता है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को सीखे जाने वाले संप्रत्यय, प्रक्रिया एवं कौशलों में मानसिक रुप से व्यस्त रखना है। इसमें निम्नलिखित क्रियाओं को शामिल किया जाता है:

- अतीत एवं वर्तमान के अधिगम अनुभव के मध्य संबंध स्थापित करना; तथा
- तत्कालीन क्रिया-कलाप के अधिगम के वांछित परिणाम के प्रति विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत विचार पर ध्यान केंद्रित करना;

ii. **एक्सप्लोर-** इस चरण पर अधिगमकर्ता अपने वातावरण में अनुसंधान करता है। यह चरण विद्यार्थियों को अनुभव का एक सामान्य आधार प्रदान करता है। यहाँ अधिगमकर्ता संप्रत्यय, प्रक्रियाओं एवं कौशलों की पहचान करते हैं तथा उन्हें विकसित करते हैं। यहाँ विद्यार्थी अपने वातावरण को सक्रिय रुप से समझते हैं तथा अधिगमित किए जाने वाले संप्रत्ययों या अधिगम में प्रयुक्त किए जानेवाले सामग्रियों को परिवर्तित करते हैं।

iii. **एक्सप्लेन-** इस सोपान पर विद्यार्थी अपने वातावरण से ढूँढ कर निकाले गए संप्रत्यय की व्याख्या करते हैं। उनके इस संप्रत्यय के प्रति विकसित की गई अपनी समझ को शाब्दिक रुप देने या नए कौशल को व्यवहार में प्रदर्शित करने का इस चरण में पर्याप्त अवसर रहता है। यह सोपान शिक्षकों को संप्रत्यय की परिभाषाओं, व्याख्यायों, प्रक्रियाओं एवं कौशलों का औपचारिक परिभाषीकरण का बहुत अवसर प्रदान करता है।

iv. **एलोबोरेट-** इसका शाब्दिक अर्थ है विस्तार देना। यह सोपान विद्यार्थियों को अपने वातवरण से ढूँढ कर निकाले गए संप्रत्यय को विस्तार देने तथा कौशल एवं व्यवहार का अभ्यास करने का अवसर देता है। नए अनुभव के माध्यम से विद्यार्थी मुख्य संप्रत्ययों का गहन एवं व्यापक समझ विकसित करता है। इस पड़ाव पर अधिगमकर्ता अपनी रुचि के क्षेत्र के प्रति अधिक जानकारी प्राप्त करता है तथा अपने कौशलों को संप्रेषणीय रुप प्रदान करता है।

v. **इवैल्यूएशन-** यह सोपान विद्यार्थियों को समस्या का मूल्यांकन करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा शिक्षकों को अधिगमित किए जाने वाले मुख्य संप्रत्यय के प्रति विद्यार्थियों की समझ तथा कौशलों के विकास को मूल्यांकित करने का अवसर प्रदान करता है।

3.6 अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल या 5-इ मॉडल का प्रारुप

अधिगम योजना में मुख्य रुप से इस बात पर बल दिया जाता है कि कैसे विद्यार्थी को अधिगम के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षक संरचनावादी उपागम को अपनाते हुए अधिगम योजना के विभिन्न चरणों, एकत्रित सामग्रियों, संपादित की जा सकने वाली क्रियाओं, आदि को एक क्रम में व्यस्थित करता है। इसका उद्देश्य समस्त अधिगम प्रक्रिया को व्यवस्थित करना होता है। इसके साथ ही शिक्षक अधिगम को महत्तम स्तर तक ले जाने के लिए प्रक्रिया का मूल्यांकन भी करता है। अधिगम के संरचनावादी योजना को ही अधिगम के 5-इ मॉडल की भी संज्ञा दी जाती है। नीचे अधिगम के 5-इ मॉडल का एक प्रारुप उदाहरण के लिए दिया गया है:

तालिका 1 : 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना का प्रारुप

इन्गेज	विद्यार्थी को व्यस्त करने के लिए वस्तु, घटना या प्रश्न। विद्यार्थी क्या जानते हैं एवं क्या कर सकते हैं के बीच में संबंध स्थापित करना।
एक्सप्लोर	खोजे गए वस्तु एवं घटनाएँ। निर्देशन के साथ प्रत्यक्ष कार्य-कलाप।
एक्सप्लेन	संप्रत्यय एवं प्रक्रिया के प्रति अपनी समझ का विद्यार्थी द्वारा व्याख्या किया जाना। संप्रत्यय के और बेहतर समझ के लिए तथा नए संप्रत्यय के साथ उसका संबंध स्थापित करने के लिए नए संप्रत्ययों एवं कौशलों को विद्यार्थियों से परिचित करया जाना।
एलोबोरेशन	इस चरण पर किए जानेवाले क्रिया-कलाप विद्यार्थियों को विभिन्न प्रसंगों में संप्रत्ययों की अपनी समझ का प्रयोग करने तथा नए कौशलों को सीखने एवं सीखे गए कौशलों को और प्रखर करने की अनुमति देते हैं।
इवैल्युएशन	विद्यार्थी अपने ज्ञान, कौशल एवं योग्यताओं का मूल्यांकन करते हैं। इस स्तर पर किए जाने वाले कार्य-कलाप विद्यार्थी के विकास एवं पाठ के प्रभावशीलता को मूल्यांकित करने की अनुमति देते हैं।

3.7 संरचनावादी मॉडल या 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना का विस्तृत प्रारुप

तालिका 1 में अधिगम योजना के 5-इ मॉडल के प्रारुप का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में 5-इ मॉदल के पांचों चरण एवं उनके कार्य को बताया गया है। लेकिन एक बेहतर अधिगम योजना बनाने के लिए यह पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए प्रत्येक चरण पर विद्यार्थी द्वारा किए जाने वाले कार्य तथा शिक्षक द्वारा किए जानेवाली कार्यों का वर्णन भी आवश्यक है। 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना के विस्तृत वर्णन, जिसमें कि अधिगम योजना के प्रत्येक स्तर पर किए जा सकने वाले कार्य–कलाप तथा शिक्षक एवं विद्यार्थी द्वारा किए जा सकने वाले कार्य का वर्णन शामिल है, को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका 3: 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना का विस्तृत वर्णन

5 - इ के चरण	किए जा सकनेवाले कार्य-कलाप	शिक्षक द्वारा किए जा सकने वाले कार्य	विद्यार्थी द्वारा किए जा सकने वाले कार्य
इन्गेज	➢ प्रदर्शन ➢ पठन ➢ स्वतंत्र लेखन ➢ चित्र विश्लेषण ➢ मस्तिष्क झंझावत	➢ रुचि विकसित करना ➢ उत्सुकता जागृत करना ➢ प्रश्न पूछने के लिए तत्पर करना ➢ उन प्रतिक्रियाओं को चुनना जो यह प्रकट करते हों कि विद्यार्थी क्या जानते हैं या संप्रत्यय के विषय में क्या सोचते हैं ?	➢ प्रश्न पूछेंगे, यथा- ऐसा क्यों हुआ? मैं इसके विषय में पहले से क्या जानता हूँ? मैं इसके विषय में क्या ढूँढ पाऊँगा। ➢ विषय में अपनी रुचि दिखाएगा

एक्सप्लोर	➢ अनुसंधान कार्य ➢ सूचनाओं को एकत्र करने के लिए प्रामाणिक सामग्रियों को पढ़ना ➢ समस्या का समाधान करना ➢ एक मॉडल या प्रतिमान का निर्माण करना	➢ विद्यार्थियों को बिना अपने शिक्षक से प्रत्यक्ष रुप से निर्देश प्राप्त किए मिलकर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना ➢ विद्यार्थियों को पारस्परिक अंतर्क्रिया करते समय अवलोकित करना एवं उनके वार्तलाप को सुनना ➢ आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थियों के अनुसंधान कार्य को पुनर्निर्देशित करने के लिए खोजी प्रश्न पूछना विद्यार्थियों को समस्या के समाधान करने के लिए समय प्रदान करना	➢ क्रिया-कलाप के लिए तय समय सीमा के भीतर स्वतंत्रतापूर्वक सोचना ➢ पूर्वानुमान एवं उपकल्पनाओं की जाँच करना ➢ नए पूर्वानुमान करना एवं नई उपकल्पनाओं का निर्माण करना, विकल्पों की जाँच करना एवं अन्य व्यक्तियों के साथ तत्संबंधित परिचर्चा करना ➢ अवलोकनों एवं विचारों का अभिलेख रखना ➢ निर्णयों को खारिज करना या नकारना
एक्सप्लेन	➢ विद्यार्थी का विश्लेषण एवं व्याख्या ➢ विषय के पक्ष में विचार एवं साक्ष्य ➢ संरचनात्मक रुप से प्रश्न पूछना ➢ पठन एवं परिचर्चा ➢ शिक्षक की व्याख्या चिंतन कौशल से संबंधित कार्य-कलाप यथा – तुलना , वर्गीकरण, त्रुटि विश्लेषण आदि	➢ संप्रत्यय एवं परिभाषा को अपने शब्द में प्रस्तुत करने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना ➢ विद्यार्थियों से साक्ष्य एवं स्पष्टीकरण माँगना ➢ औपचारिक रुप से परिभाषा देना, व्याख्या करना एवं नए नाम देना ➢ संप्रत्ययों की व्याख्या करने के लिए विद्यार्थियों के पूर्व अनुभवों को आधार के रुप में प्रयुक्त	➢ संभावित समाधान एवं उत्तरों की व्याख्या अन्य व्यक्तियों से करना ➢ दूसरों की व्याख्या को औपचारिक रुप से सुनना ➢ दूसरों की व्याख्या से संबंधित प्रश्न पूछना ➢ शिक्षकों द्वारा प्रदान की जानेवाली व्याख्या को सुनना तथा उसकी व्याख्या करने का प्रयास करना ➢ पूर्व क्रिया-कलापों को संकेतित करना ➢ व्याख्याओं में पूर्व में

		करना	अभिलेखित किए गए अवलोकित तथ्यों का प्रयोग करना
एलोबोरेट	➢ समस्या समाधान ➢ निर्णय लेना ➢ प्रयोगात्मक अनुसंधान ➢ चिंतन कौशल से संबंधित कार्य-कलाप यथा – तुलना, वर्गीकरण, अनुप्रयोग	➢ पूर्व में प्रदान किए गए औपचारिक नामों, परिभाषाओं एवं व्याख्याओं के प्रयोग की विद्यार्थियों से आशा करना ➢ नई परिस्थिति में सीखे गए संप्रत्यय एवं कौशलों के अनुप्रयोग करने एवं उसका विस्तार करने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना ➢ विद्यार्थियों को वैकल्पिक व्याख्याओं को याद दिलाना ➢ उपलब्ध आँकड़ों एवं साक्ष्यों को विद्यार्थियों को बताना तथा उनसे पूछना कि आप पहले से क्या जानते हैं तथा आप क्या सोचते हैं? ➢ एक्स्प्लोर वाले चरण की नितियों को भी यहाँ लागू किया जा सकता है	➢ नए नाम, परिभाषा, व्याख्या तथा कौशल का नई लेकिन समान परिस्थिति में अनुप्रयोग करना ➢ प्रश्न पूछने, उत्तर प्रस्तावित करने, निर्णय लेने, तथा अनुसंधान कार्य का प्रारुप निर्माण करने में पूर्व सूचनाओं एवं ज्ञान का प्रयोग करना ➢ साक्ष्यों से तार्किक निष्कर्ष निकालना ➢ अवलोकनों एवं व्याख्याओं को अभिलेखित करना ➢ साथियों में संप्रत्यय के समझ की जाँच करना
इवैल्युएट	➢ उपरोक्त में से कोई भी एक अंकन उपकरण का विकास करना ➢ परीक्षण ➢ निष्पादन का मूल्यांकन किसी	➢ जब विद्यार्थी नवीन संप्रत्ययों का अनुप्रयोग करते हैं तब उनका अवलोकन करना ➢ विद्यार्थियों के ज्ञान एवं कौशलों का	➢ अवलोकन तथा पूर्व में स्वीकृत किए गए व्याख्याओं का प्रयोग करके मुक्तांत प्रश्नों के उत्तर देना ➢ किसी संप्रत्यय या कौशल के ज्ञान या समझ का प्रदर्शन ➢ स्वप्रगति एवं ज्ञान का

	वस्तु का निर्मान करना ➢ रोजनामचा या दिन भर के कार्य-कलाप का लेखा-झोखा लिखना ➢ पार्श्वचित्र	मूल्यांकन करना ➢ विद्यार्थियों के चिंतन एवं व्यवहार में आए परिवर्तनों के साक्ष्य ढूँढना ➢ विद्यार्थियों कि स्वयं के ज्ञान एवं समूह में संसाधित किए जाने वाले कौशलों का मूल्यांकन करने की अनुमति देना ➢ मुक्तांत प्रश्नों यथा- आप ऐसा क्यों सोचते हैं?, आपके पास इस विषय में क्या साक्ष्य हैं? आप इस विषय में क्या जानते हैं? आप इसकी व्याख्या कैसे करेंगे? आदि को पूछें?	मूल्यांकन करना ➢ भावी अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए संबंधित प्रश्न पूछना

अभ्यास प्रश्न

3. संरचनावादी मॉडल या 5 – इ मॉडल में '5 – इ' से क्या आशय हैं।

3.8 अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल या 5 – इ मॉडल पर आधारित हिंदी विषय की एक अधिगम योजना

किसी भी प्रकार की योजना के बेहतर क्रियान्वयन के लिए उस योजना की स्पष्ट समझ योजना में शामिल व्यक्तियों को होना चाहिए। अधिगम योजना शब्द जितना सरल है उसका निर्माण एवं क्रियान्वयन उतना ही जटिल। कोई व्यक्ति सिर्फ योजना के प्रारुप एवं उसमें शामिल विभिन्न चरणों में किए जाने वाले क्रियाओं, शिक्षक के उत्तरदायित्व एवं विद्यार्थी के उत्तरदायित्व को सैद्धांतिक रुप में जानकर अधिगम उओजना मो समझ नहीं सकता है। फिर उसके निर्माण एवं क्रियान्वयन की तो कल्पना ही नहीं की जा

सकती है। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को अधिगम योजना से भले-भाँति परिचित कराने के लिए इस योजना का एक उदाहरण आवश्यक है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस खंड में अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल या 5 – इ मॉडल पर आधारित हिंदी विषय के एक अधिगम योजना का विकास किया गया है।

मेरा परिवार

कक्षा –3

उद्देश्य – इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- विद्यार्थियों में परिवार के प्रति समझ विकसित करेगा
- विद्यार्थी बड़ा परिवार, छोटा परिवार, संयुक्त परिवार, एकाकी परिवार, आदि के संप्रत्यय को समझ सकते हैं
- विद्यार्थी के शब्द-भंडार में वृद्धि हगी तथा भाषाई कौशलों का विकास होगा
- विद्यार्थी कुछ गणितीय संप्रत्ययों यथा- संख्या, अंकगणितीय संक्रियाओं आदि को सीखेंगे

इकाई के प्रश्न

- परिवार किसे कहते हैं?
- परिवार से संबंधित विभिन्न पद क्या हैं?
- विद्यार्थी अपने परिवार के विभिन्न सदस्यों से कैसे संबंधित हैं?
- दादा एवं दादी हमारे लिए क्यों आवश्यक हैं एवं हमें वृद्ध व्यक्तियों की देख-भाल किस प्रकार करनी चाहिए?
- एकाकी एवं संयुक्त परिवार किसे कहते हैं?
- बड़ा एवं छोटा परिवार किसे कहते हैं?

आवश्यक संसाधन

- नीचे दिए गए चित्र की भाँति कार्यपुस्तिका 1
- लड़का एवं लड़की, युवक एवं युवती, वृद्ध एवं वृद्धा का चित्र
- परिवार का चित्र तथा दादा-दादी से संबंधित कहानी

- कार्यपुस्तिका - 2
- ग्रीटिंग कार्ड बनाने के लिए उपयुक्त रद्दी सामग्री

5-इ मॉडल के विभिन्न सोपान

इन्गेज- इस चरण में विद्यार्थी अनुदेशानत्मक कार्यों की पहचान करेंगे। यहाँ वे अपने पूर्व अनुभवों को नई सूचनाओं को ग्रहण करने के लिए सक्रिय करते हैं। सीखे जाने वाले संप्रत्यय में विद्यार्थी मनसिक रुप से व्यस्त हो जाते हैं। यहाँ शिक्षकों को विद्यार्थियों के समझ एवं गलतफहमी का मूल्यांकन करने का अवसर मिलता है।

1. पूर्व ज्ञान को सक्रिय करना- इस चरण में संपादित किया जानेवाला मुख्य कार्य विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को सक्रिय करना है। संप्रत्यय के विषय में विद्यार्थियों की वर्तमान समझ को जानने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए निम्नलिखित कार्य-कलापों को किया जा सकता है:

- अपने परिवार के विषय के में आप जो कुछ भी जानते हैं मुझे बताएँ – (जाने हुए को जानना)
- अपने परिवार में उपलब्ध विभिन्न संबंधों जिन्हें कि आप जानते हैं मुझे बताएँ – (प्रश्न पूछना/ सम्प्रत्यय निर्माण)
- अपने परिवार के विषय में जो आप नहीं जानते हैं वो मुझे बताएँ – (अज्ञात को जानना)
- अपने परिवार के विषय में आप जो कुछ और जानना चाहते हैं, मुझे बताएँ – (आशाओं का पता लगाना)

2. गलतफहमी/गलत अवधारणा का पता लगाना- पूर्व ज्ञान को सक्रिय करने के बाद शिक्षक का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य होता है पूर्व ज्ञान के संदर्भ में यदि कोई गलतफहमी हो तो उसका पता लगाना। नीचे कुछ संभावित गलतफहमियों को सूचीबद्ध किया गया है। आप और गलतफहमियों का पता लगाकर उन्हें सूचेबद्ध कर सकते हैं।

- घर एवं परिवार का अर्थ
- कब चाचा एवं चाची जैसे शब्द का प्रयोग करना है (बालक बहुत सारे बड़े लोगों के लिए चाचा एवं चाची जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं)
- कब भाई एवं बहन जैसे शब्द का प्रयोग करना है (बालक यह अवलोकित करते हैं कि रक्त संबंधों के इतर भी भाई –बहन का प्रयोग किया जाता है)
- क्या बिना संतान वाली दंपति को परिवार कहा जा सकता है?

- उनकी यह समझ हो सकती है कि एक घर में रहने वाले सारे सदस्य को परिवार कहते हैं।

एक्सप्लोर- इस पड़ाव पर विद्यार्थी सीखे जाने वाले कार्य एवं अनुभव में प्रत्यक्ष रुप से शामिल हो जाते हैं। विद्यार्थी एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। इसलिए वे अपने विचारों एवं अनुभवों को साझा करते हैं ताकि एक सामान्य अनुभव या समझ का विकास हो सके। इस पड़ाव पर विद्यार्थियों द्वारा पता लगाए जाने वाले कुछ मुख्य संप्रत्यय निम्नलिखित हैं:

- परिवार, घर, मकान
- भाई, बहन, चचरे भाई-बहन
- चाचा-चाची(पैतृक/मातृक)
- माता-पिता, दादा-दादी, परदादा- परदादी
- भतीजा-भतीजी
- छोटा परिवार, बड़ा परिवार, संयुक्त परिवार, एकाकी परिवार

विद्यर्थी दो की संख्या या छोटे समूह में कार्य करते हुए इन संप्रत्ययों के विषय में पता लगाएँगे। इसके लिए वे निम्नलिखित कार्य करेंगे:

- अधिक ज्ञानवान व्यक्तियों यथा मात-पिता, वरिष्ठ विद्यार्थी, या भाई-बहनों से पूछेंगे (विशेषज्ञों का अनुभव लेना)।
- पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य पुस्तकों में परिवार के विषय में क्या लिखा गया है उसे पढ़ें (स्व अध्ययन)
- शब्दकोश को पढ़ाना
- फ्लो चार्ट बनाना

एक्सप्लेन - इस पड़ाव पर विद्यार्थी अपने द्वारा पता लगाए गए सम्प्रत्ययों का विश्लेषण करता है।शिक्षक द्वारा उनके समझ को स्पष्ट किया जाता है तथा यदि आवश्यक हो तो उसमें सुधार किया जाता है। इस पड़ाव पर विद्यार्थी अपने अनुभवों का प्रयोग संप्रेषणीय रुप में करने लगता है। यह पड़ाव शिक्षकों को औपचारिक पदों एवं सम्प्रत्ययों को लिखने एवं व्याख्या करने का अवसर प्रदान करता है।

- छोटे समूहों में वे अपने विचारों को समूह के अन्य सदस्यों के साथ साझा करेंगे (समूह कार्य)

- उपरोक्त सभी संप्रत्ययों पर प्रस्तुतीकरण देना। इसके लिए फ्लो चार्ट या पावर प्वाइंट प्रस्तुतीकरण का प्रयोग किया जा सकता है (प्रस्तुतिकरण)
- सुकराती प्रश्नों की सहायता से शिक्षक विद्यार्थियों की सहायता यदि संप्रत्यय की व्याख्या करने में कुछ कमी रह गई हो तो उसकी पूर्ति करने में करता है।
- विद्यार्थी इस कार्य पुस्तिका को अपने शर्ट पर पिन करेगा एवं इस प्रकार घुमेगा की अन्य विद्यार्थियों के परिवार के विषय में पढ़ सकें (स्वयं का विज्ञापन)।
- विद्यार्थी अपने परिवार के विषय में पूरी कक्षा में बातचीत करेगा (वार्तालाप)।
- शिक्षक इन आँकड़ों को सारणीबद्ध करेंगे।

मेरा परिवार

कार्यपुस्तिका – 1 लेकर उसे पूरा करें।

कार्यपुस्तिका- 1 मेरा परिवार

मेरे परिवार का चित्र

यहां चिपकाएँ

1. मेरा नाम.....है।
2. मेरे पिताजी का नाम .....है।
3. मेरी माता जी का नाम.....है।
4. मेरे परिवार में सदस्यों की संख्या.....है।
5. मेरा परिवार संयुक्त/एकाकी.....है।
6. मेरा परिवार छोटा/बड़ा..... है।

तालिका 4: आँकड़ों का सारणीयन

परिवार के सदस्य	ऐसे विद्यार्थियों की संख्या जिनके घर में ये सदस्य हैं टैली	कुल
दादी		
दादा		
बहन		
भाई		
चाचा		
चाची		

तालिका 5: आँकड़ों का सारणीयन

परिवार में सदस्य	संख्या	टैली	कुल
भाई	एक		
	दो		
	तीन		
	तीन से अधिक		
बहन	एक		
	दो		
	तीन		
	तीन से अधिक		

- उपरोक्त आँकड़ों की सहायता से विद्यार्थी छोटे और बड़े परिवार के संप्रत्यय का अनुमान लगाएँगे। इसके साथ ही साथ वे संयुक्त एवं एकाकी परिवार के संप्रत्यय को भी समझने का प्रयास करेंगे (दृश्य चीजों का विवेचन करना)।
- विभिन्न चित्रों की सहायता से विद्यार्थी व्यक्तिगत रुप से या समूह में शामिल होकर विभिन्न प्रकार के परिवार का चित्र बनाएँगे (संप्रत्यय निर्माण)

एलोबोरेट- इस पड़ाव पर विद्यार्थी संप्रत्यय के प्रति अपनी समझ का विस्तार करता है। इस पड़ाव पर ही उन्हें अभ्यास करने का अवसर भी प्रदान किया जाता है ताकि वे संप्रत्यय की व्यापक एवं गहन समझ विकसित कर सके।

- विद्यार्थियों से लडको एवं लड़कियों, युवकों एवं युवतियों तथा वृद्धों एवं वृद्धाओं के चित्र लाने कहे। इन चित्रों को विद्यार्थी द्वारा एक चार्ट पेपर पर चित्रों को अलग-अलग समूह में इस प्रकार लगवाएँ कि छोटा एवं बड़ा परिवार तथा एकाकी एवं संयुक्त परिवार बनाया जा सके।
- पारिवारिक स्थिति जिसमें एक अभिभावक द्वारा छोटे एवं बड़े बच्चों की देखभाल तथा तथा बिना अभिभावक के छोटे एवं बड़े बच्चों की देखभाल को दर्शाया गया है का वर्णन एवं प्रस्तुतीकरण
- शिक्षक पूरी कक्षा को दादा-दादी के संबंध में एक कहानी सुनाएगा तथा विद्यार्थियों को भी उसी प्रकार की कहानी सुनाने के लिए कहेगा। इस क्रिया-कलाप का संचालन वृद्ध व्यक्तियों के प्रति प्यार एवं देखभाल के मूल्य को अधिगम योजना में शामिल करने के उद्देश्य से किया जाता है ।
- अभिभावक एवं दादा-दादी के लिए ग्रीटिंग कार्ड बनाना। इस गतिविधि से विद्यार्थियों में पर्यावरण संरक्षण के मूल्य को प्रोत्साहित किया जाएगा करने के उद्देश्य से किया गया है (हस्तकला)।
- माता-पिता के लिए विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त किए जाने वाले शब्दों का पता लगाना (शब्द संकलन)।
- अपने पड़ोस में स्थित छोटे परिवार, बड़े परिवार, संयुक्त परिवार या एकाकी परिवार का पता लगाना (सर्वे)।

इवैल्युएशन- यह पड़ाव विद्यार्थियों को संप्रत्यय के प्रति अपने समझ पर चिंतन करने तथा उसका मूल्यांकन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। शिक्षक विभिन्न साधनों का प्रयोग करके विद्यार्थियों के मुख्य संप्रत्यय के प्रति समझ का मूल्यांकन करता है। हालाँकि इसे आखिरी पड़ाव कहा जाता है लेकिन

ऐसा है नहीं। मूल्यांकन सतत चलता रहता है। मूल्यांकन के पारंपरिक एवं आधुनिक दोनों उपागमों की चर्चा यहाँ की गई है।

1. **पारंपरिक मूल्यांकन-** इसमें निम्नलिखित तकनीकों को शामिल किया जा सकता है: **सत्य एवं असत्य कथन संबंधी प्रश्न यथा -**

   एक छोटे परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होती है (सत्य/असत्य)।

   रिक्त स्थानों की पूर्ति संबंधी प्रश्न यथा -

   ..... तथा उनके बच्चे एक परिवार बनाते हैं।

   बहुविकल्पी प्रश्न यथा-

   जब सिर्फ बच्चे अपने माता-पिता के साथ रहते हैं तो ऐसा परिवार कहा जाता है –

   i. एकाकी परिवार
   ii. संयुक्त परिवार
   iii. छोटा परिवार
   iv. बड़ा परिवार

   मिलान करें।

	स्तंभ 'अ'	**स्तंभ 'ब'**
i.	पिताजी की माता जी	(अ) चाचा
ii.	माताजी के पिताजी	(ब) दादा
iii.	3माताजी की बहन	(स) दादी
iv.	पिताजी के भाई	(द) मौसी

2. **वैकल्पिक मूल्यांकन-** नीचे कुछ वैकल्पिक मूल्यांकन के तकनीक दिए गए हैं। इसका प्रयोग आप यथारुप कर सकते हैं या फिर परिस्थिति के अनुसार आप इसमें परिवर्तन कर सकते हैं।
   अनुदेश - नीचे दिए गए विभिन्न कार्यकलापों में आपके या आपके साथी के निष्पादन के प्रति आपके मन में जो भाव है उसको सर्वाधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त करने वाले चेहरे पर सही का निशान लगाएँ।

तालिका 6: निर्धारण मापनी प्रकार - 1

क्रम संख्या	निकास मेरा/साथी का निष्पादन		क्या सुधार करना है?
1	परिवार का विज्ञापन करने में		
2	परिवार के विषय में बातचीत करने में		
3	कक्षा के आँकड़ों को सारणीबद्ध करने में		
4	परिवार के प्रकार का चित्र बनाने में		
5	कहानी कहना		
6	संप्रत्यय निर्माण		

निर्धारण मापनी प्रकार - 2

तालिका संख्या 7: निर्धारण मापनी प्रकार - 2

क्रम संख्या	व्यवहार	निर्धारण				
		बहुत खराब अच्छा				
		एक	दो	3	4:00	

						5:00
1	अवधान					
2	समय बद्धता					
3	सहभाग					
4	सहयोग					
5	संप्रेषण					
6	विश्वास					

3.9 सारांश

वर्तमान अधिगम योजना शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की माँग है। शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षण व्यवस्था के प्रचलन में आने के कारण पाठ योजना का स्थान अधिगम योजना ने ले लिया है। अधिगम योजना एक नवीन संप्रत्यय है। प्रस्तुत इकाई में शिक्षण-अधिगम व्यवसाय में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के उपयोग हेतु अधिगम योजना की विस्तृत व्याख्या की गई है। इकाई की शुरुआत अधिगम योजना के अर्थ एवं परिभाषा से की गई है। इकाई के अगले भाग में अधिगम योजना के विभिन्न घटकों को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार एक अधिगम योजना की संरचना का समग्र वर्णन इस इकाई में किया गया है। शिक्षण में मनोविज्ञान के सामवेश ने शिक्षण-अधिगम में संरचनावादी उपागम को जन्म दिया है। संरचनावादी उपागम का प्रयोग कर अधिगम योजना का निर्माण करने की प्रक्रिया का भी वर्णन इस इकाई में किया गया है। इस प्रकार के अधिगम योजना को 5-इ मॉडल पर आधारित अधिगम योजना भी कहा जाता है। अधिगम योजना के विस्तृत प्रारुप का वर्णन कर इस संप्रत्यय को और भी अधिक स्पष्ट किया गया है। इकाई के अंत में हिंदी विषय से संबंधित 'मेरा परिवार' शीर्षक पर आधारित एक संरचनावादी या 5- इ मॉडल अधिगम योजना का प्रस्तुतीकरण किया गया है। अधिगम योजना का उदाहारण द्वारा स्पष्तीकरण इस अध्याय को और भी

रुचिकर एवं उपयोगी बनाता है। इस प्रकार, यह अध्याय शिक्षण-अधिगम में कार्यरत व्यक्तियों के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अधिगम योजना का आशय, एक निश्चित समय अवधि के लिए अधिगम के नियोजन हेतु प्रयोग किए जाने वाले दस्तावेज से है।
2. अधिगम योजना के निम्नलिखित घटक होते हैं:
   i. अधिगम उद्देश्यों का एक समूह
   ii. वास्तविक व्यवहार के रुप में क्रियाओं का निश्चयीकरण
   iii. क्रिया का संसाधन या साक्ष्य के साथ संबंध
   iv. साक्ष्य
3. 5 – 'इ' का आशय इसके पाँच चरण जो कि अंग्रेजी अल्फाबेट के 'इ' अक्षर से शुरु होते हैं से हैं। ये पाँच चरण निम्नलिखित हैं:
   i. इन्गेज
   ii. एक्स्प्लोर
   iii. एक्स्प्लेन
   iv. एलोबोरेट
   v. एवैल्युएशन

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम योजना का अर्थ स्पष्ट करें।
2. अधिगम योजना के विभिन्न घटकों का वर्णन करें।
3. अधिगम योजना के संरचनावादी मॉडल का अर्थ बताते हुए उसके प्रारुप का विस्तृत वर्णन करें।
4. अधिगम के संरचनावादी मॉडल या 5- इ मॉडल पर आधारित हिंदी विषय के किसी प्रकरण के लिए एक अधिगम योजना बनाएँ।

इकाई 4 - भाषायी कौशलों का विकास एवं उनका मूल्यांकन: हिन्दी भाषा के विशेष सन्दर्भ में

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भाषायी कौशल का अर्थ
  4.3.1 भाषायी कौशल का महत्व
4.4 पठन कौशल का आशय एवं प्रकार
  4.4.1 सस्वर पठन एवं उसका महत्व
  4.4.2 मौन पठन एवं उसका महत्व
  4.4.3 पठन शिक्षण की प्रमुख विधियाँ एवं सावधानियाँ
4.5 श्रवण कौशल का आशय
  4.5.1 श्रवण कौशल के आवश्यक तत्व
  4.5.2 श्रवण कौशल का विकास
  4.5.3 श्रवण कौशल का महत्व
4.6 लेखन कौशल का आशय एवम महत्व
  4.6.1 लेखन कौशल का उद्देश्य
  4.6.2 लेखन कौशल का विकास
4.7 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का अभिप्राय
  4.7.1 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का महत्व
  4.7.2 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल के शिक्षण का उद्देश्य
4.8 उच्चस्तरीय भाषायी कौशल का आशय
4.9 सारांश
4.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रन्थ
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भाषा ज्ञान का प्रवेश द्वार है। बालक भाषा के द्वारा ही वस्तुओं के बारे में जानने व समझने का प्रयास करता है। इसके लिए ज्ञानार्जन में बालक भाषा के दो रूपों का प्रयोग करता है - मौखिक और लिखित। मौखिक भाषा के प्रयोग द्वारा वह दूसरों के विचारों को सुनने व अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है तथा लिखित भाषा द्वारा दूसरों के लिखित विचारों एवं भावों को पढकर समझने तथा अपनी अनुभूतियों एवं भावों को लिखकर संप्रेषित करने का कार्य करता है। इस प्रकार बालक भाषा के द्वारा अपने विचारों, भावों, अनुभूतियों के आदान-प्रदान एवं संप्रेषण के लिए चार क्रियाएँ करता है। सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। बालक को भाषायी व्यवहार के इन चार प्रमुख कार्यों में अभ्यास एवं प्रशिक्षण द्वारा कुशल एवं निपुण बनाना ही भाषायी कौशल कहलाता है। इकाई १.३ में भाषायी कौशल के अर्थ पर चर्चा किया गया है।

भाषा विकास के लिए सुनना या 'श्रवण' अनिवार्य योग्यता है। बालक सर्वप्रथम अपने माता-पिता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को सुनकर उसका अनुकरण करता है तथा अपने वातावरण को समझने व जानने का प्रयास करता है। सुनने में किसी प्रकार की त्रुटि या दोष से उसका भाषायी विकास अवरूद्ध हो जाता है। इसीलिए बचपन से बधिर (श्रवण अक्षम) बालकों में शब्दकोश के अभाव के कारण वे बोल नहीं पाते हैं। इस ईकाई १.४ के अन्तर्गत हम श्रवण कौशल के बारे में अध्ययन करेंगे।

भाषा कौशल के विकास की दूसरी अनिवार्य योग्यता बोलना या मौखिक अभिव्यक्ति कौशल है। इसके विकास के लिए आवश्यक है कि बालक में श्रवण कौशल का विकास हो गया हो अर्थात् वह दूसरों के विचारों को शुद्ध-शुद्ध और स्पष्ट सुनने में दक्ष हो। प्रायः देखा जाता है कि अशुद्ध सुनने वाला अशुद्ध बोलता भी है और लिखता भी है। इसीलिए प्रारम्भिक कक्षाओं में श्रवण और मौखिक अभिव्यक्ति के विकास पर ज्यादा बल दिया जाना चाहिए। ईकाई १.५ के अन्तर्गत मौखिक अभिव्यक्ति कौशल (बोलना) की विशेषताएँ, महत्व व विकास पर चर्चा किया गया है।

पढ़ना एक सोद्देश्य एवं सार्थक क्रिया है। इसके आवश्यक तत्व है -एकाग्रता एवं शब्दों में निहित अर्थ एवं भाव को ग्रहण करना। इस कौशल के विकास के लिए बालक निरन्तर अनुकरण एवं गहन अध्ययन की प्रक्रिया को अपनाता है। ईकाई १.६ के अन्तर्गत पठन कौशल में दक्षता विकसित करने के लिए उसके महत्व, प्रकार, गुण एवं विकास पर चर्चा किया गया है।

लेखन अभिव्यक्ति का सरल माध्यम है इसके लिए सुनना, बोलना और पढ़ना कौशल का विकास आवश्यक है। लेखन कौशल में निपुण एवं दक्ष होने पर बालक अपने विचारों एवं अनुभूतियों को लिपि के माध्यम से स्थायित्व प्रदान करता है। ईकाई १.७ के अन्तर्गत लेखन कौशल की विशेषता, महत्व एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

बालकों में भाषायी कौशल पर निपुणता एवं दक्षता प्राप्त करना एक लम्बी प्रक्रिया है। इसके लिए सभी भाषायी, कौशलों का पूर्ण विकास होना आवश्यक है। इसके द्वारा ही बालक उच्चस्तर पर अपने विचारों एवं अनुभूतियों को प्रभावशाली ढंग से रख पाता है तथा व्यवहार भी करता है। इसे ही उच्चस्तरीय भाषिक कौशल कहते हैं। ईकाई १.८ के अन्तर्गत उच्च-स्तरीय भाषिक कौशल पर चर्चा किया गया है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई क अध्यायांकराने के पश्चात आप-

1. बालक भाषायी के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
2. बालक भाषायी कौशल के प्रकारों को बता सकेंगे।
3. बालक भाषायी कौशल के प्रकारों (सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना) के विशेषताएँ एवं महत्व को बता सकेंगे।
4. बालक भाषायी कौशल के विकास के आवश्यक तत्वों का उल्लेख कर सकेंगे।
5. बालक भाषायी कौशल के विकास के प्रमुख विधियों को समझकर उसका उल्लेख कर सकेंगे।
6. बालक भाषायी कौशलों के विकसित करने में अध्यापक की भूमिका को बता सकेंगे।

4.3 भाषायी कौशल का अर्थ

बालक अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए भाषा को एक साधन के रूप में प्रयुक्त करता है। वह अपने कथन को दूसरों तक पहुँचाने के लिए उपयुक्त और सार्थक शब्दावली को सुनकर उसी रूप में उसका अर्थ ग्रहण करता है। वक्ता द्वारा कही गयी बात श्रोता तक उसी रूप में पहुँचने की क्रिया भाषायी संप्रेषण कहलाता है। भाषायी संप्रेषण के अन्तर्गत दो क्रियाएँ होती है। अपने विचारों को अभिव्यक्त करना या संप्रेषित करना तथा विचारों को ग्रहण करना या समझना। विचारों को संप्रेषित या अभिव्यक्ति हम बोलकर या लिखकर करते हैं। जबकि विचारों का ग्रहण हम सुनकर और पढ़कर करते हैं। भाषायी संप्रेषण के ये चार प्रमुख आयाम सुनना, पढ़ना, बोलना तथा लिखना ही भाषायी कौशल कहे जाते हैं। इन्हें अभ्यास एवं बार-बार दुहराने से सुदृढ़ता प्रदान होती है। भाषायी कौशल को निम्न चार्ट द्वारा समझा जा सकता है -

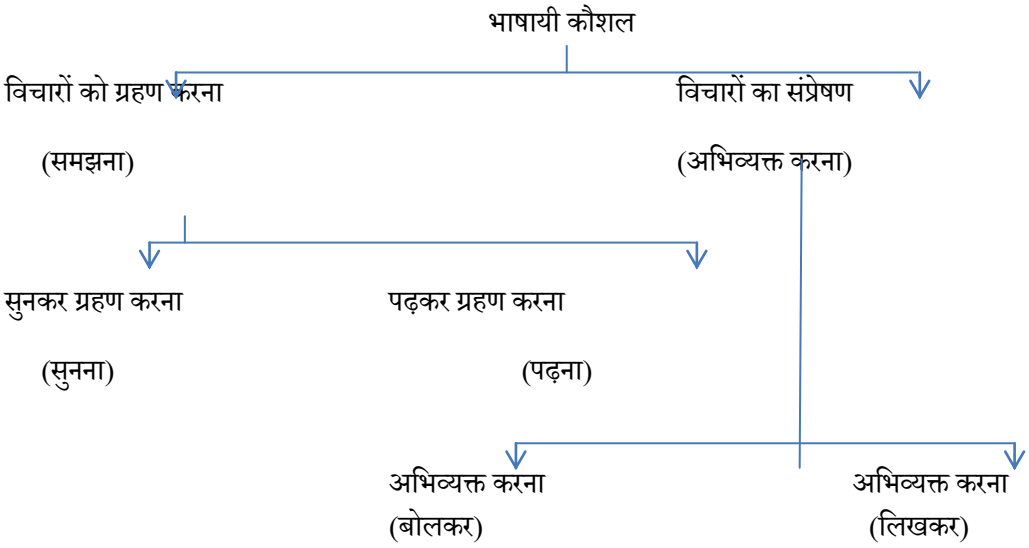

बालकों के भाषा शिक्षण या भाषायी विकास में भाषायी कौशल का विशेष महत्व है। बालकों में भाषा विकास का प्रारम्भ उसके परिवार व माता-पिता से ही होती है। वह अपने माता-पिता व बड़ों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को सुनता है और उसका अनुकरण करता है किंतु बलक द्वारा सीखी जाने वाली भाषा यह रूप जरूरी नहीं कि शुद्ध ही हो। इसके लिए आवश्यक है कि प्राथमिक स्तर पर ही इसके विकास पर ध्यान दिया जाय। इस पर ध्यान न देने पर वह त्रुटिपूर्ण भाषा सीखता है और अपने व्यवहारिक जीवन में वैसे ही उसका प्रयोग करता है। जिससे उसके चारों कौशल प्रभावित होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि बाल्यावस्था में ही बालकों के भाषायी कौशलों के विकासपर ध्यान दिया जाय। प्राथमिक स्तर बालकों में सीखने की प्रवृत्ति तीव्र होती है। अतः वह इन कौशलों को सहजता एवं सुगमता से सीख लेता है और उन पर शीघ्रता से दक्षता प्राप्त कर लेता है।

4.3.1 भाषायी कौशल का महत्व

i. बालक अपने विचारों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर सकता है।
ii. बालक दूसरों तक अपने भावों को आसानी से पहुँचा सकता है।
iii. भाषायी कौशलों में दक्ष होने पर अपने ज्ञान एवं अनुभूतियों को स्थायित्व प्रदान कर सकता है।
iv. मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा अल्प समय में सारगर्भित विचारों को संप्रेषित कर सकता है।
v. समाज में बेहतर समायोजन स्थापित कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. भाषायी कौशल का आशय क्या है ।
2. भाषायी कौशल के अन्तर्गत कौन-कौन से कौशल आते हैं ।

4.4 पठन कौशल का आशय एवं प्रकार

पठन कौशल भाषा शिक्षण का आवश्यक अंग है। पठन कौशल को वाचन कौशल भी कहा जाता है। वाचन शब्द 'वाक्' धातु से बना है जिसका अर्थ है- शब्द, वाणी अथवा कथन। लिखे हुए अथवा छपे हुए शब्दों का उच्चारण करना वाचन होता है। किन्तु वाचन का यह अर्थ संकुचित है। भाषा शिक्षण में वाचन का अर्थ लिखित सामग्री को पढ़ते हुए अर्थ ग्रहण करने की प्रक्रिया वाचन या पठन कहलाती है। यह सोद्देश्य, सार्थक व विचार प्रधान होती है। भाषा शिक्षण में वाचन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ आनन्द प्राप्ति व रसानुभूति का भी साधन है। प्रारम्भ में बालक परिवार एवं स्थानीय परिवेश के प्रभाव से अस्पष्ट एवं अशुद्ध उच्चारण करता है। जिससे उसका ज्ञान भी अपरिपक्व होता है। ऐसे में प्राथमिक स्तर पर बालक को विद्यालय में वाचन में परिपक्व एवं निपुड़ बनाने के लिये आवश्यक है कि उन्हे वाचन की सही व स्पष्ट उच्चार का ग्यान कराया जाय।

पठन के प्रकार - भाषा शिक्षण में बालक पठन कार्य दो प्रकार से करता है। एक तो वह मुँह से ध्वनियों का उच्चारण करते हुए अर्थ बोध एवं भवानुभूति करता है जिसे मौखिक पठन या सस्वर पठन कहते हैं। दूसरा शान्त रहकर मुँह से बिना आवाज निकाले मन, ही मन अर्थ ग्रहण करके पढ़ना, जिसे मौन वाचन या मौन पठन कहते हैं। पठन के प्रकार का विस्तृत वर्णन रेखाचित्रों द्वारा प्रदर्शन अंग्रांकित है – (रीता चौहान 2016)

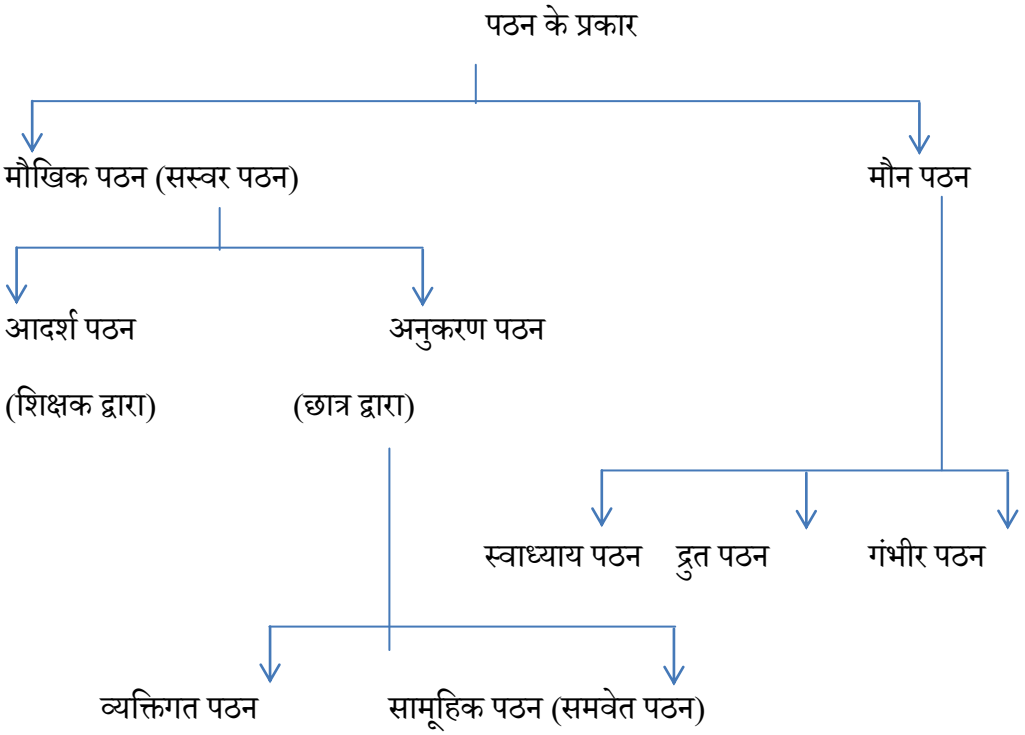

4.4.1 सस्वर पठन एवं उसका महत्त्व

सस्वर वाचन का अर्थ स्वर सहित वाचन करना है। भाषा शिक्षण में सस्वर वाचन का विशेष महत्व होता है। इससे बालकों का उच्चारण शुद्ध होता है और उनके अन्दर की झिझक दूर होती है। वे शुद्ध और प्रभावपूर्ण वाचन द्वारा श्रोता पर विशिष्ट प्रभाव डालते हैं और संगोष्ठियों, व्याख्यानो एवं वार्ताओं में प्रभावशाली ढंग से अपने विचार रख पाते हैं। इसके साथ ही उनकी उच्चारण शुद्ध होने पर लिखने में अशुद्धियाँ नहीं होती हैं। जिससे उनकी मौखिक और लिखित दोनों कौशलों में सुधार होता है। यह छोटी कक्षाओं (6-8 तक) ज्यादा उपयोगी होते हैं।

सस्वर पठन का महत्व

i. सस्वर वाचन से बालक की झिझक, संकोच व हिचकिचाकर आदि का निवारण होता है।

ii. बालकों का शब्दोच्चारण शुद्ध होता है।
iii. बालकों के शब्द भण्डार में वृद्धि होती है।
iv. बालकों की देखने से सम्बंधीत इन्द्रियों, ध्वनि एवं मस्तिष्क तीनों प्रशिक्षित होते हैं।
v. इससे बालकों को स्वराघात एवं बलाघात का भी समुचित ज्ञान हो जाता है।
vi. सस्वर वाचन के अभ्यास से बालक वाद-विवाद एवं भाषण कला में निपुण होते हैं।
vii. प्रारम्भिक स्तर पर बालकों के लिए सस्वर वाचन का विशेष महत्व होता है। क्योंकि इस स्तर पर बालक संगीत प्रेमी होता है।

4.4.2 मौन पठन एवं उसका महत्व

लिखित भाषा को बिना उच्चारण (ध्वनि) किए मन ही मन शान्ति पूर्वक पढ़ने और पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया को मौन पठन कहते हैं। मौन पठन करते समय पद्यांश में वर्णित भावों और विचारों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। व्यावहारिक जीवन में मौन पठन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। सार्वजनिक स्थानों, पुस्तकालयों में पत्र-पत्रिकाओं, मनोरंजन साहित्य, धर्मदर्शन आदि को मौन पठन से पढ़ना पड़ता है। मौन पठन में पठनकर्ता मौखिक पठन की अपेक्षा अधिक मनोयोग से पढ़ता है। वह कम समय में अधिक पढ़ लेता है तथा उसे थकान भी कम होती है। विद्यालयी जीवन और उसके बाद स्वाध्याय में मौन पठन अत्यंत उपयोगी ही होता है। यह उच्च कक्षाओं में ज्यादा प्रभावशाली होता है।

मौन पठन का महत्व

i. मौन वाचन में बालक का ध्यान केन्द्रित रहता है।
ii. मौन वचन से स्वाध्याय की आदत विकसित होती है।
iii. इससे समय की बचत होती है तथा वागेन्द्रियों में थकान कम होता है।
iv. मौन वाचन के समय चिन्तन प्रक्रिया चलती रहती है अतः पाठ को बालक समझते हुए पढ़ता चलता है।
v. मौन वाचन दूसरों को व्यवधान नहीं पहुँचाता है।
vi. यह दैनिक जीवन में, सामूहिक स्थानों पर अखबार पढ़ने, साहित्य पढ़ने, यात्रा के समय पत्र-पत्रिकाओं को पढने में महत्वपूर्ण होता है।
vii. उच्च कक्षाओं में मौखिक वाचन की अपेक्षा मौन वाचन ज्यादा हितकर होता है।

4.4.3 पठन शिक्षण की प्रमुख विधियाँ एवं सावधानियाँ

i. **वर्णबोध विधि -** इस विधि में सबसे पहले बालकों को वर्ण माला के वर्णों का ज्ञान कराया जाता है जिसमें सर्वप्रथम स्वरों का बाद में व्यंजन का ज्ञान कराया जाता है। वर्णों के पहचान के बाद मात्राओं का पूर्ण ज्ञान व शुद्ध उच्चारण तथा वर्णों को मिलाकर शब्द पढ़ने का अभ्यास कराया जाता है। जैसे - क, म, ल = कमल, न,ट,ख,ट = नटखट।

ii. **ध्वनि साम्य विधि -** इस विधि में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि प्रारम्भिक अवस्था में बालकों के सामने वे ही शब्द रखे जायें जिसमें समान ध्वनियाँ उच्चारित है। जैसे - राम, शाम, नाम, काम। प्रारम्भिक अवस्था में यह विधि उपयोगी होता है।

iii. **स्वरोच्चारण विधि-** इस विधि में अक्षरों तथा शब्दों की ध्वनियों को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें अध्यापक एक-एक अक्षर को श्यामपट्ट पर लिखकर उसका उच्चारण करता है। छात्र वर्णों को देखते हैं और उसका उच्चारण करते हैं इससे बालकों में वर्णों का ज्ञान होता है तथा ध्वनियों के शुद्ध उच्चारण की पहचान होता है।

iv. **अनुकरण विधि -** भाषा अनुकरण से ही सीखी जाती है। इस विधि में अध्यापक एक वर्ण, शब्द का उच्चारण करता है और उसका अनुकरण करते हुए बालक शब्दों तथा वर्णों का उच्चारण करना सीखता है। बालक धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप से वर्णों या शब्दों को पहचानने लगता है। यह अंग्रेजी भाषा शिक्षण में ज्यादा उपयोगी होती है।

v. **ड. देखो और कहो विधि -** इस विधि में शब्द से संबंधित वस्तु या चित्र दिखाकर पहले शब्द का ज्ञान कराया जाता है। जैसे 'आम' का चित्र दिखाकर बच्चों से पूछा जाता है यह क्या है बालक चित्र या वस्तु को देखकर उससे साहचर्य स्थापित कर शब्द को बोलने का अभ्यास करता है। किन्तु इस विधि में वे ही शब्द लिए जाए जो बालक की अनुभव परिधि में हो।

पठन करते समय सावधानियाँ

बालकों को पठन करते समय निम्नलिखित सावधानिया रखनी चाहिये।

i. पठन के समय मेज, दिवार आदि का सहारा न ले।
ii. पुस्तक बायें हाथ से पकड़े तथा नेत्र से 35 सेमी की दूरी पर रखें।
iii. पठन करते समय पूरा ध्यान पुस्तक पर ही न रखें, बीच-बीच में श्रोताओं पर भी ध्यान देते हैं।
iv. पाठ का प्रारम्भ और अंत मंद गति से करें जिसे बालकों को आदि और अन्त का स्पष्ट बोध हो।
v. पठन करते समय दाहिने हाथ से भावानुकूल भाव प्रकाशन भी करें।
vi. पठन आत्मविश्वासपूर्ण, कर्णप्रिय तथा रोचक हो।
vii. कक्षानुसार, उचित आरोह-अवरोह, यति, गति व हाथ का ध्यान दें।

अभ्यास प्रश्न

3. पठन कौशल का अर्थ लिखें ।
4. मौन पठन के दो गुण लिखें।

4.5 श्रवण कौशल का आशय

भाषा सीखने का प्रथम स्तर श्रवण है। यह अन्य कौशलों को विकसित करने का प्रथम आधार है। हम श्रवण को सुनने के अर्थ में भी समझते हैं। सुनना दो प्रकार का होता है। बिना समझे हुए सुनना और दूसरा भाषा को सुनकर अर्थ ग्रहण करना जिससे कि हम फिर भाषा के माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकें। भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में सुनने का आशय भाषा को सुनकर अर्थ ग्रहण करना एवं भाषा के माध्यम से प्रतिक्रिया देने से है। अतः परिभाषा रूप में कह सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त सार्थक ध्वनियों, शब्दों एवं भावों को कानों के माध्यम से ग्रहण कर, उसका अर्थ ग्रहण करने की प्रक्रिया श्रवण या सुनना कही जाती है।

हम बचपन से ही सुनकर ही भाषा को ग्रहण करते हैं और बाद में सुनने के आधार पर ही विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। बच्चा अपने परिवार में माता-पिता, भाई-बहन एवं अन्य सदस्यों द्वारा प्रयुक्त विचारों एवं भाषा को सुनकर अनुकरण करता है जिससे उसके शब्द भण्डार में वृद्धि होती है और उसी प्रकार बोलने का प्रयास भी करता है। अतः भाषा के अर्जन एवं व्यवहार के लिए सुनकर समझने के कौशल का बहुत महत्व है। जैसे ज्यादातर बधिर (बहरे) व्यक्ति भाषा के द्वारा बोलकर अपनी अभिव्यक्ति नही कर पाते हैं। उसका कारण यह नहीं है कि उनकी वागेन्द्रियाँ खराब है। बल्कि वे भाषा की ध्वनियों को न सुनपाने से शब्द भण्डार सीमित हो जाता है और उसका अर्थ भी ग्रहण नहीं कर पाते हैं यदि उनको उचित यन्त्रो द्वारा सुनने का प्रशिक्षण दिया जाय तो बधिर भी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं। अतः कह सकते हैं कि बिना सुने भाषा अर्जित नहीं की जा सकती। अच्छी तरह सुनने के कारण ही बालक इन ध्वनियों में सूक्ष्म अन्तर कर पाता है।

4.5.1 श्रवण कौशल केआवश्यक तत्व

श्रवण कौशल के विकास का आशय है उन्हें मौखिक भाषा सुनकर उसे अर्थ एवं भाव समझने की क्रिया में निपुड़ करना। इसके लिए बालकों को सुनने के आवश्यक तत्वों का विकास किया जाय। श्रवण कौशल के आवश्यक तत्व (रमन बिहारी लाल, २००८) निम्नलिखित है -

i. श्रोता को भाषा की ध्वनियों, ध्वनि समूहों एवं शब्दों का ज्ञान।
ii. श्रोता में मूल ध्वनियों एवं ध्वनि समूहों में अन्तर करने की योग्यता।
iii. श्रोता में सुनने की तत्परता।
iv. श्रोता में सुनने में उसकी रूचि एवं अवधान
v. श्रोता में धैर्यपूर्वक पूर्ण मनोयोग से सुनने की आदत
vi. सुनी हुई सामग्री का अर्थ एवं समझने की योग्यता
vii. बोलने वाले के हाव-भाव के अनुसार अर्थ एवं भाव समझने की योग्यता

4.5.2 श्रवण कौशल का विकास

बालकों में श्रवण कौशल के विकास की प्रक्रिया प्राथमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाती है और सतत प्रयास एवं अभ्यास के आधार पर पूर्ण होती है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक को इन कौशलों के विकास के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

i. माता-पिता द्वारा इनको छोटी-छोटी रोचक कहानियाँ सुनाई जायें।
ii. बच्चों के रूचियों के अनुसार छोटे-छोटे गीत सुनाए जायें।
iii. श्रवणेन्द्रियों की उचित देख-रेख करें तथा कर्ण दोष होने पर उचित उपचार कराया जाय।
iv. सुनाए गये कहानियों, कविताओं एवं गीतों पर आधारित एक या दो रोचक प्रश्न पूछे जायें।
v. शिक्षक पाठों का स्पष्ट एवं शुद्ध उच्चारण करें, उचित स्वर, गति एवं भाव-भंगिमा का प्रदर्शन करें।
vi. उच्च कक्षाओं में विद्यालय में अन्त्याक्षरी, भाषण, वाद-विवाद, प्रतियोगिता का अयोजन कराया जाय।
vii. बच्चों द्वारा देखे गये या सुने गये विषय वस्तु से संबंधी कुछ आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाय।

4.5.3 श्रवण कौशल का महत्व

अधिगम प्रक्रिया में श्रवण कौशल का विशेष महत्व है। श्रवण कौशल भाषा विकास की आधार शिला ही प्रारम्भ में बालक श्रवण कौशल के द्वारा ही अपने आस-पास के वातावरण एवं वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है तथा **श्रवण कौशल का महत्व** माता-पिता, परिवार के द्वारा विभिन्न सूचनाओं को सुनकर अपने शब्द भण्डार में वृद्धि करता है। श्रवण कौशल का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं।

i. प्रारम्भ स्तर पर बालक में ज्ञान प्राप्ति का आधार श्रवण ही होता है वह सुनकर ही अपने आस-पास एवं परिवार के बारे में जानता है।
ii. बालक के व्यक्तित्व के विकास में श्रवण कौशल का अधिक महत्व है। वह जिन ध्वनियों को अपने बड़ों से सुनता है वह उसके मन मस्तिष्क में अंकित हो जाता है अंकित ध्वनियाँ ही उसके भाषा ज्ञान का आधार बनती है।
iii. भाषा अनुकरण के द्वारा सीधी जाती है नये-नये शब्दों को सुनकर बालक अपने शब्द भण्डार में वृद्धि करता है।
iv. बालक परिवार के सदस्यों एवं अध्यापकों की बात सुनकर स्वयं अपने उच्चारण हाव-भाव, उतार-चढ़ाव उचित स्वर गति के अनुसार बोलने का प्रयास करता है इस प्रकार उसकी मौखिक अभिव्यक्ति का विकास होता है।
v. एक अच्छा श्रोता ही एक अच्छा वक्ता होता है।

vi. साहित्य की विविध विधाओं का अध्ययन, व्याख्या एवं अर्थ ग्रहण श्रवण पर ही आधारित होता है।

अभ्यास प्रश्न

5. श्रवण कौशल का आशय है –
   i. सुनना
   ii. समझना
   iii. ध्यान देना
   iv. सुनना और सुनकर अर्थ ग्रहण करना

4.6 लेखन कौशल का आशय एवं महत्व

बालक अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति दो रूपों से करता है। बोलकर या मौखिक और लिखकर। जब बालक अपने विचारों को ध्वनियों के माध्यम से मुँह से उच्चरित करके बोलता है तो उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहते है। किन्तु बालक जब उन्हीं भावों, विचारों या स्वानुभव को सार्थक विशिष्ट ध्वनि प्रतीकों के द्वारा लिखकर अभिव्यक्त करता है तो उसे लिखित अभिव्यक्ति कहते हैं। या यूँ कहें कि बालक जब मौखिक अभिव्यक्ति को सार्थक ध्वनि प्रतीकों को द्वारा लिखकर व्यक्त करता है तो उसे लिखित अभिव्यक्ति कहते हैं। लिखित अभिव्यक्ति के लिए बालक जिन सार्थक ध्वनि प्रतीकों एवं विशिष्ट चिन्हों का प्रयोग करता है। उसे 'लिपि' कहते हैं। (भार्गव, २००९) प्रत्येक भाषा की अपनी एक लिपि है। जैसे अंग्रेजी रोमन लिपि में, पंजाबी गुरूमुखी लिपि में और हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखि जाती है। बालकों को लिखित कार्यों में या लिखकर अपने विचारों व्यक्त करने में निपुण एवं दक्ष बना ही लेखन कौशल कहलाता है। बालकों को लेखन में निपुण बनाने के लिए देवनागरी लिपि का ज्ञान होना एवं पहचान होना आवश्यक है।

लिखित अभिव्यक्ति कई अर्थों में मौखिक अभिव्यक्ति से अधिक महत्वशाली होती है। क्योंकि लिखित भाषा ही मौखिक भाषा के रूप को परिमार्जित कर उसे निश्चित रूप प्रदान करती है। उसे स्थायित्व प्रदान करती है। लिखित भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी की उपलब्धियों एवं विचारों को दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है। यह हमारे विकास का सबसे बड़ा आधार है। साथ ही लिखित भाषा से बालक अपने विचारों को किसी दूसरे को जहाँ वह नहीं पहुँच सकता, संप्रेषित कर सकता है। बालक को लेखन कौशल में निपुण होने के लिए भाषायी कौशल के विकास के वैज्ञानिक क्रम (सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना) के कौशलों में दक्ष होना आवश्यक होता है। बालकों को लिखित अभिव्यक्ति का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं (भार्गव, २००९) के आधार पर स्पष्ट है -

i. लिखित अभिव्यक्ति बालक के हाथ और मस्तिष्क में संतुलन बनाए रखती है।

ii. लिखित अभिव्यक्ति ही साहित्य के भण्डार में वृद्धि करता है।
iii. व्यक्ति के विचारों का संरक्षण, सुरक्षा एवं स्थायित्व लिखित अभिव्यक्ति द्वारा ही होता है।
iv. व्यावसायिक और औद्योगिक प्रगति का आधार भी लिखित भाषा है।
v. लिखित भाषा या अभिव्यक्ति द्वारा सुदूर व्यक्तियों को अपने संदेश या विचारों को आसानी से पहुँचाया जा सकता है।
vi. दैनिक जीवन का विवरण व हिसाब किताब तथा व्यावसायिक कार्य लिखित भाषा पर ही आधारित है।

4.6.1 लेखन कौशल का उद्देश्य

लिखित अभिव्यक्ति कौशल को भाषायी विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए विद्वानों ने इसके विकास के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं (गंगा राम, २०१२)-

i. बालकों को सुन्दर, स्पष्ट और सुडौल अक्षर लिखने में निपुण बनाना।
ii. छात्रों को लिपि, शब्द, मुहावरों का ज्ञान कराना।
iii. बालकों में ध्वन्यात्मक शब्दों को लिपिबद्ध करना तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास करना।
iv. बालकों में विषयानुसार भाषा शैली का प्रयोग करना सिखाना।
v. बालकों में अपने अनुभवों व विचारों को लिखकर व्यक्त करने की योग्यता का विकास करना।
vi. बालकों में वाक्य रचना के नियमों से परिचित करना तथा वर्णों का ठीक-ठीक बनावट लिखना सीखाना।

4.6.2 लेखन कौशल का विकास

भाषा सीखने का एक स्वाभाविक क्रम होता है - सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। भाषा की शिक्षा देने के लिए प्राथमिक स्तर से ही बच्चों में इन चारों कौशलों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। प्रारम्भ में मौखिक भाषा की शिक्षा तत्पश्चात बोलने व पढ़ने की शिक्षा देनी चाहिए और जैसी ही बालकों में अक्षरों की पहचान व शुद्ध उच्चारण करने की क्षमता विकसित होने लगे लेखन कार्य सीखाना शुरू करना चाहिए। लेखन कौशल को विकसित करने के लिए निम्नलिखित विधियों का उपयोग करना चाहिए-

i. बच्चों को लेखन तभी सीखाना प्रारम्भ करे जब उसकी ऊँगलियाँ एवं हाथों की मांसपेशियाँ कलम पकड़ने के योग्य हो जाय।
ii. प्रारम्भ में बच्चों से पेंसिल या चाक से कागज या श्यामपट्ट पर तरह-तरह की रेखाएँ खींचने का अभ्यास कराना चाहिए।
iii. बालकों से तरह-तरह के बीजों की सहायता से खेल-खेल में विभिन्न वर्णों की आकृतियाँ बनाने का अभ्यास करना चाहिए।

iv. बच्चों को जमीन पर, बालू या रेत पर उँगली घूमाकर वर्णों की आकृतियों का अनुसरण कराना चाहिए।

v. बच्चों को विभिन्न वर्णों की आकृतियों से बने चित्र या प्रति दिखाकर उसे बनाने का अभ्यास कराना चाहिए।

vi. अक्षरों को छोटे-छोटे टुकड़े में विभक्त कर एक-एक टुकड़े का अभ्यास कराए और पुनः उनको मिलाकर पूरा अक्षर बनवाना चाहिए। जैसे ग, । ‾ ग आदि

vii. अनुलिपि, प्रतिलिपि व श्रुतिलिपि के माध्यम से वर्णों को शुद्ध-शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना चाहिए।

viii. कलम को अंगूठे और मध्य अंगुली के बीच रखा जाना चाहिए तथा तर्जनी अंगूली कलम के ऊपर हो। साथ ही कमल को नीब से १.५ से २ सेमी ऊपर से पकड़ना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

6. मौखिक अभिव्यक्ति (बोलना) कौशल के विकास के दो उपाय बतायें।

4.7 मौखिक अभिव्यक्ति (बोलना) कौशल का आशय

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में बेहतर समायोजन एवं अपने विचारों व भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। वह अपनी यह अभिव्यक्ति दो रूपों में करता है। बोलकर और लिखकर। जब बालक अपने विचारों, भावों की अभिव्यक्ति सार्थक ध्वनियों के माध्यम से उच्चरित भाषा के रूप में करता है तो उसे बोलना या मौखिक अभिव्यक्ति कहते हैं। प्रो रमन बिहारी लाल के शब्दो में "अपने भाव एवम विचारो को मौखिक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करना बोलना है"। किन्तु जब बालक अपने विचारों का आदान-प्रदान सूदूर व्यक्ति को सार्थक संकेतों के माध्यम से लिखकर करता है तो उसे लिखित अभिव्यक्ति कहते हैं। मौखिक अभिव्यक्ति में निपुण एवं दक्ष होने पर बालक एक कुशल वक्ता बनता है। जो अपने अनुभूतियों एवं विचारों को रोचक एवं प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने में सफल हो पाता है।

भाषा शिक्षण में मौखिक अभिव्यक्ति कौशल या बोलना कौशल का विशेष महत्व होता है। बालक प्रारम्भ में भाषा की शिक्षा मौखिक भाषा से ही प्रारम्भ करता है। मौखिक भाषा ही लिपि का वरदान पाकर लिखित भाषा का रूप धारण करती है। प्रो0 रमन बिहारी लाल मौखिक अभिव्यक्ति को परिभाषित करते हुए लिखते है कि & "मानव अपने विचारो व अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस समाज ध्वन्यात्मक संकेत साधन का प्रयोग करता है। उसे उसकी भाषा कहते हैं।"

4.7.1 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का महत्व

मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का निम्नलिखित महत्व है-

i. मौखिक भाषा विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का सरल व सशक्त साधन है।
ii. मौखिक अभिव्यक्ति लिखित अभिव्यक्ति की आधारशिला है।
iii. परिवार, समाज तथा मनुष्य के दैनिक क्रियाकलाप में विचारों को व्यक्त करने में मौखिक भाषा ही प्रयुक्त होती है।
iv. मौखिक अभिव्यक्ति की कुशलता से विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से संक्षिप्त और सशक्त रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं।
v. मौखिक भाषा के द्वारा ही विचारों का आदान-प्रदान कर नवीन तथ्यों की जानकारी होती है और ज्ञान में वृद्धि होती है।
vi. मौखिक भाषा के द्वारा ही अशिक्षित व्यक्ति बोलकर ही अपने विचारो कि अभिव्यक्ति करता है।
vii. मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा ही बालक के विचारों, भावों तथा मनोवृत्तियों का पता चलता है तथा इनका विकास भी किया जा सकता है।

4.7.2 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल शिक्षण के उद्देश्य

विद्यालयों में भाषा शिक्षण का प्रारम्भ मौखिक भाषा की शिक्षा से ही प्रारम्भ होता है। मौखिक अभिव्यक्ति परिपक्वता एवम कुशलता के लिए विद्यालयों में भाषा शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं- (भार्गव, २००९)

i. बालक को इस योग्य बनाया जाय कि वे अपने अनुभव, भाव व विचारों को सरल व सहज ढंग से व्यक्त कर सकें।
ii. बालकों को इस योग्य बनाना कि वे अपने मन में उत्पन्न होने वाली संकाओं का समाधान निःसंकोच रूप से प्रश्न पूछ कर करें।
iii. बालकों को उचित गति, यति, हावभाव व स्वर के साथ शुद्ध उच्चारण के साथ बोलना सीखाना।
iv. बालकों को अवसर के अनुकूल भाषा शैली का प्रयोग करने और आत्मविश्वास के साथ उचित हाव-भाव का प्रदर्शन करते हुए बोलने में निपुण बनाना।
v. बालकों को धारा प्रवाह प्रभावपूर्ण एवं प्रभावोत्तपादक ढंग से बोलना सीखाना।
vi. छात्रों का ध्वनि, ध्वनि समूहों, शब्द, सूक्ति लोकोक्तियों तथा मुहावरों का ज्ञान कराना।

4.7.3 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का विकास

मौखिक अभिव्यक्ति का विकास बालक के भाषायी विकास एवं व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से आवश्यक होता है। इसमें उसे अपने भाव, विचार व अनुभूतियों के प्रकाशन का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। इसलिए इसका विकास प्रारम्भिक स्तर से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षक बालकों में

मौखिक अभिव्यक्ति में कुशलता एवं निपुणता लाने के लिए अनेक शिक्षण विधियों (रीता, २०१६) का प्रयोग करता है।

i. शिक्षक को कक्षा में पढ़ाते समय बालकों को वार्तालाप की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करें। बच्चों को वार्तालाप के लिए प्रोत्साहित करें तथा उनसे पढाए गए विषयवस्तु से प्रश्न पूछकर मौखिक उत्तर प्राप्त करें।
ii. सप्ताह में कम से कम एक घण्टा वार्तालाप का रखा जाय तथा वार्तालाप में बालकों की अशुद्धियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से शुद्ध किया जाय।
iii. बालक चित्रों के प्रति ज्यादा रूचि रखते हैं। अतः बालकों के सामने किसी घटनात्मक, प्राकृतिक या सामाजिक चित्र को टांगकर उनसे प्रश्न पूछकर वर्णन कराया जाय।
iv. छोटे बच्चों को कहानी सुनना अत्यधिक पसंद है। अतः अध्यापक को बालकों को सुन्दर व रोचक कहानी सुनाकर उसे प्रश्न पूछकर उत्तर प्राप्त करना चाहिए तथा उस कहानी को पुनः कहने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
v. वाद-विवाद प्रतियोगिता मौखिक भाषा के विकास का अति उत्तम साधन हैं। अतः शिक्षक बालकों के अनुभव के अनुकूल किसी रोचक विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करें। तथा बालकों को उस विषय के पक्ष एवं विपक्ष पर विचार रखने के लिए प्रोत्साहित करें।
vi. शिक्षक कभी-कभी कक्षा में बालकों के बीच अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता भी करायें। इसे बालक अपने कण्ठस्थ कविताओं को एक दूसरों को सुनायेंगे तथा शुद्ध उच्चारण करना सीख जायेंगे।

अभ्यास प्रश्न

7. लिखित अभिव्यक्ति (लेखन) कौशल के विकास के लिए उपयुक्त दो विधियाँ बताएँ।

4.8 उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का आशय

जन्म के कुछ माह के पश्चात ही बालकों में भाषा विकास प्रारम्भ हो जाता है। बालक सर्वप्रथम अपने माता-पिता व परिवार के लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा को सुनता है और उसका अर्थग्रहण करने का प्रयास करता है। इसे उसके शब्द भण्डार में वृद्धि होती है तथा उसके ज्ञान में विस्तर होता है। तत्पश्चात वह इनका अनुकरण करके बोलकर अपने भावों को व्यक्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार भाषा विकास का यह रूप अनौपचारिक होता है। जो जरूरी नहीं की शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा हो। अतः बालकों में शुद्ध और मानक भाषा विकास का प्रारम्भ औपचारिक रूप से विद्यालय से प्रारम्भ होता है। यहाँ पर बालक द्वारा पूर्व में अर्जित ज्ञान एवं भाषा में परिष्करण एवं परिमार्जन लाया जाता है तथा भाषा

के शुद्ध रूप को सीखाया जाता है। इसीलिए प्राथमिक स्तर से ही भाषायी कौशल के विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का अर्थ भाषा के उस रूप से है जिसके अन्तर्गत बालक भाषा के व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में भाषा के शुद्ध और मानक रूप का प्रयोग करता है। अर्थात् इस उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का आशय उच्च कक्षाओं में बालकों द्वारा किये जाने वाले विचार-विनिमय एवं भाषिक अभिव्यक्ति के विभिन्न कौशलों में दक्षता एवं कुशलता प्राप्त करने से है। इन कौशलों को प्राप्त करने के लिए बालक दो प्रकार की क्रियाएँ करता है। सुनकर अर्थग्रहण करना और विचारों की अभिव्यक्ति। इन क्रियाओं के लिए भाषायी कौशल के चारों स्तर सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखने में बालक निपुड़ हो जाता है और बालकों में निम्नलिखित भाषायी व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। जो इस चित्र द्वारा स्पष्ट है – (रस्तोगी, २००१)

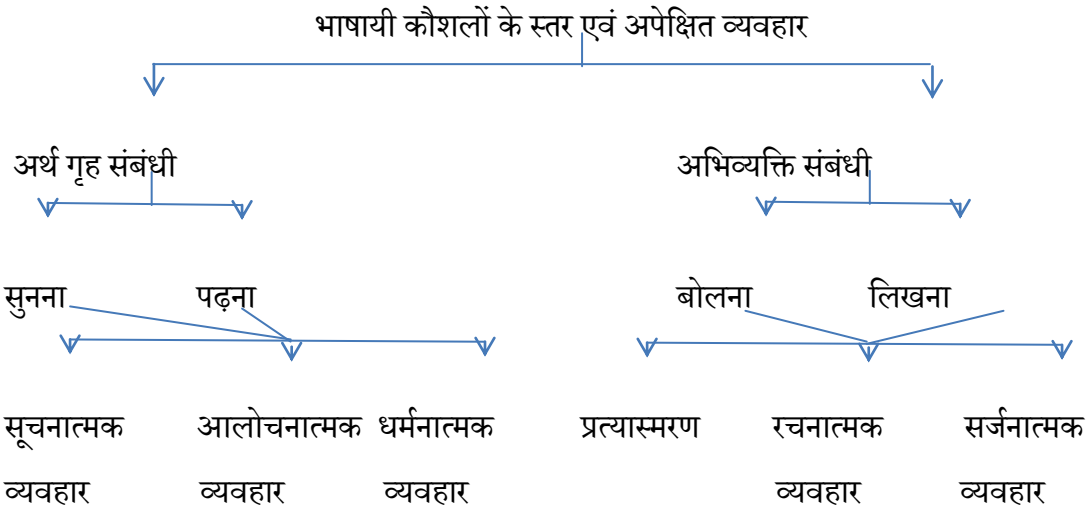

उच्च स्तरीय भाषिक कौशल के विकास के लिए आवचश्यक है कि उपरोक्त वर्णित प्रमुख अपेक्षित व्यवहार/स्तर का बालक में विकास हो तथा उसका अपने भाषायी व्यवहार में उपयोग करें।

अभ्यास प्रश्न

8. उच्चस्तरीय भाषिक कौशल किसे कहते हैं।

4.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके होंगे कि -

- बालक अपने विचारों, भावों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का प्रयोग करता है।
- बालक भाषा के दो रूपों मौखिक और लिखित के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति करता है।
- भाषा विकास के लिए भाषायी कौशलों में निपुण एवं कुशल प्राप्त करना आवश्यक है।
- विचारों और भावों को सुनना और सुनकर अर्थग्रहण करना ही श्रवण कहलाता है।
- शुद्ध उच्चारण द्वारा बोलकर विचारों की अभिव्यक्ति मौखिक अभिव्यक्ति कौशल कहलाता है।
- लेखन कौशल में कुशल एवं दक्ष होने के लिए आवश्यक है शब्दों, वर्णों की स्पष्ट पहचान हो एवं
- भाषायी कौशल के विकास का वैज्ञानिक क्रम है - सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना।

4.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. भाषा के माध्यम से विचारों के आदान प्रदान के लिए भाषायी संप्रेषण के चार प्रमुख आयामों सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखने को ही भाषायी कौशल कहलाता है।
2. भाषायी कौशल के अन्तर्गत चार प्रमुख कौशल (सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना) आते हैं।
3. लिखित सामग्री को पढ़कर अर्थ ग्रहण करना वहन कहलाता है।
4. क. वाचन में बालक का ध्यान केन्द्रित रहता है।
   ख. स्वाध्याय की आदत विकसित होती है।
5. (घ) सुनना और सुनकर अर्थ ग्रहण करना
6. क. बच्चों को पाठ्य विषयों में वार्तालाप के स्वतन्त्र अवसर दें।
   ख. सुन्दर व रोचक कहानियाँ सुनाकर उससे संबंध्सित प्रश्न पूछें।
7. क. जमीन या बालू पर ऊँगली घुमाकर वर्णों की आकृतियों का अनुसरण कराकर
   ख. कसरों को छोटे-छोटे टुकड़ें में तोड़कर उसका अभ्यास कराना चाहिए।
8. उच्च कक्षाओं में बालकों द्वारा किये जाने वाले विचार-विनिमय एवं भाषिक अभिव्यक्ति के विभिन्न कौशलों में दक्षता एवं कुशलता प्राप्त करता है।

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लाल, रमन बिहारी, (२००७) हिन्दी शिक्षण, रस्तोगी पब्लिकेशन्स शिवाजी रोड, मेरठ।

2. कौशिक, जयनारायण (२००६) हिन्दी शिक्षण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंच कूला।
3. शर्मा, गंगाराम एवं भारद्वाज, सुधीर कुमार (२०१२), हिन्दी भाषा शिक्षण, राखी प्रकाशन, आगरा।
4. चैहान, रीता (२०१६), हिन्दी शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ (१९७९), हिन्दी शिक्षण, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली।
6. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा, (२००५), (२००६), एन.सी.ई.आर.टी. प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
7. भार्गव, लक्ष्मी (२००९), हिन्दी शिक्षण, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी।
8. रस्तोगी, कृष्णगोपाल, (२००१) मातृभाषा शिक्षण: शब्दों का आर्थी विश्लेषण, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली-११.१३

4.12 निबन्धात्क प्रश्न

1. भाषायी कौशल किसे कहते हैं, भाषायी कौशल के महत्व की चर्चा करें।
2. पठन कौशल का आशय क्या है। पठन कौशल के विकास के प्रमुख विधियों का वर्णन करें।
3. लेखन कौशल की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करें।
4. मौखिक अभिव्यक्ति (बोलना) कौशल के महत्व पर प्रकाश डालें।

इकाई 5- भाषा शिक्षक: हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 भाषा शिक्षक: हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में भाषा शिक्षक से आशय
5.3.1 भाषा शिक्षक के गुण
5.4 भाषा शिक्षक की योग्यता
5.5 भाषा शिक्षक के लिए आवश्यक कौशल
5.5.1 भाषायी कौशल
5.5.2 श्रवण कौशल
5.5.3 वाचन कौशल
5.5.4 पठन कौशल
5.5.5 लेखन कौशल

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा त्रिधुर्वीय प्रक्रिया है। शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम तीनों महत्वपूर्ण स्तम्भ है, अब हम चौथे स्तम्भ वातावरण को भी सम्मिलित कर सकते हैं। शिक्षार्थी शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके आचरण, आदर्श तथा व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों का अनुकरण करता है। शिक्षा का कार्य इसी आदान-प्रदान से चलता रहता है वैदिक युग में शिक्षक का विशेष स्थान था परन्तु आज उसका सम्मान कम हो गया है, इसका जिम्मेदार स्वयं अध्यापक ही है क्योंकि आज वह अपना उत्तरदायित्व भूल गया है।

आज के युग में शिक्षा बालक केन्द्रित हो गयी है, किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि शिक्षक निष्क्रिय हो गया है। शिक्षक को अत्यधिक सक्रियता का परिचय देना होगा तथा अपने सम्मान को सुरक्षित करना होगा। शिक्षक को अपने व्यक्तित्व को इतना प्रभावशाली बनाना होगा कि बालक उससे प्रभावित होकर उससे निर्देशित हो सके और अनुकरण कर सके।

अध्यापक को कक्षाओं में साहित्यिक, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को भी अपनाना चाहिए। वाद-विवाद, संवाद, कविता पाठ, संगीत, नृत्य, अभिनय, झाँकियाँ, कौतुहल, कौतुक, क्रीड़ाएँ आदि कार्यक्रम का भी आयोजन करते रहना चाहिए। आज के प्रत्येक गतिशील शिक्षा के प्रेमी को विद्यालय में गतिविधियों का न होना बहुत अखरेगा। ये प्रतियोगिताएँ यदि विद्यालयों में नहीं होती हैं तो अप्रगतिशील, प्रतिभागी और

कुण्ठित मस्तिष्क का प्रतीक होगी। शिक्षण कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। शिक्षक के कुछ गुण जन्मजात होते हैं परन्तु अनेक गुणों को प्राप्त करने के लिए उसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में छात्राध्यापकों को प्रवेश मिलने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि उनमें शिक्षण के लिए क्षमता है कि नहीं। शिक्षण व्यवसाय के लिए उन्हीं व्यक्तियों को चयनित किया जाना चाहिए जिनमें कुछ क्षमता अवश्य हो और ऐसा हो रहा है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. भाषा शिक्षक के गुणों से परिचित हो सकेंगे।
2. भाषा शिक्षक की योग्यता की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. भाषा शिक्षक के लिए आवश्यक कौशल को बता सकेंगे।
4. भाषा शिक्षक के वर्तमान दशा को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. भाषा शिक्षक की वर्तमान दशा को सुधारने के उपायों की चर्चा कर सकेंगे।

5.3 भाषा शिक्षक: हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में भाषा शिक्षक से आशय

वर्तमान शताब्दी में इस विषय पर पर्याप्त कार्य हुआ है कि शिक्षकों की सफलता किस बात पर निर्भर करती है। परिणामों में यह देखा गया है कि विद्यार्थी प्रायः योग्य और स्पष्टवादी तथा उचित प्रकार से अपनी बात को अभिव्यक्त करने में कुशल शिक्षकों को पसन्द करते हैं। जो शिक्षक अपने इन विशिष्ट गुणों के साथ-साथ विद्यार्थियों से प्रेम भी करते हैं और उनके कार्यों में रूचि लेते हैं तथा सभी विद्यार्थियों के प्रति निष्पक्ष भाव रखते हैं, बच्चे उनका अपेक्षाकृत अधिक सम्मान करते हैं। परन्तु शिक्षक के इन गुणों के अतिरिक्त उनका जीवन दर्शन, उनका चरित्र और समाज के प्रति उत्तरदायित्वों का प्रभाव अधिक पड़ता है।

5.3.1 भाषा शिक्षक के गुण

i. **अपने विषय का पूर्ण ज्ञान -** शिक्षक को अपने विषय के सभी क्षेत्रों तथा उससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक विषय के विभिन्न क्षेत्र आपस में सहसम्बन्धित होते हैं। यदि शिक्षक किसी विषय के एक ही क्षेत्र को पढ़ाता है और वह अपना कार्य तब तक दक्षता के साथ नहीं कर सकता जब तक की उसे उस विषय के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान न हो। उदाहरण के लिए गणित विषय को ही लीजिए। यदि शिक्षक को अंकगणित का सही ज्ञान नहीं है तो वह रेखागणित को कदापि उचित तरीके से नहीं पढ़ा सकता। शिक्षक को केवल अपने ही विषय का ज्ञान नहीं अपितु अन्य विषयों का भी ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

वास्तव में देखा जाय तो बहुतेरे शिक्षकों को अपने विषय के सभी प्रत्ययों का सही ज्ञान नहीं होता और परिणाम स्वरूप विद्यार्थियों में भी ज्ञान का अभाव होता है। अध्यापक सैद्धान्तिक रूप से बातों को जानते हैं परन्तु व्यावहारिक रूप से उसका प्रयोग नहीं कर पाते।

ii. **व्यवसाय में दक्षता -** शिक्षक को अपने व्यवसाय में दक्ष भी होना चाहिए। शिक्षक को शिक्षण विधि, पाठ सूत्र निर्माण में तथा प्रश्न पूछने में निपुण होना चाहिए। अध्यापक को विषय के ज्ञान के साथ-साथ उस ज्ञान को विद्यार्थियों तक पहुँचाने की कला भी आनी चाहिए। एक शिक्षक अपने विषय में दक्ष है इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने व्यवसाय में भी दक्ष है, उसे व्यवसाय में दक्ष होने के लिए अपने विषय का विद्वान भी होना आवश्यक है। पढ़ाना एक कला है और इस कला में दक्ष होने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।

शिक्षक को कक्षा में सफलतापूर्वक पढ़ाने के लिए पाठ्य-वस्तु को पूर्ण रूप से तैयार कर लेना चाहिए साथ ही कुछ प्रश्न जो पाठ से सम्बन्धित हो उन्हें पहले से ही सोच लेना चाहिए। साथ ही अध्यापक को कक्षा में सक्रिय होना चाहिए और शिक्षण कौशलों का ज्ञान एवं अभ्यास विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। शिक्षण विधि और शैली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन आवश्यक है। शिक्षक में आत्मविश्वास और समस्या-समाधान की क्षमता भी होनी चाहिए।

iii. **वैयक्तिक भिन्नता का ज्ञान -** आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालकों में व्यक्तिगत भिन्नता होती है इसलिए अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह बालकों के मानसिक तथा शारीरिक स्तर के आधार पर शिक्षा प्रदान करे। शिक्षक को चाहिए कि वह विभिन्न बालकों का स्वभाव, रूचि, बुद्धि का स्तर, अभिरूचि एवं आवश्यकता को भली-भाँति समझ कर उपयुक्त विषय की शिक्षा प्रदान करे। यदि वैयक्तिक भिन्नता पर ध्यान नहीं दिया गया तो शिक्षण कार्य का महत्व समाप्त हो जायेगा।

अध्यापक को पिछड़े और कुसमायोजित बालकों की परिसीमाओं को समझना और उनसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना आवश्यक हो जाता है अन्यथा वे विकास के मार्ग पर कभी नहीं आ सकते। शिक्षक को चाहिए कि वह मूल्यांकन की नवीन प्रविधियों का ज्ञान प्राप्त करे और इन्हीं प्रविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों की वास्तविक प्रगति का रूपरेखा तैयार करे। शिक्षक को नवीन प्रकार की सफल परीक्षाओं, बुद्धि परीक्षाओं, अभिरूचि परीक्षाओं तथा व्यक्तित्व परीक्षाओं आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। इन्हीं परीक्षाओं के परिणामों के आधार पर सामूहिक आलेख पत्रों को सही प्रकार से भर सकता है। जिससे विद्यार्थियों के मूल्यांकन में सहायता मिलती है।

iv. **प्रभावशाली व्यक्तित्व -** एक शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। बालक अपने शिक्षक का अनुकरण करते हैं तथा उसके कार्यों, रूचियों तथा आदर्शों को अपनाते हैं। बालक में अध्यापक के व्यक्तित्व की छाप पड़े बिना नहीं रहती। यदि अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होगा तो बालक के व्यक्तित्व पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है तो बालक के व्यक्तित्व पर उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा। एक चरित्रवान, परिश्रमी और लगनशील अध्यापक का अनुकरण करके बालक वैसा ही बनता है।

v. **बालकों के प्रति सहानुभूति -** अध्यापक को विद्यार्थियों से प्रेम और उनके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। अध्यापक को निष्पक्ष होना चाहिए। तभी विद्यार्थी उस अध्यापक के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट कर सकेंगे और आदर कर सकेंगे। विद्यार्थी उस शिक्षक के व्यक्तित्व के गुणों को अपनाने का प्रयास करेंगे।

vi. **हिन्दी भाषा पर अधिकार -** बालकों को सभी विषयों का ज्ञान प्रदान करने हेतु अध्यापक भाषा का आश्रय लेते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार हो। अध्यापक को सरल तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए तथा जटिल भाषा से बचने का प्रयास करना चाहिए। सरल भाषा से विषय-वस्तु की रोचकता बढ़ जाती है और विद्यार्थी उसे सरलता से समझ लेता है।

vii. **मानसिक स्वास्थ्य -**अध्यापक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहना चाहिए। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो परिदृश्य परिलक्षित हो रहा है उसके पीछे मानसिक स्वास्थ्य एक कारक के रूप में विद्यमान है। अस्वस्थ मानसिकता से भय, असुरक्षा की भावना, कुसमायोजन तथा विरोध का भाव बढ़ रहा है। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो।

अध्यापक में आत्म-हीनता की भावना नहीं होनी चाहिए। वर्तमान में अध्यापकों में आत्महीनता की भावना बढ़ती जा रही है। इसका प्रमुख कारण है कि शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों को भूलता जा रहा है जिससे समाज में श्रद्धा और आदर का भाव कम होता जा रहा है।

viii. **वेश-भूषा -** अध्यापक का वेश-भूषा उचित प्रकार का होना चाहिए। उसे साधारण वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। वस्त्रों को पहनने का ढंग भी उचित प्रकार का होना चाहिए। ये बात बालकों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालती है। शिक्षक का अनुकरण कर बालक भी उचित प्रकार का कपड़ा पहनना सीखता है।

ix. **उत्तम संगठनकर्ता -** अध्यापक का कार्य केवल कक्षा शिक्षण तक ही सीमित नहीं है। उसे बच्चों की रूचियों, योग्यताओं और आवश्यकताओं का पता लगाकर उनका शैक्षिक मार्ग-दर्शन करना होता है। कक्षा शिक्षण की पूर्ति हेतु पुस्तकालय एवं वाचनालय का संगठन् करना होता है। उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए शारीरिक क्रियाओं और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं का संगठन करना होता है अध्यापक को इन कार्यों में निपुण होना चाहिए।

अध्यापक को विद्यालय संगठन के सिद्धान्तों और विधियों का ज्ञान होना चाहिए और उनके प्रयोग में निपुण होना चाहिए। भाषा शिक्षण में भाषण, वाद-विवाद, बाल-गोष्ठी, अन्त्याक्षरी, कवि दरबार, कवि गोष्ठी कवि सम्मेलन व नाटक मंचन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है भाषा शिक्षक की इसमें रूचि होनी चाहिए इसके आयोजन में दक्ष होना चाहिए।

5.4 भाषा शिक्षक की योग्यता

वर्तमान समय में गुरू का स्थान शिक्षक ने ले रखा है। आज शिक्षा एक व्यवसाय का रूप ले चुकी है स्ववित्त पोषित संस्थाएँ धन-उपार्जन का साधन बन चुकी है। ऐसी संस्थाओं में शिक्षकों से शिक्षक जैसा

व्यवहार नहीं किया जा रहा है एक उद्योगपति की दृष्टि में शिक्षक एक कर्मचारी के समान है। यहाँ शिक्षक की कुछ योग्यताओं का वर्णन किया जा रहा है।

i. **प्रेरणा का स्रोत-** अध्यापक हमेशा विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत होता है वह हमेशा विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करता रहता है। बालकों को कक्षा में आमोद-प्रमोद करने की क्षमता भी होनी चाहिए जिससे पढ़ने के साथ-साथ मनोरंजन भी होता रहे और यह योग्यता अध्यापक में भी होनी चाहिए जिससे प्रेरणा प्रदान कर सके। मनोरंजक कक्षा में अधिगम की भी सम्भावना अधिक रहती है। पाठ को रोचक और आकर्षक बनाना अध्यापक की योग्यता पर निर्भर करता है।

ii. **विषय का ज्ञान -** हिन्दी विषय के शिक्षक का ज्ञान अधिक विस्तृत और गहन होना चाहिए। ज्ञान की व्यापकता और गहनता के अभाव में हिन्दी नहीं पढ़ाया जा सकता। सामान्यतया हिन्दी को सूचना स्तर तक पढ़ाया जाता है। अध्यापक किताबों से जिन सूचनाओं को प्राप्त करता है वही शिक्षार्थी तक पहुँचाता है। ज्ञान का स्तर बहुत ऊँचा है उस स्तर पर पहुँचने के लिए गहन अध्ययन की आवश्यकता होती है। हिन्दी विषय के अध्यापक को विभिन्न स्रोतों से ज्ञान में वृद्धि करनी चाहिए विषय को सीमित न समझें। ज्ञान की वृद्धि के लिए शिक्षक को किसी काल विशेष का विस्तृत अध्ययन करने के लिए सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। स्रोत के रूप में उस काल के लेख ताम्र पत्र, शिला-लेख, मूर्तियों, सिक्कों, कहावतों, धार्मिक ग्रन्थों, शिल्प कला तथा लोक गाथाएँ होती हैं। ये स्रोत उस काल विशेष के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक पक्षों का ज्ञान सुगमता से प्रदान करते हैं।

एक कुशल शिक्षक के लिए विषय के ज्ञान के साथ ही विद्यार्थियों में बोधगम्यता प्रदान करने की क्षमता का होना आवश्यक है। सामान्यतया ये दोनों गुण एक व्यक्ति में बहुत कम देखने को मिलते हैं। जिस व्यक्ति में विषय का ज्ञान होता है उसमें शिक्षण को प्रवणता नहीं होती है। इसलिए प्रशिक्षण संस्थाओं को यह चाहिए कि छात्राध्यापकों में उचित दृष्टिकोण विकसित करें।

हिन्दी-शिक्षक को हिन्दी भाषा एवं साहित्य का ज्ञान होना चाहिए। राष्ट्रीय हिन्दी को समझने के लिए हिन्दी साहित्य का ज्ञान भली प्रकार से होना चाहिए। भारतीय शिक्षा प्रणाली में हिन्दी भाषा और साहित्य को कम महत्व दिया जाता है। विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास बिना हिन्दी साहित्य का अध्ययन नहीं हो सकता। सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को भी हिन्दी साहित्य के ज्ञान से ही समझ सकते हैं।

iii. **मनोविज्ञान का पारखी -** हिन्दी शिक्षक को मनोविज्ञान की समझ आवश्यक है। मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा ही अवस्था तथा स्तर के अनुरूप उदाहरण द्वारा विषय की प्रासंगिकता को स्पष्ट किया जा सकता है। विद्यार्थियों के मनोभावों का उदारीकरण विशेष स्थलों के शिक्षण के समय किया जा सकता है। मनोविज्ञान का ज्ञान अवस्थानुसार होने वाले व्यवहार परिवर्तन को समायोजित करने में भी किया जा सकता है।

iv. **मौलिक चिन्तन -** अध्यापक को सदैव चिन्तनशील होना चाहिए। नये ज्ञान के विकास हेतु मौलिक चिन्तन आवश्यक है अध्यापक को केवल विद्वानों द्वारा कही गयी बातों को ही पढ़कर सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए उसे स्वतंत्र चिन्तन करना चाहिए। तथा विद्यार्थियों को भी मौलिक चिन्तन हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण हेतु हिन्दी शिक्षक में यह गुण होना चाहिए जिससे सामाजिक रूढ़ियों और अर्थहीन परम्पराओं से मुक्ति पायी जा सके। नये समाज को नये रूप से सृजित किया जा सके और नये विचारों से प्रेरित होकर नव रूपांतरिक किया जा सके।

v. **कक्षा शिक्षण की समस्याओं के समाधान की क्षमता -** एक योग्य शिक्षक को छात्रों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील भी होना पड़ता है। उनकी समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक तरीका भी अपनाना पड़ता है। एक कुशल शिक्षक कक्षा में अध्यापन के साथ ही समस्याओं के समाधान के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन भी करता रहता है। विद्यार्थियों की समस्याओं को समझने और उसे दूर करने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान किया जाता है। अध्यापक इस प्रकार के अनुसंधानों के माध्यम से कक्षा-कक्ष की समस्याओं का समाधान तथा स्वयं की गतिविधियों में सुधार एवं विकास भी करता है। हिन्दी शिक्षक को शैक्षिक निर्देशन एवं कार्य विश्लेषण का भी ज्ञान होना चाहिए।

vi. **सद्व्यवहार -** हिन्दी शिक्षक का दृष्टिकोण उदारता, सहिष्णुता एवं सहयोग से अनुप्राणित होना चाहिए। जिससे विद्यार्थी भी उच्चकोटि के जीवन मूल्यों को आत्मसात कर सके। शिक्षक का संकुचित एवं अनुदार तथा साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का प्रभाव विद्यार्थियों पर भी अवश्य पड़ता है। अतः हिन्दी साहित्य के शिक्षक का यह नैतिक कर्तव्य है कि अपने चरित्र, आदर्श और जीवन मूल्यों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करें जिससे विद्यार्थी को प्रेरणा प्राप्त हो सके।

vii. **सम्बन्धित विषयों का ज्ञान -** मातृ भाषा शिक्षक के पास अन्य विषयों की इतनी जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि यदि पाठ्य-पुस्तक में अन्य विषय से सम्बन्धित कोई तथ्य आ जाय तो उसे सफलता पूर्वक समझा सके।

5.5 भाषा शिक्षक के लिए आवश्यक कौशल

भाषा एक कला है, कौशल है। भाषा शिक्षण का अर्थ है बच्चों को भाषायी कौशलों-सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने में दक्ष करना। मातृभाषा सीखने में बच्चा जन्म के कुछ दिन पश्चात् ही अपने माता-पिता के सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों का अनुकरण कर स्वाभाविक रूप से सीखने लगता है। विद्यालयों में तो उन्हें उनके सर्वमान्य रूप से परिचित कराया जाता है, और उसका पढ़ना-लिखना सीखाया जाता है परन्तु मात्रेतर भाषा को बच्चे विशेष प्रयत्न से सीखते हैं।

भाषा प्रयोग में चार क्रियाएँ सम्मिलित हैं - भाषा का सुनना, बोलना, भाषा का पढ़ना और भाषा का लिखना। क्रियाशील भाषा बोलने में कण्ठ, मुख विवर तथा नासिका का प्रयोग करना होता है तथा भाषा सुनने में कानों का प्रयोग करना होता है। भाषा लेखन में लेखनी, स्याही, कागज आदि का प्रयोग करना होता है। साथ ही भाषा पढ़ने में ओंठ, कण्ठ, मुख विवर और नासिका का प्रयोग किया जाता है। इन चारों क्रियाओं को सम्पन्न करने में मन और मस्तिष्क का प्रयोग करना होता है, बिना मन और मस्तिष्क के भाषा का प्रयोग तो किया ही नहीं जा सकता। भाषा शिक्षण की दृष्टि से ये सभी भाषा के मूल तत्व एवं आधार है। तथा भाषा शिक्षक के लिए यह आवश्यक कौशल थी।

कौशल का अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्येक व्यावहारिक, प्रयोगात्मक तथा तकनीकी के कार्यों में कौशल की आवश्यकता होती है। कार्यक्षमता कार्य कौशल पर निर्भर होती है कौशल का कोई रूप नहीं होता परन्तु उसके प्रभावशीलता की प्रतीति की जाती है। कौशल के तत्व तथा क्रियाएँ होती है।

क्रियाओं के विशिष्ट समूह को कौशल कहते हैं जिससे कार्य की सक्षमता में वृद्धि होती है। कार्य सम्पादन में विशिष्ट क्रियाएँ होती हैं और उनकी प्रवीणता में कौशल की भूमिका अहम होती है।

i. **भाषायी कौशल -** भाषा एक अभिव्यक्ति का साधन है। अभिव्यक्ति का माध्यम कौशल होते हैं। भाषा विज्ञान तथा व्याकरण अभिव्यक्ति का सैद्धान्तिक पक्ष होता है और भाषा कौशल अभिव्यक्ति का व्यावहारिक पक्ष। व्यक्ति की सम्प्रेषण क्षमता भाषा कौशलों की दक्षता पर ही निर्भर होती है। भाषा की प्रवाहशीलता का मानदण्ड बोधगम्यता होती है। व्यक्ति जिन भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं उन्हें कितनी सक्षमता से बोधगम्य कराते हैं वह भाषा कौशलों के उपयोग पर निर्भर होती है।

भाषा कौशल की विशेषताएँ -

भाषा कौशल की सामान्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं।

i. कौशल भाषा का व्यावहारिक पक्ष होता है।
ii. भाषा कौशल सम्प्रेषण का साधन तथा मुख्य माध्यम है।
iii. भाषा कौशल में मानसिक, शारीरिक अंगों, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियाँ कर्मशील होती है।
iv. भाषा कौशल अर्जित किये जाते हैं इसके लिए अभ्यास तथा प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है।
v. भाषा कौशल का उद्देश्य बोधगम्यता है।
vi. भाषा कौशल से शाब्दिक अन्तः प्रक्रिया होती है।
vii. भाषा कौशलों का मुख्य आधार भाषा विज्ञान तथा व्याकरण होता है।
viii. भाषा कौशल के दो प्रवाह - (1) लिखना-पढ़ना (2) बोलना-सुनना

ii. **श्रवण कौशल -** चार भाषायी कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) में श्रवण (सुनना) एक महत्वपूर्ण कौशल है। बालक के जन्म से ही इस कौशल को सीखने का क्रम आरम्भ हो जाता है और जीवन पर्यन्त चलता रहता है। हम अधिकतर ज्ञान सुनकर ही प्राप्त करते हैं। सामान्यतः हम जागृत अवस्था का लगभग 42 प्रतिशत समय सुनने में ही व्यतीत करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार बच्चा कक्षा से बाहर खेलकूद, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के कार्यक्रम सुनने में प्रतिदिन लगभग चार घण्टे का समय व्यतीत करता है। श्रवण का भाषण और पठन से सीधा सम्बन्ध है। कुशाग्र बुद्धि का बालक श्रेष्ठ श्रोता माना गया है ध्यानपूर्वक सुनने वाला बालक सावधान पाठक भी होता है और अच्छा वक्ता भी।

श्रवण की प्रकृति - सुनना एक प्रकृति प्रदत्त शक्ति है और इस शक्ति का लाभ वही उठा सकते हैं जिनकी श्रवणेन्द्रिय ठीक हो। इसमें विकार होने से श्रवण दोष उत्पन्न हो जाते हैं। श्रवण का अर्थ किसी ध्वनि, बातचीत, वाद्य-संगीत आदि सुनने से लिया जाता है किन्तु यह सुनने का बहुत सीमित अर्थ है। भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में श्रवण का अर्थ सुनकर भाव-अधिगम या भावग्रहण करना है। इसका अर्थ केवल ध्वनियों को सुनने से नहीं होता। श्रवण में किसी कथन को ध्यान पूर्वक सुनने, सुनी हुई बात पर चिन्तन मनन करने, अपना मन्तव्य स्थिर करने और उसके अनुसार आचरण करने जैसी जटिल प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।

श्रवण कौशल का महत्व - सुनना मानव जीवन के भाषा व्यवहार का एक अनिवार्य पक्ष है। एक अध्ययन के अनुसार मनुष्य अपनी दिनचर्या में भाषा व्यवहार के अन्तर्गत 45 प्रतिशत समय सुनने में, 30 प्रतिशत बोलने में तथा शेष 25 प्रतिशत पठन तथा लेखन के लिए लगता है। विद्यार्थी भी लगभग आधा समय सुनने में लगाता है।

श्रवण केवल एक शारीरिक क्रिया नहीं है। यदि कर्णेन्द्रिय दोष रहित है तो कानों को सुनाई देगा ही। किन्तु अच्छे श्रवण के लिए इससे अधिक की अपेक्षा रहती है। एक अच्छा श्रोता सुनने के साथ प्रस्तुत वार्तालाप के सूत्र को, विचार के विकास को, तर्क के बिन्दुओं को तथा वक्ता के मनोभावों को भी समझता है। अतः श्रवण एक मानसिक क्रिया है। श्रवण कौशल का विकास भाषा शिक्षण का एक महत्वपूर्ण पक्ष है तथा एक अध्यापक होने के कारण अपने विद्यार्थियों में इसके विकास के लिए समुचित प्रयास करना चाहिए।

श्रवण कौशल के विकास के अवसर - विद्यार्थियों को सामान्यतया निम्नलिखित स्थितियों में सार्थक श्रवण के अवसर प्राप्त होते हैं।

i. कक्षा शिक्षण के समय
ii. सहशैक्षिक क्रियाओं के समय
iii. कक्षेत्तर क्रियाकलापों के समय

iv. **कक्षा शिक्षण के समय -** कक्षा शिक्षण के समय विद्यार्थियों को बालगीत कविता, कहानी आदि के माध्यम से श्रवण कौशल के विकास का अवसर प्रदान किये जा सकते हैं।

v. **सहशैक्षिक क्रियाओं के समय -** सहशैक्षिक क्रियाओं के द्वारा भी श्रवण शक्ति का विकास कराया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप जिस एकांकी को विद्यार्थियों ने कक्षा में पढ़ा है उसका कक्षा में अभिनय कराएँ। इससे श्रवण का लाभ होगा तथा मनोरंजन भी। श्रवण बाधित विद्यार्थियों को इस प्रकार के कार्यक्रमों में विशेष रूप से सम्मिलित करें।

निम्न आयोजनों द्वारा विद्यार्थियों को लाभ पहुँचाया जा सकता है।

i. वाद-विवाद प्रतियोगिता
ii. कहानी प्रतियोगिता
iii. कविता वाचन प्रतियोगिता
iv. आशु भाषण प्रतियोगिता
v. समाचार वाचन
vi. प्रार्थना के समय भाषण

iii. **कक्षेत्तर क्रियाकलापों के समय -** कक्षेत्तर क्रियाकलापों द्वारा भी श्रवण कौशल का विकास कराया जा सकता है। इसके लिए निम्न संसाधनों का प्रयोग किया जा सकता है।

i. आकाशवाणी कार्यक्रम द्वारा
ii. दूरदर्शन द्वारा
iii. साप्ताहिक छात्रसभाओं द्वारा
iv. वृत्त चलचित्रों द्वारा
v. टेप-रिकार्ड द्वारा

श्रवण कौशल का मूल्यांकन - मूल्यांकन उद्देश्य आधारित होता है। श्रवण कौशल का मूल्यांकन करते समय इसके उद्देश्यों को लघु इकाईयों में विभाजित कर लें।

मूल्यांकन सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक विद्यार्थी के श्रवण स्तर का व्यक्तिगत रिकार्ड भी रखा जा सकता है। कर्ण सम्बन्धी रोग से ग्रस्त विद्यार्थियों की पहचान करके उनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

श्रवण सम्बन्धी कौशल का मूल्यांकन व्यक्तिगत स्तर पर करना श्रेष्ठ होता है। यदि समयाभाव हो तो सामूहिक रूप से भी मूल्यांकन सम्भव है। मूल्यांकन के समय श्रवण सम्बन्धी मशीनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रेक्षण भी मूल्यांकन की पद्धति हो सकती है।

श्रवण दोष, कारण, निदान और उपचार

श्रवण दोष - सुनने की क्षमता का अभाव ही श्रवण दोष कहलाता है। सामान्य रूप से सुनने की जो क्षमता प्रत्येक बालक को प्रकृति से मिली रहती है उससे कम मात्रा में सुनना ही श्रवण असमर्थता मानी जाती है। श्रवण दोष मुख्यतः दो प्रकार की मानी जाती है। (5) सामान्य रूप से ऊँचा सुनना और (2) गम्भीर रूप से बहरापन।

सामान्य विद्यार्थी ही विद्यालय में प्रवेश पाते हैं। जिन्हें विशेष उपकरणों की सहायता से शिक्षण पद्धति तथा कक्षा प्रबन्धन में कुछ फेर-बदल करके भाषा का विकास किया जा सकता है।

- **कारण -** बालकों में श्रवण दोष के कई कारण होते हैं। जैसे - वंशानुगत, पर्यावरण, कुपोषण, दुर्घटना या आघात, उपचार का अभाव, माता-पिता की उपेक्षा, मानसिक अवरूद्धता आदि।
- **निदान -** कान सम्बन्धी दोष अदृश्य होने के कारण श्रवण बाधित विद्यार्थियों को कक्षा में तुरन्त पहचानना कठिन होता है। ऐसे विद्यार्थियों को उनकी छवि एवं हाव-भाव और विद्यार्थी तथा अध्यापक के बीच कक्षा में होने वाली पारस्परिक क्रियाओं से पहचान कर निदान किया जा सकता है।
- **उपचार -** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान हो जाने के पश्चात् अध्यापक उनके दोषों में यथा सम्भव सुधार लाने तथा उसके भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपचारात्मक सहायता कर सकते हैं।
  - i. श्रवण दोष के बच्चों के माता-पिता एवं अभिभावक से सम्पर्क करके।
  - ii. श्रवण दोष युक्त बच्चों को कक्षा की अगली पंक्ति में बैठाने की व्यवस्था करके।
  - iii. पढ़ाते समय शब्दों को ऊँचे और स्पष्ट आवाज में तथा उचित गति से बोलकर।
  - iv. श्रवण बाधित बच्चों के सहपाठियों को प्रोत्साहित करके।
  - v. कठिन शब्दों या वाक्यांशो के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु ठोस वस्तु या परिस्थिति से जोड़कर।

iv. **वाचन कौशल -** वाचन कौशल को साधारण भाषा में 'बोलचाल' भी कहा जाता है। समाज में हम अपना अधिकांश कार्य-व्यवहार बोलचाल द्वारा ही सम्पन्न करते हैं। यह विचारों के आदान-प्रदान का सरलतम माध्यम है। लिपि के आविष्कार से पूर्व समस्त ज्ञान बोलकर ही दिया जाता था और यह सिलसिलों पीढ़ियों तक चलता रहता था आज भी जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में वाचन की कुशलता आवश्यक है।

बोलने में मौखिक अभिव्यक्ति है जिसमें ध्वनि, व्यवस्था, बल, लय, स्वराघात, गति और विराम का समुचित उपयोग करना ही बोलना है।

वाचन का महत्व - वाचन का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता होती है। वाचन भी एक कला है जिसकी ऊँच-नीच, निर्धन-धनवान सभी को आवश्यकता पड़ती रहती है। वाचन की योग्यता न रखने से व्यक्ति संसार की सांस्कृतिक महानता में अपने अस्तित्व का आनन्द नहीं ले सकता। जीवन-चरित्र, इतिहास काव्य, कहानियाँ, लेख, उपन्यास, नाटक मनुष्य के लिए जिस उद्देश्य से लिखे जाते हैं, उनका पूर्णतया आनन्द और लाभ स्वयं पढकर ही उठाया जा सकता है, परन्तु साधारण पढ़ने और वाचन में थोड़ा अन्तर है। वाचन में साधारण रूप से पढ़ने की अपेक्षा शुद्धता, स्पष्टता तथा प्रभावोत्पादकता अधिक होती है। शुद्ध वाचन के द्वारा हम साहित्य के विशाल साम्राज्य में प्रवेश करते हैं, जिसमें हमें एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

वाचन की शुद्धता एवं उसकी सहायता से हमें वार्तालाप का ढंग आता है जिसके परिणामस्वरूप हम समाज, देश और जाति के अच्छे योग्य नागरिक हो सकते हैं। समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो सकता है तथा वाचन द्वारा हम अन्य अशिक्षित भाइयों को लाभ पहुँचा सकते हैं।

वाचन के उद्देश्य - वाचन के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

i. बालकों को स्वर के आरोह-अवरोह का ऐसा अभ्यास करा दिया जाय कि वे यथा अवसर भावों के अनुकूल स्वर में लोच देकर पढ़ सकें।
ii. वाचन इतना प्रभावोत्पादक बन जाये कि जिस उद्देश्य से वाचन किया गया हो, वह सफल हो और व्यक्ति या समाज उससे प्रभावित हो।
iii. बालकों के अक्षर, शब्दोचारण, उचित ध्वनि, बल तथा सुस्वरता का उचित संस्कार करना।
iv. पुस्तक पढ़कर बालक उसका भाव समझ सके तथा दूसरों को समझा सके।

वाचन का प्रयोग तथा अभ्यास प्रारम्भ से ही करा देना चाहिए, क्योंकि बाल्यावस्था में एक बार आदत पड़ जाने पर वह शीघ्र नहीं छूटती तथा बालक उसके अभ्यस्त हो जाते हैं।

वाचन की विशेषताएँ - वाचन की निम्न विशेषताएँ हैं।

i. वाचन में सुन्दरता के साथ प्रवाह बनाये रखना।
ii. मधुरता, प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार पूर्ण ढंग से आरोह-अवरोह के साथ वाचन करना।
iii. प्रत्येक शब्द शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चरित करना।
iv. प्रत्येक शब्द को अन्य शब्दों से अलग करके उचित बल तथा विराम के साथ पढ़ना।
v. आवश्यकतानुसार उचित भाव-भंगिमाओं का होना तथा समान गति से पढ़ना।

उपरोक्त विशेषताओं का उचित प्रकार से अनुकरण करने से अच्छे वाचनकार आगे चलकर अच्छे वार्ताकार, प्रभावशाली वक्ता तथा सफल अभिनेता हो जाते हैं।

वाचन की सामग्री - वाचन की सामग्री का चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिए। इस सामग्री के विश्लेषण से पता चलता है कि इसे व्यापक होना चाहिए। वाचन के लिए निम्न सामग्री उपादेय हो सकती है।

i. निबन्ध - विचार-प्रधान, भाव-प्रधान, व्यंग्य एवं विनोद-प्रधान, व्यक्तिपरक एवम विषयपरक निबन्ध
ii. संस्मरण, शब्दचित्र
iii. आत्मकथा, जीवनी, डायरी, रिपोर्ताज पत्र
iv. नाटक, एकांकी, संवाद
v. कहानी-चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान, समस्या-प्रधान
vi. उपन्यास
vii. कविता

वाचन की विधियाँ - प्रारम्भ में बालकों को वाचन की शिक्षा देने में शब्दों को पहचानने पर बल देना पड़ता है। बालक अपने चारों तरफ के परिवेश में भाषा के उच्चरित रूप को सुनता रहता है और उसका दृष्टिपरक प्रतीक भाषा का लिपिबद्ध मुद्रित रूप होता है। भाषा की दृष्टिपरक प्रतीक प्रणाली के दो रूप होते हैं।

- अभिव्यक्ति सम्बन्धी रूप।
- ग्रहण सम्बन्धी रूप, वाचन दूसरे रूप का प्रतिनिधि है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वाचन की विधियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

- संश्लेषणात्मक विधियाँ।
- विश्लेषणात्मक विधियाँ।
- संश्लेषणात्मक विश्लेषणात्मक अथवा समाहारक विधियाँ।

संश्लेषणात्मक विधि में शब्दों और उनकी ध्वनियों के तत्वों पर प्रारम्भ में बल दिया जाता है। संश्लेषणात्मक विधि को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

- वर्णमाला पद्धति
- ध्वन्यात्मक पद्धति (फोनिक मेथड)
- अक्षर विधि (सिलेबिक मेथड)

वर्णमाला के क्रम से वर्णों को सिखाकर पढ़ना सीखाना भारतीय विद्यालयों में प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। ध्वन्यात्मक में जब वर्णों की ध्वनियाँ शीघ्रता से बोली जाती है तो वे शब्द की उत्पत्ति करती है। वर्ण का नाम महत्वपूर्ण न होकर ध्वनि महत्वपूर्ण है। इसमें पहले स्तर सीखाये जाते हैं फिर व्यंजन। यह विधि रोमन विधि के आधार पर विकसित है। जहाँ वर्ण और ध्वनि अलग-अलग है। अक्षर विधि में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि पढ़ाने के लिए मूल इकाई किसे बनाया जाय। अंग्रेजी में वाचन की दृष्टि से इसका महत्व है।

विश्लेषणात्मक विधियाँ इस मान्यता पर आधारित है कि वाचन के शिक्षण के समय सार्थक भाषाई-इकाई से प्रारम्भ किया जाय। जो लोग शब्दों को सार्थक इकाई मानते हैं वे शब्द विधि का समर्थन करते हैं। अन्य विद्वान वाक्यांश विधि या वाक्य विधि का समर्थन करते हैं। शब्द-विधि में 'देखो और कहो'विधि की अधिक चर्चा रहती है। वाक्यांश विधि अंग्रेजी शिक्षण में अधिक उपयोगी है। वाक्य विधि का विस्तार 'कहानी विधि' के रूप में हुआ है। समाहारक विधि में संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक दोनों पद्धतियों का समन्वय करने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक प्रवृत्ति समाहारक विधियों की ओर अधिक है।

वर्तमान शिक्षा जगत में वाचन की शिक्षा के लिए अनेक विधियाँ प्रचलित हैं जिनका उल्लेख निम्नवत् है।

- देखो और कहो
- अक्षर-बोध विधि
- ध्वनि-साम्य विधि
- अनुध्वनि विधि
- भाषा शिक्षण की यन्त्र-विधि
- समवेत पाठ विधि
- संगति विधि

वाचन के प्रकार

वाचन के दो प्रकार होते हैं। ?

- सस्वर वाचन
- मौन वाचन

v. **सस्वर वाचन -** स्वर सहित वाचन को सस्वर वाचन कहा जाता है। इसमें छात्र पढ़ने के साथ-साथ बोलता भी जाता है। इसमें चार क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

- लिपिबद्ध अक्षरों को देखना।

- पहिचानना
- शब्दों को समझना एवं उच्चारण करना,
- अर्थ ग्रहण करना।

सस्वर वाचन का महत्व - हम अपने दैनिक व्यवहार में सस्वर वाचन का प्रयोग प्रायः करते हैं। सभाओं में भाषण देने के लिए पहले से लिख कर बोलते हैं। हमारे नेता भाषण देते समय वाचन ही करते हैं। इस प्रकार अनेक औपचारिक अवसरों पर भाषण देने के लिए वाद-विवाद एवं गोष्ठियों में अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से रखने के लिए सस्वर वाचन की आवश्यकता पड़ती है।

शुद्ध एवं प्रभावी तथा प्रवाहपूर्ण वाचन श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध करता है तथा वार्तालाप के समय वार्तालाप को रूचिकर बना देता है। शैक्षिक संवाद, सेमिनार, कार्यगोष्ठी, सम्मेलन आदि में अच्छे सस्वर वाचन का अपना अलग महत्व है। उत्तम सस्वर वाचन से वाचक में आत्मविश्वास बढ़ता है उसके भाषा प्रयोग की क्षमता में वृद्धि होती है, औपचारिक अवसरों पर उसकी झिझक दूर हो जाती है तथा नेतृत्व के गुणों का विकास होता है।

सस्वर वाचन के उद्देश्य - सस्वर वाचन के निम्नलिखित उद्देश्य है।

- विद्यार्थियों को वाक्य रचना का ज्ञान कराना।
- विद्यार्थियों को लिपि का स्पष्ट ज्ञान कराना।
- विरामादि चिन्हों का समुचित ध्यान रखते हुए पढ़ना।
- उचित बल एवं आरोह-अवरोह के साथ पढ़ना।
- भावानुरूप अवसर के अनुरूप पढ़ना।
- श्रोताओं को संख्या एवं अवसर के अनुसार वाणी को नियंत्रित करना।
- उच्चारण एवं सुर में स्थानीय बोलियों का प्रभाव न आने देना।

मौन वाचन

मौन वाचन का अर्थ है बिना होठ हिलाये चुपचाप पढ़ना तथा चुपचाप पढ़ते हुए अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण करना।

मौन वाचन के समय शान्तिपूर्ण वातावरण, वाचन की मुद्रा, धैर्य की भावना, विकसित शब्दकोश तथा एकाग्रता और उचित प्रवाह एवं गति का ध्यान रखना आवश्यक होता है।

मौन वाचन का महत्व - मौन वाचन में निपुणता का आना व्यक्ति के विचारों की प्रौढ़ता का द्योतक है और भाषायी दक्षता पर अधिकार का सूचक है। मौन वाचन में थकान कम होती है क्योंकि इसमें वाग्यन्त्रों पर जोर नहीं पड़ता। मौन वाचन में समय की भी बचत होती है इसमें मितव्ययिता होने के कारण दैनिक

जीवन में व्यक्ति इसका अधिकाधिक प्रयोग करता है। इसमें साथ-साथ चिन्तन की प्रक्रिया भी चलती रहती है। मौन वाचन द्वारा स्वाध्याय की आदत पड़ती जाती है। स्वाध्याय में रूचि उत्पन्न होने से छात्र वाचन द्वारा आनन्द प्राप्त करने का प्रयास करता है।

मौन वाचन के उद्देश्य - मौन वाचन के उद्देश्य निम्नलिखित है।

- विद्यार्थियों को मौन वाचन का अभ्यास कराना जिससे वे कम से कम समय में अधिक से अधिक सामग्री आत्मसात् कर सके।
- विद्यार्थी पठित सामग्री का केन्द्रीय भाव ग्रहण कर सकें।
- विद्यार्थी तथ्यों भावों एवं विचारों की क्रमबद्धता की पहचान कर सकें।
- विद्यार्थी पठित सामग्री से निष्कर्ष निकाल सके।
- विद्यार्थी भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों को सामने रख सकें।
- विद्यार्थी प्रसंगानुसार अपरिचित शब्दों उक्तियों एवं मुहावरों के अर्थ का अनुमान लगा सके।
- विद्यार्थी शब्दों के लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ जान सके।

vi. **पठन कौशल -** पठन भाषा के चारों कौशलों - सुनना, बोलना, पढना और लिखना में से एक कौशल है। सुनना और बोलना तो बच्चे विद्यालय में आने से पूर्व ही सीख लेते हैं। परन्तु पढ़ना और लिखना सीखने के लिए उन्हें विद्यालय में विधिवत शिक्षा लेनी पड़ती है। भाषा शिक्षा-प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। भाषा के बिना ज्ञानार्जन नहीं किया जा सकता है। ज्ञान विस्फोट के इस युग में पठन के द्वारा ही अपने ज्ञान को अधुनातन बना सकते हैं। पठन का उपयोग जीवन-पर्यन्त रहता है। अतः भाषा-शिक्षण में विद्यार्थियों के पठन-कौशल के विकास पर विशेष बल देना चाहिए।

पठन का महत्व - पठन भाषा ज्ञान का ही नहीं, अपितु समस्त विषयों के ज्ञानार्जन का मुख्य साधन है। इस कारण इसका अर्थ व्यापक हो गया है और वह शिक्षा का पर्याय बन गया है। वस्तुतः पठन शिक्षण की सफलता पर भाषा के अनेक कौशलों का विकास विविध विषयों का ज्ञानार्जन, आनन्द और प्रेरणा की प्राप्ति, बौद्धिक और भावात्मक विकास तथा भाषित एवं साहित्यिक योग्यताओं की समृद्धि निर्भर है।

पठन के उद्देश्य - पठन शिक्षण के निम्नवत् उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

- विद्यार्थी सहज रूप से वार्तालाप कर सकते हैं।
- विद्यार्थी कहानियों को पढ़कर उसे सुना सकते हैं।

- विद्यार्थी वस्तुओं तथा उनके चित्र को देखकर उनका नाम याद कर सकते हैं।
- विद्यार्थी समान ध्वनियों में अन्तर कर सकते हैं।
- विद्यार्थी पठन कौशल तथा पठन योग्यता की कमियों को दूर कर सकते हैं।

पठन की सामग्री - पठन की सामग्री का चयन कक्षाओं के अनुरूप किया जाना चाहिए।

- पठन के आरम्भ में आकृतियों तथा चित्र आदि का सहयोग लेना चाहिए।
- प्राथमिक कक्षाओं में वर्णमाला, लेख, कहानी, जीवनी, संवाद कविता आदि।
- उच्च प्राथमिक कक्षाओं में प्रारम्भिक कक्षा की सामग्री के अतिरिक्त मानचित्र पठन तथा कोश/विश्वकोश-पठन।

पठन की विधियाँ - पठन की विभिन्न शिक्षण विधियों में वर्ण विधि, शब्द विधि, वाक्य विधि, व्यावहारिक विधि अथवा संयुक्त विधि।

a. **वर्ण विधि -** इस विधि के अन्तर्गत वर्णों की सीधे पहचान कराई जाती है। जैसे - स्वरों और व्यंजनों का लिखित रूप की पहचान कराना और उन्हें उनकी विधियों में वर्णमाला पर विशेष ध्यान दिया जाता है वर्णमाला के पश्चात् बारहखड़ी याद करायी जाती है।
b. **शब्द विधि -** इस विधि के अन्तर्गत शब्दों पर बल होती है। शब्द के माध्यम से वर्ण सीखाये जाते हैं और क्षमता वाले वर्णों को पहले पढ़ाया जाता है और कम क्षमता वाले वर्णों को बाद में सीखाया जाता है।
c. **वाक्य विधि -** यह विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि वाक्य ही भाषा की अर्थपूर्ण इकाई है इसलिए वर्णों को सीखाने के लिए भी प्रारम्भ में वाक्य ही प्रस्तुत करना चाहिए। इस वाक्य में इस प्रकार के मूल शब्द होने चाहिए जिनके विश्लेषण से अपेक्षित वर्ण प्राप्त हो सके। इसके लिए आज्ञार्थक वाक्य उपयुक्त हैं क्योंकि वे लघुत्तम होते हैं। जैसे-अमर आ। घर चल। छत पर चढ़।
d. **व्यावहारिक अथवा संयुक्त विधि -** शिक्षण विधियाँ साधन हैं, साध्य नहीं, इन सभी विधियों का उद्देश्य वर्णबोध कराना है। व्यावहारिक दृष्टि यह है कि विद्यार्थियों की आयु, रूचि, स्वभाव तथा समय और सामग्री की सीमाओं के आधार पर कीन्हीं दो या दो से अधिक विधियों को एक साथ उपयोग में लायी जाय।

vii. **लेखन कौशल -** लेखन कला मानव समाज का महत्वपूर्ण आविष्कार है, सभ्यता के विकास के साथ मानव ने अपने भावों को चित्रित करने के स्थान पर ध्वनियों को चित्रों के प्रतीकों के माध्यम से अंकित करना सीखा और इस प्रकार लिपि का आविष्कार हुआ। अतः लिपि चिन्ह मान

ध्वनियों के लिए स्वीकृत भिन्न-भिन्न आकृति प्रतीक है। जैसे -हिन्दी भाषा में 'कमल' शब्द में उच्चरित 'क' 'म' तथा 'ल' की ध्वनियों के लिए क, म तथा ल आकृति प्रतीक है।

लेखन-कला के विकास का ही यह परिणाम है कि मनुष्य का अर्जित ज्ञान लिपिबद्ध रूप में प्राप्त है। आज हम लेखन के बिना सभ्य समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते। अतः लेखन कला में कुशलता का विकास शिक्षण का महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

लेखन कौशल के उद्देश्य - भाषा शिक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य है भावाभिव्यक्ति जो लिखित और मौखिक दोनों रूपों में होती है। लिखित भावाभिव्यक्ति लिखने के अभाव में असम्भव है। हम लिखने को शिक्षा का आवश्यक अंग मानते हैं।

लिखकर हम अपने विचारों को दूर-दूर तक पहुँचा देते हैं। लिखित अभिव्यक्ति के अनेक रूप हैं जिनमें पत्र-लेखन, प्रार्थना-पत्र-लेखन, निबन्ध लेखन, जीवन चरित्र-लेखन, आत्मकथा लेखन, कहानी-लेखन, संवाद-लेखन प्रमुख हैं। लेखन के उद्देश्य निम्नवत् हैं-

- विद्यार्थी स्पष्ट सुलेख लिख सके।
- विद्यार्थी शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिख सके।
- विद्यार्थी विराम-चिन्हों का यथोचित प्रयोग कर सके।
- विद्यार्थी व्याकरण-सम्मत शुद्ध भाषा का प्रयोग कर सके।
- विद्यार्थी वाक्यों में शब्दों, वाक्यांशों तथा उपवाक्यों का क्रम अर्थानुकूल रख सके।
- विद्यार्थी लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति कर सके।
- विद्यार्थी लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति कर सके।

लेखन कौशल का महत्व - भाषा पर अधिकार प्राप्ति के लिए जिस प्रकार किसी भाषा का सुनना, बोलना और पढ़ना महत्व रखता है उसी प्रकार लिखने का भी अपना महत्व है। अतः इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

- किसी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि पढ़ने के साथ-साथ उस भाषा को लिखा भी जाय।
- आधुनिक सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने के लिए लिखना अति आवश्यक है।
- बौद्धिक विकास के लिए भी लिखना सीखना आवश्यक है।
- विचार करने तथा मनन करने के लिए लेखन का ज्ञान विशेष आवश्यक है।

- अपने देश की सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान हमें लेखन कला के माध्यम से ही हुआ है।
- संसार के विभिन्न देशों से परस्पर सम्बन्ध लिखित भाषा के माध्यम से ही होता है।

लेखन के प्रकार - सामान्यतया लेखन का अभ्यास तीन प्रकार का होता है।

i. **सुलेख**-सुन्दर लेख को सुलेख कहते हैं। यह लेखन का प्रथम और आवश्यक गुण है। सुलेख लिखते समय वर्ण के विभिन्न अवयवों की बनावट, उसकी स्पष्टता तथा सुडोलता, वर्णों में स्वर-मात्राओं का उचित योग, वर्ण से वर्ण और शब्द से शब्द की उचित दूरी, सीधी शिरो रेखा आदि बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

ii. **अनुलेख**-अनुलेख से अभिप्राय है श्यामपट्ट अथवा पुस्तक की सामग्री को ज्यों का त्यों देखकर लेख लिखना। अनुलेख का उद्देश्य शद्ध वर्तनी सहित लेखन का अभ्यास कराना। अनुलेख में सुलेख का ध्यान रखना चाहिए।

iii. **श्रुतलेख** - सुनकर लिखे गये लेख को श्रुतलेख कहते हैं। इसका उद्देश्य वक्ता द्वारा उच्चरित ध्वनियों को कान लगाकर सुनना तथा उसके अनुरूप उचित गति, स्पष्टता एवं शुद्धता से लिखने का स्वच्छतापूर्वक अभ्यास करना है।

लेखन कौशल विधियाँ - लेखन की विधियाँ निम्नलिखित है।

- खण्डशः लेखन विधि
- रूप अनुसरण विधि
- अनुलेखन विधि
- तुलना विधि

इन विधियों के माध्यम से लेखन कार्य को स्पष्ट, सुन्दर और समझने योग्य किया जा सकता है।

खण्ड 2

Block 2

इकाई1- पाठ्यक्रम और पाठ्य समाग्री का निर्माण

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पाठ्यक्रम
  1.3.1 पाठ्यक्रम का अर्थ
  1.3.2 पाठ्यक्रम की परिभाषा
  1.3.3 पाठ्यचर्या का अर्थ
  1.3.4 पाठ्य-वस्तु का तात्पर्य
  1.3.5 पाठ्यक्रम,पाठ्यचर्या एवम पाठ्य-वस्तु में अन्तर
1.4 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया
  1.4.1 शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण
  1.4.2 शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता
  1.4.3 शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण की उपयोगिता, स्रोत एवम प्रकार
  1.4.4 पाठ्यक्रम निर्माण में ब्लूम के निर्धारण का महत्व
  1.4.5 शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के मानदण्ड
  1.4.6 आधुनिक भारत की शैक्षिक आवश्यकताएँ
1.5 अधिगम अनुभवों का चयन
  1.5.1 अधिगम अनुभवों का सृजन
  1.5.2 अधिगम अनुभवों के चयन का मानदण्ड
  1.5.3 अधिगम अनुभवों का वर्गीकरण
1.6 विषय-वस्तु का चयन
  1.6.1 पाठ्य-वस्तु के स्रोत
  1.6.2 पाठ्य-वस्तु चयन के मूल आधार
1.7 पाठ्यक्रम का संगठन
  1.7.1 पाठ्यक्रम संगठन के प्रकार
1.8 सामग्री का चयन
1.9 गतिविधियों या क्रिया-कलापों का विकास

1.10 पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण
1.11 पाठ्यपुस्तक निर्माण का सिधांत
1.12 सारांश
1.13 निबंधात्मक प्रश्न
1.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है, इन त्रिध्रुवों में शिक्षक, शिक्षार्थी तथा पाठ्यक्रम सम्मिलित हैं। तीनों में से किसी एक की अनुपस्थिति से शिक्षा प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो सकती। कुछ विद्वान वातावरण को भी एक ध्रुव के रूप में मान्यता प्रदान करने लगे हैं। शिक्षा मानव विकास का सर्वोत्तम साधन है। वर्तमान समय में व्यक्ति ,समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति उत्तम शिक्षा से ही संभव है। शिक्षा की प्रक्रिया में विभिन्न युगों में देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार अलग अलग पक्षों को प्राथमिकता दी जाती रही है। कभी शिक्षकों को कभी छात्रों को तो कभी विषय वस्तु और कभी शिक्षण उद्देश्यों को भी महत्व दिया जाता रहा है वर्तमान समय में उद्देश्यों को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की व्यवस्था तथा शिक्षण-परीक्षण प्रक्रिया में भी उद्देश्यों को ही महत्व दिया जा रहा है। उद्देश्य साध्य होते हैं, इनकी प्राप्ति के लिए साधन की आवश्यकता होती है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकें हैं। शिक्षा की प्रक्रिया की सार्थकता एवं प्रभावशीलता के लिए साध्य एवं साधन में समन्वय स्थापित करना अति आवश्यक है। गाँधी जी कहते है कि–"उत्तम साध्य के लिए उत्तम साधन का होना अनिवार्य है।"

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाठ्यक्रम की नवीन संकल्पना का विकास हुआ तथा उद्देश्यों को अधिक महत्व प्रदान किया गया। पाठ्यक्रम की नवीन संकल्पना से विचारकों, शिक्षाविदों एवं विषय विशेषज्ञों का ध्यान "पाठ्यक्रम विकास" की ओर गया। शताब्दी के उत्तरार्ध में इस दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयास भी किये गए तथा किये जा रहे हैं। अत: 'पाठ्यक्रम विकास' शिक्षा की विषय-वस्तु का एक महत्वपूर्ण अंग बना हुआ है। पाठ्यक्रम के निर्माण एवं मूल्याकन पर अनुसन्धान कार्य भी हो रहे हैं तथा पाठ्यक्रम विकास के अनेक प्रतिमान भी विकसित किये गये हैं। प्रस्तुत इकाई में 'पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम सामग्री का निर्माण' के सन्दर्भ की चर्चा की गयी है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. पाठ्यक्रम ,पाठ्यचर्या तथा पाठ्य-वस्तु का अर्थ बता सकेंगे
2. पाठ्यक्रम ,पाठ्यचर्या तथा पाठ्य-वस्तु के अंतर को समझ सकेंगे।
3. पाठ्यक्रम निर्माण को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण, आवश्यकता, स्रोत, उपयोगिता और प्रकार का वर्णन कर सकेंगे।
5. अधिकतम अनुभवों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. पाठ्यक्रम के संगठन के प्रतिमान का विश्लेषण कर सकेंगे।
7. अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण के तत्वों को समझ सकेंगे।
8. पाठ्यपुस्तक के सिद्धांत को बता सकेंगे।

1.3 पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम का तात्पर्य है कि विषय-वस्तु के हिसाब से क्या पढ़ाया जाये और वे ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियाँ जिन्हें खास रूप से विशिष्ट उद्देश्यों के साथ बढ़ावा मिले। पाठ्यक्रम शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। इसमें विचार-प्रधान विषयों को विशेष स्थान दिया जाता है। पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति-शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, संगीत, विज्ञान आदि विषयों का विकास किया जा सकता है।

1.3.1 पाठ्यक्रम का अर्थ

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी भाषा के करिकुलम शब्द का हिंदी रूपांतर है। करिकुलम शब्द लैटिन भाषा से अंग्रेजी भाषा में ग्रहण किया गया है यह लैटिन भाषा के कुर्रेर शब्द से बना है। कुर्रेर शब्द का अर्थ होता है "दौड़ का मैदान"। जिससे किसी व्यक्ति को अपने गंतव्य स्थान पर पहुचने में सहायता मिलती है अतः पाठ्यक्रम वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। पाठ्यक्रम अध्ययन का निश्चित एवम तर्कपूर्ण क्रम है, जिसके माध्यम से विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा ज्ञान एवम् अनुभव को ग्रहण करता है।

1.3.2 पाठ्यक्रम की परिभाषा

पाठ्यक्रम की सर्वमान्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं।

- **वाल्टर एस० मुनरो के अनुसार** – " पाठ्यक्रम को किसी विद्यार्थी द्वारा लिए जाने वाले विषयों के रूप में परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम की कार्यात्मक संकल्पना के अनुसार

इसके अंतर्गत अनुभव आ जाते हैं जो विद्यालय में शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।"

- **बविट के अनुसार**– " उच्चतर जीवन के लिए प्रतिदिन और २४ घन्टे की जा रही समस्त क्रियायें पाठ्यक्रम के अंतर्गत अ जाती हैं।"
- **ले के अनुसार**– " पाठ्यक्रम का विस्तार वहां तक है जहाँ तक जीवन है।"
- **कनिंघम के अनुसार**– "पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपनी सामग्री (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपनी चित्रशाला (विद्यालय) में ढाल सके।"
- **माध्यमिक शिक्षा आयोग**– "पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्ति विषयों से नहीं है जो विद्यालयों में परंपरागत रूप से पढाये जाते हैं बल्कि इसमें अनुभवों की वह सम्पूर्णता भी सम्मिलित होती है जिनको विद्यार्थी विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला, खेल के मैदान तथा शिक्षक एवं छात्रों के अनेक अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम हो जाता है जो छात्रों के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है और उनके संतुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता देता है।"
- **ब्लातंस के अनुसार-** "पाठ्यक्रम को क्रिया एवं अनुभव के परिणाम के रूप में समझा जाना चाहिए न की अर्जित किये जाने वाले ज्ञान और समाहित किये जाने वाले तथ्यों के रूप में। विद्यालय जीवन के अंतर्गत विविध प्रकार के कलात्मक, शारीरिक एवं बौद्धिक अनुभव तथा प्रयोग सम्मिलित रहते हैं।" उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि- "पाठ्यक्रम जीवन को उत्कृष्ट बनाने हेतु ज्ञान प्राप्ति के समस्त स्रोत और संसाधनों का समन्वय है।"

1.3.3 पाठ्यचर्या का अर्थ

पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम के उस पक्ष को कहते हैं जिसे कक्षा में प्रयोग हेतु व्यवस्थित किया जाता है। इसमें पाठ्यवस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोगार्थ सहायक सामग्री एवं कार्यविधि आदि के निर्देश भी सम्मिलित होते हैं।

गुड के अनुसार– "पाठ्यचर्या किसी कक्षा को किसी विषय के शिक्षण में सहायता के लिए किसी विद्यालय विशेष अथवा व्यवस्था के लिए तैयार किया जाता है। पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य, आपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री की प्रकृति एवं विस्तार तथा उपयुक्त सहायक सामग्री शिक्षण विधियाँ, सहगामी क्रियाएं तथा अनुपूरक पुस्तकें एवं उपलब्धि मापन के सुझाव सम्मिलित किये जाते हैं।"

1.3.4 पाठ्यवस्तु का तात्पर्य (Meaning of syllabus)

पाठ्यवस्तु पूरे शैक्षिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षण की विषय-वस्तु का निर्धारण करता है।

हेनरी हेरेप के अनुसार– "पाठ्यवस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है जो यह बताती है कि छात्र को क्या सीखना है ? पाठ्यवस्तु की तयारी पाठ्यक्रम विकास के कार्य का एक तर्क सम्मत सोपान है ।"

1.3.5 पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यवस्तु में अन्तर

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम के लिए करीक्युलम के साथ–साथ पाठ्यवस्तु तथा पाठ्यचर्या शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु मूल रूप से इन तीनों में अन्तर है । जब तक पाठ्यक्रम शब्द पाठ्य विषयों के सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तब तक ये तीनो शब्द प्रायः समानार्थी मने जाते रहे, लेकिन आज इनमें व्यापकता होने के कारण भिन्नता आ गई है ।

- **पाठ्यक्रम (Curriculum)-** के अंतर्गत विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त सभी अनुभव आते हैं तथा जिनमें कक्षा के अन्दर एवं बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य एवं पाठ्येत्तर क्रियाएं सम्मिलित होती हैं ।
- **पाठ्यचर्या (Course of study)-** पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम के लिए प्रचलित शब्दों में अपेक्षाकृत नया शब्द है । इसका प्रयोग किसी पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरुप के लिए तैयार किया जाता है । पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम के उस पक्ष को कहा जाता है जिसे कक्षा में प्रयोग हेतु व्यवस्थित किया जाता है ।
- पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य, अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री, सहायक सामग्री, शिक्षण विधियाँ, सहयोगी क्रियाएँ आदि सम्मिलित रहती हैं ।
- **पाठ्य-वस्तु (Syllabus)-** पाठ्यवस्तु पाठ्य-विषयों के शिक्षण हेतु अन्तर्वस्तु, उसके ज्ञान की सीमा, छात्रों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले कौशलों को निशचित करता है तथा शैक्षिक सत्र में पढाये जाने वाले व्यक्तिगत पहलुओं एवं निष्कर्षों की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है ।
  पाठ्य-वस्तु किसी पाठ्य-विषय के लिए अधिगम के एक स्तर विशेष पर पाठ्यक्रम का एक परिष्कृत एवं विस्तृत रूप होता है । पाठ्य-वस्तु का सम्बन्ध केवल ज्ञानात्मक पक्ष से होता है ।

1.4 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया

पाठ्यक्रम विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था का केंद्र बिंदु है । विद्यालय में उपलब्ध सभी संसाधन जैसे- विद्यालय भवन, उपकरण, पुस्तकालय की पुस्तकें तथा अन्य शिक्षण सामग्री का एक मात्र उद्देश्य है– पाठ्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन में सहयोग देना । कक्षा की समस्त क्रियाएं, पाठ्य सहयोगी क्रिया-कलाप तथा मूल्यांकन की समस्त प्रक्रिया विदयालयी पाठ्यक्रम के अनुसार ही नियोजित की जाती है । पाठ्यक्रम शैक्षिक प्रक्रिया का वह अंग है जो शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को अध्ययन एवं अध्यापन की दिशा प्रदान करता है ।

पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य एक विशिष्ट कार्य है। इसके लिए इसमें प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों तथा दिए जाने वाले अधिगम अनुभवों और पाठ्यक्रम के विभिन्न क्रिया-कलापों द्वारा बालकों में लाये जाने वाले परिवर्तनों के मूलयांकन की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माण की सुनियोजित प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए हमें निम्न सोपानों का अनुगमन करना चाहिए –

i. शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण
ii. अधिगम अनुभवों का चयन
iii. विषय-वस्तु का चयन
iv. विषय-वस्तु का संगठन
v. पाठ्यक्रम का मूल्यांकन

1.4.1 शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण

समाज के यथार्थ शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाना है। उद्देश्य उपेक्षित उपलब्धियों को विशिष्टता प्रदान करते हैं। उद्देश्यों को निर्धारित करते समय निम्न बातों का ध्यान देना चाहिए।

- उद्देश्यों का सम्बन्ध शिक्षा के विस्तृत लक्ष्यों से होना चाहिए जो उनका स्रोत है।
- उद्देश्य विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार उपयोगी, अर्थपूर्ण और प्रासंगिक होने चाहिए।
- उद्देश्य सुस्पष्ट होने चाहिए।
- सभी उद्देश्य छात्रों की रूचि और आवश्यकताओं को पूरा करने वाले होने चाहिए।
- उद्देश्यों पर समय-समय पर पुनर्विचार करना आवश्यक है।
- उद्देश्यों का वर्गीकरण सर्वमान्य विचार के अनुरूप व तार्किक होना चाहिए।

1.4.2 उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता- पाठ्यक्रम मूल रूप से एक नियोजित शैक्षिक कार्यक्रम है इसे इसलिए तैयार किया जाता है कि हम समाज द्वारा स्वीकृत व्यव्हार सीख सकें। पाठ्यक्रम को निश्चित करने से पहले यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि समाज के सदस्यों की आवश्यकता क्या है ? तथा समाज शिक्षा के विभिन्न स्तरों से क्या पाना चाहता है। इसके उपाय निम्नवत हैं।

- पाठ्यक्रम हेतु विशेष सर्वेक्षण एवं क्षेत्रीय अध्ययन द्वारा शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- आवश्यकता का निर्धारण शिक्षा आयोगों की रिपोर्ट, सरकारी नीतियों आदि के विश्लेषण द्वारा किया जाना चाहिए

1.4.3 उद्देश्यों के निर्धारण की उपयोगिता, स्रोत एवं प्रकार- पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के निर्धारण की पयोगिता निम्नवत है।

- शैक्षिक कार्यक्रमों को निश्चित दिशा मिलती है
- शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन एवं व्यवस्थीकरण को को निश्चित आधार मिलता है।
- शैक्षिक निर्णयों के लिए उचित मार्गदर्शन प्राप्त होता है।
- अधिगम के विभिन्न पक्षों में विभेदीकरण संभव होता है।
- शैक्षिक कार्यक्रमों की प्राथमिकताओं को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है।
- अधिगम को कार्यात्मक बनाने में सहायता मिलती है।

स्रोत- शैक्षिक उद्देश्यों के स्रोतों की प्रकृति एवं विस्तार क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है।

1- समाज 2- व्यक्ति 3- ज्ञान

1- **समाज (Society)-** शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण समाज द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती तथा समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। समाज का आर्थिक, राजनीतिक, तथा सांस्कृतिक आधार क्या है तथा इसकी आवश्यकताएं किस प्रकार की हैं ये बातें शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के महत्वपूर्ण होती है।

2- **व्यक्ति (Human)-** शैक्षिक उद्देश्यों का दूसरा प्रमुख स्रोत व्यक्ति है। व्यक्ति का महत्व इस कारण है कि उसकी अपनी स्वतंत्र इच्छा शक्ति एवं कुछ विशिष्ट आवश्यकताएँ होती है। इन आवश्यकताओं का सम्बन्ध वैयक्तिक विकास से होता है। बालक का शारीरिक , मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास कैसे होता है ? विभिन्न आवश्यकताओं में उसकी आवश्यकताएं, रुचियों एवं रुझान किस प्रकार के होते हैं ? उसकी योग्यताएं एवं क्षमताएं कैसी हैं ? आदि बातों का शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में बहुत महत्व है।

3- **ज्ञान (Knowledge)-** सभ्यता के विकास का मूल ज्ञान ही है। शिक्षा सभ्यता के विकास का माध्यम है, अतः इसे ज्ञान के विकास और उपयोग में भी सहायक होना चाहिए। ज्ञान के भी अपने अनेक अंग एवं पक्ष हैं। जैसे- तथ्य, प्रक्रियाएं, विचार, अवधारणाएं, चिंतन, प्रणालियाँ, आदि। ज्ञान के भण्डार को विभिन्न वर्गों में आयोजित करके उन्हें अलग-अलग विषयों का नाम प्रदान किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में ज्ञान एक प्रमुख घटक है।

प्रकार– शैक्षिक उद्देश्यों के दो प्रकार है।

1- सामान्य उद्देश्य 2- विशिष्ट उद्देश्य

1- सामान्य उद्देश्य (General objective)- कुछ उद्देश्य व्यापक एवं स्थूल प्रकृति के होते हैं। ये सम्पूर्ण समाज अथवा देश के लिए सार्थक हो सकते हैं। ऐसे उद्देश्यों के कथन का प्रमुख लक्ष्य किसी शैक्षिक प्रणाली को आधार प्रदान करना होता है। ये पाठ्यक्रम विकास के लिए दिशा निर्देश निर्धारित करते हैं ऐसे उद्देश्यों को सामान्य उद्देश्य कहते हैं।

1.4.4 पाठ्यक्रम निर्माण में ब्लूम के निर्धारण का महत्व- पाठ्यक्रम के क्षेत्र से सम्बन्धित सभी व्यक्ति ब्लूम एवं सहयोगियों द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक उद्देश्यों के निश्चित एवं स्पष्ट उद्देश्यों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। पाठ्यक्रम नियोजन की दृष्टि से इस निर्धारण का महत्व निम्नवत है।

i. यह निर्धारण 'सरल से जटिल की और' के सिद्धांत पर आधारित है।
ii. सीखने वाले के स्तर का सही ज्ञान होने पर मूल्यांकन की प्रविधियों, उपकरणों आदि को निश्चित करने तथा उन्हें तैयार करने की भी सुविधा होती है।
iii. इस निर्धारण की सहायता से मूल्यांकन विधियों की वैधता की जाँच भी सरलता से की जा सकती है।
iv. यह निर्धारण तर्क आधारित है। अतः इससे अध्ययन सामग्री तथा शिक्षण अधिगम स्थितियों के क्रमिक नियोजन में बहुत सहायता मिलती है।
v. इस निर्धारण से उचित परीक्षा स्थितियों के चयन में भी सुविधा होती है।
vi. इस निर्धारण में शिक्षण एवं मूल्यांकन दोनों के समस्त पक्षों पर समुचित ध्यान देने के कारण विद्यार्थियों के सर्वांगीण एवं संतुलित विकास के सम्बन्ध में निश्चित हुआ जा सकता है।
vii. ज्ञानात्मक, भावनात्मक, एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों से सम्बंधित होने से यह वर्गीकरण औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण है।

1.4.5 शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के मानदण्ड- प्रत्येक समाज की शिक्षा के उद्देश्य मुख्य रूप से उसके व्यक्तियों के जीवन दर्शन पर आधारित होते हैं। समाज की संरचना उसकी सभ्यता तथा धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति का भी शिक्षा के उद्देश्यों का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा को प्रत्येक युग के प्रभाव को भी स्वीकार करना पड़ता है। साथ ही मनुष्य के स्वयं की प्रकृति भी शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करती है। **डी० के० व्हीलर** ने आधुनिकतम स्थिति और दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के कुछ महत्वपूर्ण मानदण्ड प्रस्तावित किये हैं। जो निम्नवत हैं।-

i. मानवीय अधिकारों से तदात्स्य (Related with Human Right)
ii. लोकतान्त्रिक दृष्टि से अनुकूलित (Democratic view)
iii. सामाजिक दृष्टि से सार्थक (Social Significance)

iv. वैयक्तिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रवृत्त (Inted to satisfy individual needs)
v. संतुलन (Balance)

1.4.6 आधुनिक भारत की शैक्षिक आवश्यकताएँ- प्रत्येक समुदाय, समाज और राष्ट्र की अपनी–अपनी आवश्यकताएँ होती हैं तथा उनकी पूर्ती के लिए वह उनके अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करता है। आधुनिक लोकतान्त्रिक भारत की भी अपनी विशिष्ट आवश्यकताएँ हैं। भारतीय शिक्षाविदों और पाठ्यक्रम आयोजकों को इन आवश्यकताओं को जानना और समझना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि आवश्यकताओं के सन्दर्भ में ही शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। वर्तमान भारत की शैक्षिक आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं।

i. शिक्षा द्वारा चारित्रिक विकास करने की आवश्यकता जिससे ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और मेहनती नागरिक तैयार हो सकें।
ii. नागरिकों में उन प्रवृत्तियों को समाप्त करने की आवश्यकता जो राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता तथा लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के विकास में बाधक हैं।
iii. वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं चिंतन के विकास की आवश्यकता जिससे देश, विश्व की अग्रिम पंक्ति में खड़ा हो सके।
iv. नागरिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि, उत्पादन क्षमता का विकास एवं प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग के दृष्टिकोण का विकास भी आवश्यक है जिससे भारत साधन-सम्पन्न राष्ट्र बन सके।
v. भारतीय नागरिकों के स्वास्थ्य सुधार की आवश्यकता जिससे अंतर्राष्ट्रीय खेल में युवक अच्छा प्रदर्शन कर सकें।
vi. भारतीय संस्कृत के संरक्षण, परिमार्जन एवं संवर्धन की आवश्यकता जिससे भारत अपनी प्राचीन गौरवशाली संस्कृति को पुनः स्थापित कर सके।
vii. आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता जिससे अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता एवं भाग्यवादिता से मुक्ति मिल सके।
viii. शिक्षा द्वारा स्वयं के परिमार्जन की आवश्यकता जिससे मानवीय दृ ष्टिकोण के साथ-साथ सामजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हो सके।

1.4 अधिगम अनुभवों का चयन

शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात प्रमुख कार्य इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधनों को ढूढना तथा उनको प्रस्तुत करना है, अधिगम की क्रिया उस समय प्रारम्भ होती है जब छात्रों को कुछ अनुभव प्राप्त हो जाते हैं। अनुभव तभी प्राप्त होता है जब छात्र किसी परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। अधिगम–अनुभव शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है।औपचारिक शिक्षा के अंतर्गत अनुभवों के

प्रस्तुतीकरण से बालकों के व्यव्हार में अपेक्षित परिवर्तन लाने के व्यवस्थित प्रयास किये जाते हैं । विद्यालय में बालक शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते हैं ।वह विद्यालय में विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं और इन अनुभवों से उनके ज्ञान में वृद्धि, सोचने के ढंग में परिवर्तन, कार्य करने की शैली में परिवर्तन होना तथा उसकी संवेदनशीलता तथा अभिवृत्ति का विकास होता है । बालक के इस व्यव्हार परिवर्तन में ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष सम्मिलित हैं ।

1.5.1 अधिगम अनुभवों का सृजन- अधिगम अनुभवों के सृजन से बालकों को उपलब्धियों द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है । अधिगम अनुभवों को शैक्षिक उद्देश्यों तथा पाठ्य-वस्तु द्वारा नियंत्रित किया जाता है । शिक्षण अधिगम अनुभवों द्वारा अधिक प्रभावशाली होता है ।

डीवी के अनुसार- "शिक्षक का परम कर्तव्य यह है कि बालकों को सीखने की क्रियाओं के लिए समुचित प्रेरणा और प्रोत्साहन दें तथा उपयुक्त वातावरण एवं अवसर प्रदान करें, जिससे छात्रों को अधिक से अधिक सोदेश्य क्रियाओं को सम्पादित करने का अवसर मिल सके ।"

अधिगम अनुभवों का सृजन उपलब्ध साधनों के अनुसार ही किया जाना चाहिए उदहारण के लिए 'बनारस' के सम्बन्ध में शिक्षण हेतु बनारस और आस-पास के अध्यापक स्थानीय यात्रा का आयोजन कर सकते हैं, जबकि दक्षिण भारत के विद्यालयी शिक्षक, इसके लिए चित्र माँडल आदि का प्रयोग कर सकते हैं । शिक्षक को मूल्यांकन उपागम में पाठ्य-वस्तु को छात्रों के स्तर एवं आवश्यकताओं के अनुसार प्रस्तुत करना होता है। प्रस्तुतीकरण में अधिगम-अनुभवों के विभिन्न सीखने के बिंदु निश्चित किये जाते हैं । उनकी सहायता से अधिगम की ऐसी परिस्थियाँ प्रदान की जाती हैं, जिससे बालकों की क्षमताओं का विकास तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके ।

1.5.2 अधिगम-अनुभवों के चयन के मानदण्ड- प्रमुख विद्वान बर्टन ने कुछ मानदण्ड प्रस्तुत किये हैं । बर्टन ने अधिगम- अनुभवों की छः शर्तों का विवेचन किया है ।

i. वह विद्यार्थियों की दृष्टि से उद्देश्य प्राप्ति के प्रयुक्त किये जाने योग्य हो ।
ii. शिक्षकों की दृष्टि में वह वांछनीय सामाजिक उद्देश्यों की ओर ले जाने वाला हो ।
iii. वह वर्ग के परिपक्वता स्तर के लिए उपयुक्त हो अर्थात वर्ग के लिए चुनौतीपूर्ण, प्राप्य तथा नवीन अभिप्राय की ओर ले जाने वाला हो ।
iv. अधिगम-अनुभवों में विद्यार्थियों के संतुलित विकास के लिए विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक तथा वर्गगत क्रियाओं का समावेश हो ।
v. उसका आयोजन विद्यालय तथा समाज में उपलब्ध साधन-सुविधाओं के द्वारा किया जाना संभव हो ।
vi. अधिगम-अनुभवों में व्यक्तिगत भिन्नताओं की दृष्टि से इतनी विविधता हो की वर्ग के सभी सदस्यों को उपयुक्त प्रवृत्तियां सुलभ हो सकें ।

1.6 विषय-वस्तु का चयन

शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण एवं अधिगम-अनुभवों के चयन के बाद इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त विषयों या विषय-वस्तु का चयन करना आवश्यक है।

विषय-वस्तु के चयन के अंतर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

i. विषय-वस्तु के विभिन्न स्रोतों का ज्ञान प्राप्त करना।
ii. विषय-वस्तु का आधार निश्चित करना।
iii. विषय-वस्तु के चयन की प्रमुख समस्याओं का ज्ञान एवं उनके समाधान का प्रयास।
iv. विषय-वस्तु चयन का मानदण्ड निर्धारित करना।
v. विषय-वस्तु चयन प्रक्रिया के प्रमुख पदों का ज्ञान।

1.6.1 विषय-वस्तु के स्रोत

शिक्षा से सम्बन्धित तीन प्रमुख पक्ष हैं, समाज, व्यक्ति तथा सांस्कृतिक विरासत। यही तीन पक्ष पाठ्यक्रम के प्रमुख आधार भी हैं जिन्हें हम सुविधा की दृष्टि से दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक आधारों में विभक्त कर लेते हैं। अतः जो पक्ष पाठ्यक्रम को आधार प्रदान करते हैं उन्ही में पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु के मूल स्रोत छिपे रहते हैं। विषय-वस्तु के मूल स्रोत इस प्रकार हैं।

i. पोषित मूल्य।
ii. आवश्यकताएं।
iii. समाज का वर्तमान एवं सम्भावित भावी स्वरुप।
iv. शिक्षार्थी की प्रकृति।
v. लोकतान्त्रिक नागरिकता की भावी आवश्यकताओं के रूप में प्रौढ़ क्रियाएँ।
vi. जनमत।
vii. मानवीय ज्ञान का बढ़ता हुआ भंडार।
viii. विषय अथवा अनुशासन की प्रकृति एवं स्वरुप।

1.6.2 विषय-वस्तु चयन के मूल आधार

चयन की अन्य सामान्य स्थितियों की तरह ही पाठ्यक्रम के लिए विषय-वस्तु चयन में भी प्रायः उपयोगिता और सार्थकता के आधार पर ही किया जाता रहा है परन्तु इस सम्बन्ध में विशेष जागरूकता एवं निरंतरता बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आयी है तथा इस दिशा में विधिवत प्रयास अपेक्षाकृत आधुनिक प्रवृत्ति है। शिक्षा का उद्देश्य केवल पाठ्यक्रम के विषय-वस्तु का ही नहीं बल्कि शिक्षण विधियों, विद्यालयों के स्वरुप तथा शिक्षा की मात्रा का भी निर्धारण करता है। वर्तमान शताब्दी के उत्तरार्द्ध का समाज यह अनुभव करता है कि प्रभावी रूप से काम करने के लिए उसके नागरिकों को ऐसी

शिक्षा मिलनी चाहिए जो ज्ञान, कौशल, सृजनात्मकता तथा नैतिक गुणों का अधिक से अधिक विकास कर सके। पाठ्यक्रम को शैक्षिक विषयों के अनुरूप समायोजित करने के स्थान पर विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुसार समायोजित किया जाना चाहिए।

1.7 पाठ्यक्रम का संगठन

एच० एन० गाइल्स के अनुसार- "पाठ्यक्रम आकल्पन जिसे कभी-कभी पाठ्यक्रम संगठन भी कहा जाता है। शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण, शिक्षार्थी की प्रकृति का अध्ययन आदि की उपयोगिता पाठ्यक्रम के संगठन के कार्य के तैयारी के रूप में होती है।

सेलर एवं एलेक्क्जेंडर के अनुसार- "पाठ्यक्रम प्रकल्प वह ढांचा या संरचना है जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों के चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है।"

1.7.1 पाठ्यक्रम संगठन के प्रकार

पाठ्यक्रम का संगठन भिन्न- भिन्न दृष्टिकोणों से किया जाता है। विभिन्न दृष्टिकोण के कारण ही विद्वानों ने पाठ्यक्रम के अनेक प्रतिमान विकसित किये हैं। प्रतिमानों एवं दृष्टिकोणों के आधार पर पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं।

i. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम
ii. परंपरागत पाठ्यक्रम
iii. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम
iv. क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम
v. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम
vi. जीवन की स्थायी स्थितियों पर आधारित पाठ्यक्रम
vii. सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम
viii. आवश्यकता विकास पाठ्यक्रम
ix. मिश्रित पाठ्यक्रम
x. व्यवसाय केन्द्रित पाठ्यक्रम
xi. शिल्प-कला केन्द्रित पाठ्यक्रम
xii. समन्वित सामान्य पाठ्यक्रम
xiii. एकीकृत पाठ्यक्रम
xiv. पूर्णतया मुक्त पाठ्यक्रम
xv. समस्या आधारित पाठ्यक्रम

xvi. जीवन समायोजन पाठ्यक्रम

1.8 सामग्री का चयन

पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। पाठ्यक्रम निर्माण के उपरान्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि निर्धारित पाठ्यक्रम को शिक्षार्थियों तक कैसे पहुँचाया जाये तथा उसके लिए इसे कैसे ग्रहण करने योग्य बनाया जाये। इसके लिए अनुदेशनात्मक सामग्री का निर्माण एवं प्रयोग महत्वपूर्ण है। अनुदेशनात्मक सामग्री के आभाव में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती।

1. **अनुदेशानात्मक सामग्री-** प्राचीन समय में अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में केवल कंठस्थ ज्ञान का ही उपयोग किया जाता था, किन्तु कालांतर में केवल मौखिक शिक्षण अपूर्ण सिद्ध हो गया है। शिक्षण-अधिगम की सफलता के लिए परंपरागत अनुदेशन सामग्री के साथ-साथ अन्य कई प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जा रहा है। वर्तमान की प्रचलित अनुदेशानात्मक सामग्री निम्न है।
    a. पाठ्य-पुस्तकें (Text books)
    b. पाठ्यक्रम संदर्शिकाएं (Curriculum guides)
    c. समृद्धकारी सामग्री –अनुपूरक पुस्तकें(Enrich material-Supplementary)
    d. श्रव्य-द्रश्य सामग्री (Audio-visual aids)
    e. अभिक्रमित - सामग्री (Programmed material)
2. **पाठ्य पुस्तकें-** अनुदेशन सामग्री के रूप में सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली सामग्री पाठ्य–पुस्तकें ही हैं। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में पाठ्य–पुस्तकों का महत्व सर्वविदित है। पुस्तकों के माध्यम से अतीत के ज्ञान तथा अनुभवों को संचित किया जाता है, जिससे आने वाली पीढ़ी उनका उपयोग करके लाभान्वित हो सके।
3. **पाठ्य-पुस्तक का अर्थ**– किसी विषय के ज्ञान को जब एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पाठ्य–पुस्तक की संज्ञा प्रदान की जाती है।

हेरोलिकर के अनुसार– "पाठ्य–पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण योग है।''

पाठ्य–पुस्तकों के प्रकार- पाठ्य-पुस्तकों को तीन भागों में बाँट सकते है।

i. **सामान्य पाठ्य- पुस्तकें-** ये पुस्तकें किसी विषय–विशेष पर सामान्य अध्ययन की दृष्टि से लिखी जाती हैं। इनमें किसी निर्धारित पाठ्यक्रम को आधार नहीं बनाया जाता है तथा प्रकरणों को विषय–सामग्री की उपलब्धता एवं उपयोगिता की दृष्टि से विस्तार प्रदान किया जाता है।

ii. **पाठ्यक्रम पर आधारित पाठ्य-पुस्तकें-** इस प्रकार की पाठ्य–पुस्तकें किसी निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर किसी निश्चित कक्षा स्तर के लिए लिखी गयी होती है। इन पुस्तकों का विस्तार क्षेत्र सीमित होता है। लेकिन ये विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी होती है। क्योंकि ये पाठ्यक्रम से सीधे जुड़ी होती है।

iii. **सन्दर्भ- पुस्तकें-** ये विशिष्ट प्रकार की पुस्तकें होती है तथा इनमें विस्तृत ज्ञान का समावेश होता है। इनमें तथ्यों, प्रत्ययों, सूत्रों, घटनाओं आदि की व्याख्या गहनता से की जाती है। शिक्षक इनका प्रयोग सन्दर्भों के रूप में करता है। उच्च कक्षाओं के शिक्षण में इन पुस्तकों का अध्ययन एवं प्रयोग उपयुक्त होता है।

4. **श्रव्य–दृश्य सामग्री-** शिक्षा अनुभवों का परिणाम है। बालक ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सीखना प्रारम्भ करता हैं। देखने, सुनने, स्पर्श करने, चखने तथा सुनने से बालक को प्रत्यक्ष अनुभव होता है। प्रत्यक्ष अनुभव में सीखने के अनुभव अधिक स्थायी होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव बालकों की मानसिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव डालते हैं। श्रव्य–दृश्य शिक्षण सामग्री के द्वारा विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि विद्यार्थियों श्रव्य–दृश्य शिक्षण सामग्री के जितने अधिक अनुभव प्राप्त किये जायेंगे उतना ही अधिक उनकी क्षमताओं एवं नवीन विचारों का विकास हो सकेगा।

श्रव्य–दृश्य सामग्री का महत्व-

i. श्रव्य–दृश्य सामग्री की सहायता से कठिन प्रत्ययों एवं तथ्यों को सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है।
ii. इनकी सहायता से अमूर्त अवधारणाओं को मूर्त रूप प्रदान किया जा सकता है।
iii. इनकी सहायता से विद्यार्थिओं का ध्यान एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सकता है।
iv. इनके प्रयोग से छात्र ज्ञान के सैधान्तिक पक्ष के साथ –साथ व्यावहारिक पक्ष से भी परिचित हो जाते हैं।
v. इनके प्रयोग से विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति का विकास होता है।
vi. इनके प्रयोग से शिक्षण समय की बचत होती है।
vii. इनके प्रयोग से सीखी हुई बातों को अधिक समय तक स्मरण रख सकते हैं।
viii. इनके प्रयोग से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को करने के अवसर प्राप्त होते हैं।

श्रव्य–दृश्य सामग्री के प्रकार– श्रव्य–दृश्य साधनों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

i. श्रव्य साधन– रेडियो, टेपरिकार्डर, ग्रामोफोन आदि।
ii. दृश्य साधन- श्यामपट्ट, सूचनापट्ट, वास्तविक पदार्ध, चित्र, मा नचित्र, पोस्टर, ग्राफ, माँडल, प्रोजेक्टर, ध्वनिरहित फ़िल्म (चलाचित्र) आदि।
iii. श्रव्य–दृश्य साधन– ध्वनियुक्त चलचित्र, दूरदर्शन, वीडियो, सीडी प्लेयर आदि।

iv. विविध साधन- भ्रमण, प्रदर्शनी, संग्रहालय, नाटकीय क्रियाएं आदि। शिक्षण को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए श्रव्य–दृश्य साधनों का प्रयोग आवश्यक है।

5. **अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री (programmed material for Instruction)-** अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण की एक ऐसी पद्धति है जिससे छात्र अपनी गति से सीखता है। इसमे छात्रों को अधिगम के लिए पाठ्य–वस्तु को क्रमबद्ध रूप में छोटे–छोटे पदों में प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक पद को पढ़ने के साथ ही छात्र को अनुक्रिया करनी होती है, तथा अधिगम परिणाम की जाच भी स्वयं ही करता है। सही अनुक्रिया के फलस्वरूप छात्र को पुनर्बलन प्राप्त होता है एवं वह अपने सीखने के गति के अनुसार आगे बढ़ता है।

अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री का निर्माण- अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री के निर्माण में निम्नलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है।

i. इकाई अथवा प्रकरण का चयन।
ii. उददेश्यों का निर्धारण एवं उन्हें व्यावहारिक रूप में लिखना।
iii. पाठ्य–वस्तु विश्लेषण एवं अनुदेशन क्रम का निर्धारण।
iv. मानदण्ड परीक्षा का निर्माण।
v. समुचित अनुदेशन प्रारूप का निर्धारण।
vi. अभिक्रम के पदों को लिखना।
vii. अभिक्रम का अन्तिम रूप तैयार करना।
viii. अभिक्रमित सामग्री का मूल्यांकन।

1.9 गतिविधियों या क्रिया-कलापों का विकास

शिक्षा में अनेक विधियों खेल विधि का अपना महत्व है। बच्चा खेल-खेल ये बहुत जल्दी सीखता है। खेल से शिक्षा देने की बात मांटेसरी, किंडरगार्टन, डाल्टन यो जना, प्रोजेक्ट मेथड एवम बेसिक शिक्षा से की गई है। खेल द्वारा शिक्षण रुचिकर एवं स्थायी होता है। खेल की भावना को नाटक में प्रस्तुत किया जा सकता है। वाद-विवाद, सामूहिक चर्चा, लिखना, पढ़ना सभी में खेल की भावना को प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालकों से विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों को भी करवाया जाना चाहिए जिससे सर्जनात्मक क्षमता का विकास होता है। नाटकों का मंचन, भाषण-प्रतियोगिता, वाद-विवाद, विभिन्न खेलो का आयोजन तथा लेखन प्रतियोगिताओं से विद्यार्थियों में विकास की गति तेज हो जाती है। उन्हें जिम्मेदारी सौपना भी एक तरीका हो जो उनमें विचार की प्रक्रिया तीव्र कर सकता है।

1.10 पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) ने स्पष्ट किया था कि उस समय की पाठ्यचर्या बहुत 'संकीर्ण', किताबी एवं सैधान्तिक'' थी जिसमे पाठ्यक्रम का बोझ था और अनुपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें थी। आयोग ने यह सुझाव दिया था कि पाठ्यचर्या को बहुत निश्चित सीमा वाले विषयों में नहीं बाँटना चाहिए, बल्कि विषयों में आपस में जुड़ाव हो, प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण विषय-वस्तु हो ताकि वह विद्यार्थियों के जीवन को छू पाए। आयोग ने कहा कि प्रत्येक कि राज्य में एक शक्तिशाली समिति का गठन हो पाठ्य-पुस्तकों का चयन करे एवं उपयुक्त आधार बनाए।

आयोग ने बल देकर कहा कि – ''किसी भी अध्ययनीय विषय के लिए कोई एक पाठ्य-पुस्तक निर्देशित नहीं होनी चाहिए, बलिक मानकों पर खरी, सोची-समझी, परखी हुई पाठ्य-पुस्तकों के सुझाव विद्यालयों को दे दिये जाएँ जिसमें से वे जो विकल्प चाहे चुन लें।'' शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी विद्यालयी शिक्षा की खराब गुणवत्ता पर प्रकाश डाला। आयोग ने कहा कि पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी एवं निर्माण में शोध के अभाव के कारण पाठ्य-पुस्तकें निम्न कोटि की हो जाती है। इसका एक कारण उच्च श्रेणी के विद्वानों की अरुचि भी है।

पाठ्य-पुस्तक के निर्माण का प्रमुख पक्ष विद्यार्थियों को उसके सामाजिक कर्तव्य तथा अधिकारों से अवगत कराना है साथ ही प्रेम सदभाव तथा राष्ट्रीय विकासात्मक संस्कृति से परिचित कराता है।

1.11 पाठ्य-पुस्तक निर्माण के सिद्धान्त

वर्तमान सर्वागीण विकास हेतु विद्यालय संचालित किये जा रहे हैं। जहाँ उन्हें निशिचत समय में निश्चित विषय-वस्तु का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

पाठयक्रम का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सामाजिक आवश्यकताओं, प्रचलित मूल्यों एवं समय की माँग को पूरा करने वाला हो। बालकों का सर्वागीण विकास भी तभी सम्भव हो सकता है। जब पाठयक्रम उनमें उपयुक्त जीवन कौशलों को विकसित करने में सहायता करे।पाठ्य-वस्तु निर्माण के कुछ प्रमुख सिधान्तों का विवेचन निम्नवत है।

i. बाल केन्द्रित शिक्षा का सिद्धान्त
ii. लचीलेपन का सिद्धान्त
iii. संस्कृति का सिद्धान्त
iv. सृजनात्मकता का सिद्धान्त
v. उपयोगिता का सिद्धान्त
vi. नैतिकता का सिद्धान्त
vii. राष्ट्रीयता की भावना के विकास का सिद्धान्त
viii. अंतर्राष्ट्रीय सदभावना का सिद्धान्त
ix. क्रिया का सिद्धान्त

x. जीवन से संबद्धता का सिद्धान्त
xi. रुचि का सिद्धान्त
xii. अभिप्रेरणा का सिद्धान्त
xiii. प्रजातांत्रिक धारणा का सिद्धान्त
xiv. अवकाश के समय के सदुपयोग का सिद्धान्त

अभ्यास प्रश्न

1. पोषित मूल्य _____का स्रोत है।
2. सरल से जटिल की ओर एक_____है।
3. समाज, व्यक्ति और ज्ञान उद्देश्यों के निर्धारण में_____हैं।
4. टेपरिकार्डर _____साधन है।
5. पाठ्य-पुस्तकों के _____प्रकार हैं।
6. उद्देश्य _____प्रकार हैं।
7. पाठ्य-वस्तु का सम्बन्ध केवल _____पक्ष से होता है।
8. कुर्रेर शब्द का अर्थ _____है।

1.12 सारांश

शिक्षा की त्रिधुवी प्रक्रिया में पाठयक्रम एक ध्रुव है। एक अच्छे पाठयक्रम के अभाव में बालक के सर्वागीण विकास की कल्पना नहीं कर सकते। शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के पाठयक्रम का निर्माण करना चाहिए कि विदायर्थी को जीवन यापन में कम से कम कठिनाई हो तथा समाज को उन्नत दशा प्रदान कर सके।

पाठयक्रम ऐसा हो जो आधुनिक समाज से जुड़कर भावी पथ का निर्माण करे। विकसित हो रहे राष्ट्र में मानवीय मूल्यों, चरित्र तथा जीवन यापन के संसाधनों का विकास कर सके। हम सैधान्तिक बातों पर बहुत बल देते हैं किन्तु हमारा व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त कमजोर है। समाज निरन्तर गतिमान है। सामाजिक परिवर्तन हमारे समस्त क्रिया-कलापों में परिवर्तन करते हैं। इसलिए बदलते समाज के अनुरूप पाठ्यक्रम में बदलाव करते रहना चाहिए जिससे समाज और व्यक्ति में अधिक दूरी न बन जाये और एक समाज दूसरे समाज से निम्न स्तर का आंका जाय। पाठ्य-पुस्तकों को वातावरण के अन्य लोगों एवं सहपाठियों के साथ अंत:क्रिया करवाने वाली होनी चाहिए। वह एक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करे। जिससे बच्चा सक्रिय रूप से पाठ, विचारो, वस्तुओं, वातावरण और लोगों से अपने को जोड़ते हुए अपनी समझ का निर्माण कर सके।

1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विषय-वस्तु
2. शिक्षण सूत्र
3. स्रोत
4. श्रव्य
5. तीन
6. दो
7. ज्ञानात्मक
8. दौड़ का मैदान

1.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चोपड़ा, रविकांता व व्यास आनन्द प्रकाश (१९९८). मातृभाषा हिन्दी शिक्षण. दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद।
2. सिंह, सावित्री (2007). हिन्दी शिक्षण. मेरठ: इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र (२००८). पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें, दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद।
4. शर्मा, खेमराज व शर्मा, ब्रजराज (२०११). हिन्दी शिक्षण. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन।
5. पाण्डेय, रामशकल (२०१४). हिन्दी शिक्षण. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
6. लाल, रामन बिहारी (२०१७). हिन्दी शिक्षण, हिन्दी शिक्षण विज्ञान. मेरठ: आर० लाल बुक डिपो।

1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठयक्रम के अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. पाठयक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य-वस्तु में अन्तर बताइये।
3. शौक्षिक उददेश्यों के निर्धारण की आवश्यकता क्यों होती है ?
4. आधुनिक भारत की शौक्षिक आवश्यकता क्या है ?
5. श्रव्य-दृश्य सामग्री की उपयोगीता एवं महत्व का स्पष्ट करे।
6. अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री का वर्णन करें।
7. पाठ्य-पुस्तक निर्माण के सिद्धान्त का उल्लेख करें।

इकाई 2- हिंदी शिक्षण की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यपुस्तकों का अर्थ
2.4 हिंदी -शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों का महत्त्व
2.5 पाठ्यपुस्तकों के प्रकार
2.6 पाठ्यपुस्तकों के गुण
2.6.1 बाह्य-गुण
2.6.2 आन्तरिक गुण
2.7 पाठ्यपुस्तकों के दोष
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल में लिपि के आविष्कार से पूर्व भाषा की शिक्षा मौखिक रुप से दी जाती थी। लिपि का आविष्कार हो जाने पर हस्तलिखित पांडुलिपियों का प्रयोग होने लगा। किंतु हाथ से लिखकर ग्रंथ तैयार करने में बड़ा परिश्रम होता था। अतः पाठ्य पुस्तकों का प्रचलन उस रूप में नहीं हो पाया जिस रूप में आज है। पांडुलिपियां कम हुआ करती थी, अतः शिक्षक मौखिक रूप से पढ़ाता था और छात्र उस सामग्री को याद कर लेते थे। मुद्रण कला के अविष्कार ने पाठ्यपुस्तकों को सुलभ बना दिया और धीरे-धीरे पाठ्य पुस्तकें संपूर्ण शिक्षा प्रणाली का आधार बन गयी। अर्वाचीन शिक्षा पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। आधुनिक युग में ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी के अत्यधिक विकास के कारण मौखिक शिक्षा देना दुष्कर ही नहीं असंभव कार्य है यदि यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भाषा की पुस्तके तो साधन साध्य दोनों रूपों में प्रयोग की जाती हैं। बच्चों को उनके उच्चारण को शुद्ध करने, पठन कला में निपुण करने, उनकी बोध एवं कल्पना शक्ति का विकास करने, उनकी रचनात्मक वृति को सचेष्ट करने और उन्हें विविध विषयों का ज्ञान करा कर उनका चरित्र निर्माण करने हेतु पुस्तकों का प्रयोग किया जाता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. पाठ्यपुस्तक का अर्थ समझ पाएंगे।
2. हिंदी शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों का महत्त्व समझ पाएँगे।
3. पाठ्यपुस्तक के विभिन्न प्रकार से परिचित हो पाएँगे।
4. उनमें पाठ्यपुस्तकों की विशेषताओं को पहचानने की क्षमता उत्पन्न होगी।
5. पाठ्यपुस्तक के गुण एवं दोष से अवगत हो पाएँगे।

2.3 पाठ्य पुस्तकों का अर्थ

प्राचीन भारत में पाठ्य पुस्तक के लिए 'ग्रंथ' शब्द का प्रचलन था। ग्रंथ का अर्थ है-'गूंथना' , बांधना, क्रम से रखना, नियमित ढंग से जोड़ना आदि। गुरुकुलों में आचार्य लोग भोजपत्र या ताड़पत्र को अपने विद्यार्थियों के समक्ष क्रम से रखते थे। उनके बीच में छेद करके किसी धागे से गूँथ भी देते थे,अतः इन्हें 'ग्रन्थ' नाम दिया गया किन्तु हाथ से लिखकर ग्रन्थ तैयार करने में बड़ा श्रम होता था ,अतः पाठ्य-पुस्तकों का प्रचलन उस रूप में नहीं हो पाया जिस रूप में वह आज है। इसी प्रकार अंग्रेजी में 'Book' शब्द की उत्पत्ति जर्मन भाषा के 'वीक Beach' शब्द से हुई है। फ्रांसीसी भाषा में भी इसका अर्थ वृक्ष की छाल या तख्ती पर लिखने से है।

प्राचीन काल में पांडुलिपियाँ कम हुआ करती थी ,अतः अध्यापक मौखिक रूप में पढ़ा देता था और छात्र उस सामग्री को याद कर लिया करते थे। मुद्रण कला के आविष्कार ने पाठ्य-पुस्तकों की रचना को सुलभ बना दिया और धीरे-धीरे पाठ्य-पुस्तक शिक्षा प्रणाली का अनिवार्य अंग बन गयी।

चूँकि हर पुस्तक को पाठ्य-पुस्तक की संज्ञा नहीं दे सकते इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्वान गुड ने परिभाषा दी है –"एक निश्चित पाठ्यक्रम के अध्ययन के प्रमुख साधन के रूप में एक निश्चित शैक्षिक स्तर पर प्रयुक्त करने के लिए किसी खास विषय पर लिखी व्यवस्थित पुस्तक पाठ्य-पुस्तक कहलाती है।"

अभ्यास प्रश्न

1. ग्रन्थ का शाब्दिक अर्थ बताएँ। यह शब्द आदिकाल में पुस्तकों के लिए क्यों प्रचलित हुआ ?

2.4 हिंदी शिक्षण में मातृभाषा का महत्त्व

पाठ्य-पुस्तकें शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में साधन रूप में प्रयुक्त होती हैं। पाठ्यपुस्तकों को साध्य मान लेने से इनको रटना एवं संपूर्ण सब शिक्षा को किताबी बना देना महत्वपूर्ण हो जाता है । यहां पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य रटना नहीं है। पाठ्य पुस्तकों के उद्देश्य बिंदु रूप में निम्नलिखित हैं-

- छात्रों की काल्पनिक शक्ति को विकसित करना।
- विषय-विविधिता के बारे में ज्ञान कराना।
- स्वाध्याय के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
- पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना।
- ज्ञान को व्यवहारिक रूप देने की प्रेरणा प्रदान करना।
- सत्य-असत्य का विवेक कराना।
- शुभ-अशुभ का ज्ञान कराना।
- उनमें स्वाध्याय की रूचि उत्पन्न करना।

संक्षेप में पाठ्य-पुस्तकों का उद्देश्य भाषा के सांस्कृतिक लक्ष्यों को पूरा करना है।

पाठ्य पुस्तकों की उपयोगिता

पुस्तकों की निम्नलिखित आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं :

- पाठ्य पुस्तकें शिक्षा का मार्गदर्शन करती हैं।
- पुस्तकें ज्ञान प्राप्ति का सशक्त साधन है। पुस्तकों के सहारे व्यक्ति बिना गुरु के भी अपना ज्ञान अर्जित कर सकता है।
- पुस्तके अनेक सूचनाओं का संग्रह हैं, ज्ञान प्राप्ति के लिए पुस्तक सर्व सुलभ एवं मितव्ययी साधन है।
- पुस्तकें अर्जित ज्ञान का स्थायीकरण हैं। पुस्तक के मौलिक चिंतन की सशक्त पृष्ठभूमि तैयार करती है।
- पुस्तकों से छात्रों में स्वाध्याय की भावना जागृत होती है, उच्च कक्षाओं के लिए पुस्तकें अनिवार्य हैं। छात्र और शिक्षक दोनों को ही पुस्तकों के माध्यम से पाठ का ज्ञान रहता है।
- पुस्तकें ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन करती हैं।

भारतीय शिक्षण व्यवस्था में पाठ्यपुस्तक की अहम भूमिका है। पाठ्य-पुस्तक ही वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द कक्षा में होने वाला शिक्षण घूमता है, वह आधार जिस पर परीक्षा ली जाती है व एक ऐसा ज़रिया जिससे राज्य कक्षा में होने वाली शिक्षण प्रक्रिया पर नियंत्रण रखता है, पाठ्यपुस्तक ही है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का जन्म औपनिवेशिक परिस्थितियों में हुआ।-19 वीं सदी की शिक्षाव्यवस्था के - इतिहासमें पाठशालाएँ शिक्षक के द्वारा ही संचालित की जाती थीं। पाठ्यक्रम व पाठ्य सामग्री भी छपी

हुई नहीं थीं। पारम्परिक पाठ्यपुस्तक थी जो प्रायस्थानीय ज़रूरतों की पूर्ति करती थी। एक स्थान में दी : दूसरे स्थान की शिक्षा से कुछ भिन्न व कुछ समान थी। जाने वाली शिक्षा या पाठ्य सामग्री किसी व्याकरण की शिक्षा या भाषा पढ़ाने के तरीके में तो कुछ समानताएँ थीं लेकिन किस प्रकार का गणित पढ़ाया जाएगा, इसको लेकर भिन्नताएँ भी थीं। उस शिक्षाव्यवस्था का रूपान्तर जब आधुनिक शिक्षा - व्यवस्था में हुआ, तो उस क्रम में, पाठ्यपुस्तक के माध्यम से ही एक तरह का नियंत्रण स्थापित हो सका। पाठ्यपुस्तक के माध्यम से ही स्वीकृत ज्ञान सम्प्रेषित हुआ एक ऐसा ज्ञान जो शिक्षक के लिए -बच्चों को देना आवश्यक था। इसके लिए शिक्षक का प्रशिक्षण आरम्भ हुआ। पाठ्यपुस्तक को पढ़ाना व उसके ज़रिए एक प्रकार का मानक स्थापित करना, औपनिवेशिक व्यवस्था में सम्भव हुआ और ये व्यवस्था काफी टिकाऊ सिद्ध हुई। शिक्षक का खुद का बौद्धिक जीवन पहले चाहे कितना भी सीमित रहा हो, उसके शासकीय कर्मचारी बन जाने के बाद और भी संकीर्ण हो गया। अब शिक्षक मानों पाठ्यपुस्तक पढ़ाने के लिए ही नियुक्त होने लगा। इस तरह से पाठ्यपुस्तक की केन्द्रीयता जो 19वीं सदी के उत्तरार्ध में बननी प्रारंभ हुई, वह आज तक स्थिर है।

पाठ्य-पुस्तकों पर इस निर्भरता के अन्य कारणों को हम कतिपय अन्य बिन्दुओं द्वारा समझने का प्रयास करेंगे।

- **मूल्याङ्कन में सहायक**-पाठ्य-पुस्तक के प्रचलन से पूर्व अधिगम किए गए ज्ञान का वस्तुपरक मूल्याङ्कन असंभव था । पाठ्य-पुस्तकें इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करती हैं । शिक्षा में नियामक अभिकरणों के माध्यम से विद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं और स्तरों के लिए समान पाठ्यवस्तु का प्रावधान किया जाता है । जिससे भाषा-शिक्षण मनोवैज्ञानिक रूप से संतुलित,उपयोगी और वस्तुपरक हो जाता है । इससे पाठ्यवस्तु के संकलन में मूर्धन्य विद्वानों,कुशल प्रशासकों,शिक्षाविदों और मनोवैज्ञानिकों का योगदान संभव होता है ।
- **शैक्षणिक नियोजन में सहायक**-पाठ्यपुस्तकों द्वारा पाठ्यसामग्री का निर्धारण होने के कारण विद्यार्थी और शिक्षक के लिए शिक्षण-गतिविधियों के नियोजन द्वारा शिक्षण-अवधि का सदुपयोग संभव हो जाता है । शिक्षक और विद्यार्थी दोनों यह जान पाते है कि उन्हें क्या,कितना और किस क्रम से पढ़ना,जानना और अभ्यास करना है । इस उपाय से शिक्षक भाषा-शिक्षण की योजना ,सहायक सामग्री,उपकरणों इत्यादि की व्यवस्था कर सकता है और दूसरी ओर विद्यार्थी भी मन-मस्तिष्क सबसे पाठ्यवस्तु के अध्ययन के लिए तैयार हो जाते हैं । तदनुसार शिक्षक विद्यार्थियों को कक्षा-कार्य और गृहकार्य के माध्यम से उपयोगी शिक्षण गतिविधियों में संलग्न कर सकता है । इस प्रकार विद्यार्थी स्वयं शिक्षण, परियोजना, परीक्षण इत्यादि के माध्यम से भाषा के विविध पक्षों का अभ्यास एवं व्यवहार कर सकता है ।

- **शिक्षण की पूरक के रूप में पाठ्यपुस्तकें-** जो विद्यार्थी किसी शारीरिक या बौद्धिक सीमाओं के चलते कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षण बिंदुओं का अधिगम नहीं कर पाते, वह घर पर अभिभावकों एवं पुस्तक की सहायता से उसका अभ्यास कर सकते हैं। रोग, अवकाश या अन्य किसी व्यस्तता के चलते जो विद्यार्थी किसी शिक्षण बिंदु के शिक्षण के दौरान कक्षा से अनुपस्थित रह जाते हैं वे भी किंचित निर्देशन और पाठ्य पुस्तकों की सहायता से उनका अधिगम अभ्यास कर पाते हैं। यदि कोई विद्यार्थी स्थानांतरण जैसे कारणों से शिक्षण सत्र के आरंभ होने के बाद कक्षा में प्रवेश लेता है, तो वह भी पाठ्य- वस्तु के माध्यम से अन्य विद्यार्थियों द्वारा कक्षा में पठित एवं अभ्यस्त पाठ्यक्रम का अध्ययन कर सकता है।
- **मूल्यांकन के आधार के रूप में**- विद्यालय पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की अपेक्षा भाषा शिक्षण का मूल्यांकन कहीं अधिक जटिल कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है। भाषा की प्रकृति भावनात्मक एवं उन्मुक्त है। उसे सटीक वस्तुपरक मूल्यांकन का विषय बनाना निश्चित पाठ्यपुस्तकों के अभाव में कदाचित असंभव होता। पाठ्यपुस्तकों में संकलित पाठ्यबिंदुओं को आधार बनाकर प्रश्नपत्र का निर्माण करना सरल हो जाता है। पाठ्य पुस्तक के माध्यम से भाषा शिक्षण मूर्त, सुनिश्चित और मानक हो जाता है। इस रूप में उसका मूल्यांकन भी विश्वसनीय और वस्तुगत होता है।

अभ्यास प्रश्न

2. पाठ्यपुस्तकें शारीरिक चुनौती का सामना कर रहे व्यक्ति की सहायता कैसे करती है ?

2.5 पाठ्यपुस्तक के प्रकार

वर्तमान युग में भाषा के विभिन्न पक्षों के शिक्षण को सरल और संभव बनाने के लिए पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाते है। चूँकि पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों को पाठ्यक्रमानुसार और उद्देश्यपूर्ण भाषा ज्ञान उपलब्ध कराने का माध्यम है इसलिए वह शिक्षक के लिए भी उपयोगी मार्गदर्शिका होती हैं। पाठ्यपुस्तक के लक्ष्य,पाठ्यसामग्री के प्रकार और उपयोग विधि के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों को चार श्रेणियों के अंतर्गत रखा जाता है।

i. **पाठ्यपुस्तक-** किसी कक्षा के लिए अनुशंषित भाषा पाठ्यपुस्तक उस स्तर के विद्यार्थियों की भाषायी,ज्ञानात्मक एवं व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होती हैं। उदाहरण के लिए कक्षा 9 की हिंदी पाठ्यपुस्तक में 13 से 15 आयु वर्ग के विद्यार्थियों की भाषा सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार सामग्री का संकलन होता है ।

ज्ञानात्मक,भावनात्मक,विचारात्मक,सूचनात्मक और अभ्यासपरक सामग्री के माध्यम से छात्रों की परीक्षण-मूल्याङ्कन योग्य भाषा-दक्षता की प्राप्ति सुनिश्चित की जाती है । कुशल शिक्षक अपने निर्देशन और मार्गनिर्देश में पाठ्यपुस्तक की सहायता से बालकों के भाषा-पक्ष को सबल करता है।

ii. **पूरक पुस्तक -** पूरक पुस्तकों का स्वरुप पाठ्यपुस्तक की अपेक्षा कम औपचारिक होता है । इसके निर्माण का उद्देश्य विद्यार्थियों में स्वाध्याय ,मौन-पाठ और साहित्यालोचन की प्रवृति का विकास करना है । इसके कारकों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि विद्यार्थी भाषा पर अधिकार के साथ-साथ देश के इतिहास,संस्कृति,परम्पराओं और विविधता के बीच व्याप्त एकता से परिचित हो सकें।

iii. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.इ.आर.टी.) द्वारा उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पूरक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित संक्षिप्त रामायण,संक्षिप्त महाभारत,संक्षिप्त बुद्धचरित और प्रेरणास्पद कहानियों ,जीवनियों एवं एकांकी के अध्ययन से इनके उद्देश्य और प्रकृति को समझा जा सकता है। ये पुस्तकें विद्यार्थियों के ज्ञान के साथ ही चारित्रिक,विचारात्मक और व्यक्तिगत विकास में भी निस्संदेह उपयोगी भूमिका निभा रही हैं।

iv. **अभ्यास-पुस्तिका-** अभ्यास-पुस्तिका का प्रकाशन मुख्य पाठ्यपुस्तक के भाषा तत्वों की पुनरावृत्ति और अभ्यास की दृष्टि से किया जाता है । प्रायः इसका प्रकाशन पाठ्यपुस्तक के रचनाकार अथवा प्रकाशक द्वारा किया जाता है। यह पुस्तिका मुख्यतः पाठ्यपुस्तक में संकलित सामग्री पर आधारित होती है ।अभ्यास-पुस्तिका में पाठ्यपुस्तक के अभ्यास योग्य अंशों की आवृति हेतु विविध प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जाती है। इसके माध्यम से शिक्षक नए भाषा के प्रयोगों और उपयोगी नियम सिद्धांतों की प्राप्ति भी सुनिश्चित करता है। दूसरी ओर इसका उपयोग उपरोक्त भाषा तत्वों के मूल्याङ्कन के लिए भी किया जाता है।

v. **व्याकरण पुस्तक-** व्याकरण भाषा-शिक्षण का अनिवार्य सहचर है। प्राथमिक कक्षाओं में जब विद्यार्थियों को स्वर-व्यंजन वर्णमाला, मात्राओं,वर्तनी,शब्दार्थ और वाक्य-संयोजन जैसे अभ्यास कराए जाते हैं तब वे वस्तुतः व्याकरण का ही अभ्यास कर रहे होते हैं । बाद में समानार्थी,विलोम,अनेकार्थी,पारिभाषिक और समानार्थी शब्दों आदि का ज्ञान और अभ्यास कर रहे होते हैं तब भी वे व्याकरण का ही ज्ञान पाते हैं।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत भाषा के विविध पक्षों का मानक,व्यवहार्य और मूल्याङ्कन योग्य ज्ञान और अभ्यास उपलब्ध कराने की दृष्टि से पृथक व्याकरण पुस्तकों की सहायता प्राप्त की जाती है। मुख्य-पाठ्यपुस्तक और पूरक पुस्तकों के साथ ही उनमें निहित व्याकरण-अभ्यासों का परिपूर्ण ज्ञान और अभ्यास कराने के लिए व्याकरण पुस्तकों की रचना की जाती है। हालाँकि कक्षा तीन से ही व्याकरण की पुस्तकें उपलब्ध हैं किन्तु छठी कक्षा से अलग व्याकरण पुस्तकों का उपयोग किया जाने लगा है।

माध्यमिक कक्षाओं के लिए एन.सी.इ.आर.टी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें 'हिंदी व्याकरण और रचना' उपयोगी पुस्तकें हैं। इनका मुख्य लाभ व्याकरण के पूर्ण,क्रमानुसार और पर्याप्त अभ्यास सहित ज्ञान के रूप में होता है । इन पुस्तकों में भाषा के व्याकरण पक्ष को सामने रखकर पाठ्यसामग्री और अभ्यास उपलब्ध कराए जाते है जिससे कि विद्यार्थी भाषा के वास्तविक रूप से परिचित हो सकें और उन्हें पर्याप्त अभ्यास का अवसर मिले। इस प्रकार व्याकरण की पुस्तकों की सहायता से विद्यार्थियों की भाषा को शुद्ध,नियमित और प्रभावकारी बनाया जा सकता है

vi. **सन्दर्भ पुस्तकें -** सन्दर्भ-पुस्तकों का उपयोग वरिष्ठ कक्षाओं में पाठ्य तथा पूरक पुस्तकों द्वारा प्रदत्त ज्ञान के विस्तार के लिए किया जाता है । विद्यालय के पुस्तकालय में भाषा का इतिहास,साहित्य का इतिहास,विख्यात कवियों और लेखकों की जीवनियाँ एवं रचनावालियाँ , कोष एवं संग्रहों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है जिससे की सह-संबंध की सहायता से विद्यार्थी विषयगत जिज्ञासा की शांति के लिए उपयोगी ज्ञान ,सूचना , आंकड़ों ,विस्तृत विवरणों इत्यादि का संग्रह और उपयोग कर सकें।

एक अन्य विवेचन के अनुसार पुस्तकें दो प्रकार की होती हैं i) सूक्ष्म अध्ययनार्थ पुस्तकें ii) विस्तृत अध्ययनार्थ पुस्तकें

सूक्ष्म अध्ययन वाली पुस्तकों का अध्ययन बड़ी गंभीरता से किया जाना अपेक्षित होता है। इनका उद्देश्य बालकों के शब्द-भंडार में वृद्धि करना,उनका भाषा-ज्ञान बढ़ाना,उनके सूक्ति-भंडार या लोकोक्ति भंडार में वृद्धि करना एवं प्रसंगों को भली-भांति स्पष्ट करना है। इन पुस्तकों को ही साधारणतया पाठ्य-पुस्तकें कहा जाता है। इन्हें गहन-अध्ययन की पुस्तकें भी कहते है। इनके अध्ययन से छात्रों के ज्ञान में वृद्धि होती है और वे लेखक या कवि के विचारों से परिचय प्राप्त करते है।

विस्तृत अध्ययन के लिए सहायक पुस्तकों का प्रयोग द्रुत पाठ हेतु होता है। परिचित शब्दावली का प्रयोग कर यह विद्यार्थियों को द्रुत गति से पढ़ने के लिए अभ्यास कराना इसका उद्देश्य होता है। द्रुत पाठ के साथ-साथ बोध-ग्रहण के कौशल को भी यह विकसित करता है। शब्दार्थ स्पष्ट करना या व्याख्या करना इन पुस्तकों के शिक्षण का उद्देश्य नहीं होता। कहीं-कहीं आवश्यकता पड़ने पर ही शब्दकोष की सहायता लेनी पड़ेगी।

अभ्यास प्रश्न

3. पूरक पुस्तकों के स्वरूप और निर्माण का उद्देश्य क्या होता है ?
4. सन्दर्भ पुस्तकों का उद्देश्य बतायें।

2.6 पाठ्यपुस्तकों के गुण

अच्छे पाठ्यपुस्तकों की कुछ विशेषताएं होती हैं। यही विशेषताएं उसके गुण का निर्धारण करती हैं। पाठ्य पुस्तकों के गुण को हम मुख्य रूप से दो दृष्टियों से देख सकते हैं। इन्हें पाठ्यपुस्तक के गुणों को दो रुप भी कहा जाता है। यह है

- आभ्य-आंतरिक और
- बाह्य गुण

2.6.1 बाह्य-पक्ष

पुस्तकों में चित्रों की संख्या, आकार, रंग और शैली प्राथमिक से माध्यमिक और उच्च कक्षा तक बदलती रहती है। जहां प्राथमिक कक्षाओं में चित्रों की संख्या अधिक, आकार बड़ा, रंग चटकीले और शैली वस्तुपरक होती है वही उच्च कक्षाओं तक आते आते उनका आकार छोटा, संख्या कम, रंग सादे और शैली प्रतीकात्मक होती जाती है। पुस्तक के बाह्य-पक्ष पर ध्यान दिए बिना गुणवत्तापूर्ण पुस्तकें भी महत्त्वहीन हो जाती हैं। पाठ्यपुस्तकों के बाह्य-गुणों का क्रमवार विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

i. **आवरण पृष्ठ -** आवरण पृष्ठ आवरण पृष्ठ किसी भी पाठ्य पुस्तक का विज्ञापन होता है। उसे देखने मात्र से विद्यार्थियों के मन में आकर्षण और जिज्ञासा के भाव उभरने चाहिए। एक आकर्षक और उपयोगी आवरणपृष्ठ में कुछ गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए। इन में प्रमुख हैं :

- **गुणवत्ता** -आवरण-पृष्ठ पुस्तक के अन्य पृष्ठों की अपेक्षा मोटा,मजबूत और चिकना होना चाहिए। ऐसा होना ना केवल पुस्तक की मजबूती और दीर्घजीविता के लिए श्रेयस्कर है अभी तो उसकी दिखावट के लिए भी बेहतर है।
- **पृष्ठों का रंग** -आमतौर पर पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ सफेद रंग के होते हैं। इसलिए उनके आवरण का उपरी और तलीय पृष्ठ का विविधवर्णी और सचित्र होना स्वभावतः आकर्षण उत्पन्न करता है। कुछ रंग चटकीले माने जाते हैं जबकि अन्य मृदु और संजीदा माने जाते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थी चटकीले रंगों को पसंद करते हैं जबकि वरिष्ठ कक्षाओं के विद्यार्थियों को संजीदा रंग ज्यादा भाते हैं। इस वर्गीकरण का उपयोग प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तकों के आवरण पृष्ठों के सृजन में किया जा सकता है।
- **चित्रांकन-** पाठ्य पुस्तकों पर चित्रों का अंकन एक अनिवार्य सा नियम है। किसी भी पुस्तक पर चित्रित छवि से उसमें नीहित सामग्री का आकलन किया जा सकता है। भाषा की पाठ्य पुस्तकों पर भी उनमें संकलित सामग्री, लक्ष्य और स्तर के अनुकूल चित्रांकन होना चाहिए । चित्रों का

चुनाव, क्रम एवं चित्रांकन ऐसा होना चाहिए कि उन्हें देखकर विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक के विषय ,अंतर्वस्तु और अभिप्राय का अनुमान लगा सके। उदाहरण के लिए वर्णों ,अक्षरों लेखन-सामग्री, विख्यात लेखकों एवं कवियों, प्राकृतिक दृश्य अथवा पुस्तक की किसी पाठ से संबंधित चित्रों के अंकन से मुख्यपृष्ठ को आकर्षक और उपयोगी बनाया जा सकता है। यह चित्रांकन अधिकाधिक वास्तविक, उपयोगी, आनुपातिक और रंगीन होना चाहिए ताकि वह विद्यार्थियों के हास्य या उपेक्षा का विषय ना बनें।

- **सूचनात्मक पक्ष** -आवरण पृष्ठ पर पुस्तक का नाम, लेखक का नाम और उद्देश्य -कथन अवश्य मुद्रित होना चाहिए। सामान्यतया सबसे पहले पुस्तक का नाम फिर उद्देश्य कथन और अंत में लेखक का नाम रहता है। आवश्यकतानुसार प्रकाशक का प्रतीक चिन्ह लोगो और नाम भी मुद्रित हो सकता है।

  इन उल्लेखों का आकार,रंग और लेखन-शैली आवरण के रंग और शैली के अनुरूप और आनुपातिक होने चाहिए ताकि वे स्पष्टता से दिखाई दे सकें। इसी प्रकार आधार-पट्टिका पर भी कम से कम पुस्तक और लेखक का नाम और प्रकाशक का लोगो या प्रतीक चिन्ह होना चाहिए।
- **आवरण की सज्जा**-आवरण का तलीय पृष्ठ यद्यपि सूचना और अर्थवत्ता की दृष्टि से कम महत्त्व रखता है। किन्तु मुखपृष्ठ का अंग होने के कारण उस पर ध्यान देना उचित है। उसे खाली छोड़ने की अपेक्षा आर-पार रंगीन पट्टियों या बड़े डिजाइन से सजाना अच्छा रहता है। इस प्रकार आवरण-पृष्ठ केवल पुस्तक का कलेवर ना होकर लेखक या प्रकाशक द्वारा इस विषय में प्रदत्त ध्यान,कलात्मकता और प्रस्तुतिकरण के स्तर को भी दर्शाता है। पाठ के आरंभ में कवि अथवा लेखक का संक्षिप्त परिचय दिया जाना चाहिए। जिसमें उनकी शिक्षा, पृष्ठभूमि और अन्य कृतियों का उल्लेख होना जरूरी है। हो सके तो पाठ के मूल स्रोत अर्थात जिस संकलन या रचना से उसे संकलित किया गया है, उसका उल्लेख भी किया जाए इन उपायों से विद्यार्थियों के लिए पाठों को समझना सरल हो जाता है।

ii. **नाम-** पाठ्यपुस्तक के बाह्य-गुणों में नाम का भी प्रभाव पड़ता है। पुस्तक का नाम सरल, संक्षिप्त, स्पष्ट एवं आकर्षक हो उसे विषय का भी किंचित आभास मिल जाना चाहिए।

iii. **आकार-** पाठ्यपुस्तक में पाठों का आकार बहुत छोटा या बड़ा ना रहे। इस प्रकार संपूर्ण पुस्तक का आकार भी बहुत छोटा रहे ना बड़ा। छोटी कक्षाओं में पृष्ठ संख्या कम रहे किंतु बड़ी कक्षाओं में यह संख्या धीरे धीरे बढ़ती जाए।

iv. **कागज की गुणवत्ता -** कागज बहुत पतला ना हो और ऐसा ना हो जिस की चमक आंखों पर पड़े। यह इतना पुराना भी ना हो कि शीघ्र फट जाए और छात्र को वर्ष में दो बार नई किताब खरीदने पड़े। छोटी कक्षाओं में बड़े आकार के कागज की पाठ्यपुस्तक हो सकती है। पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ साफ मजबूत और उत्तम श्रेणी के होने चाहिए। कागजों की गुणवत्ता ऐसी होनी

चाहिए कि उन पर अक्षरों और चित्रों की छपाई की स्याही ना फैले। अखबारों जैसा पुनर्चक्रित, धुंधला, कमजोर और सोख्ता कागज पाठ्य पुस्तकों के मुद्रण के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। इसी प्रकार के कागज पर मुद्रित पुस्तक न केवल घटिया और पुरानी दिखती हैं बल्कि उनपर शब्द, चित्र और रंग कुछ भी नहीं खिल पाता। ऐसी पुस्तकों को देख कर विद्यार्थी आकर्षित या उत्सुक नहीं होते। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि उच्च प्राथमिक कक्षाओं तक के विद्यार्थी पाठ्य पुस्तकों के कलेवर और रंग रुप से काफी प्रभावित होते हैं। इसीलिए पाठ्य पुस्तकों के पृष्ठों की गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

v. **मुद्रण -** पुस्तक की छपाई शुद्ध होनी चाहिए। अक्षर बहुत छोटे ना हो। प्रारंभिक कक्षाओं में मोटे अक्षरों में छपाई हो और धीरे धीरे ऊपर के कक्षाओं में अच्छे बारीक हो सकते हैं। अभ्यासार्थ दिए प्रश्नों के अक्षर मूल पाठ के अक्षर से भिन्न हो। शीर्षकों के लिए भी अलग टाइम टाइप के अक्षर हों। शब्दों के बीच की दूरी ,एक वाक्य से दुसरे वाक्य की दूरी अनुच्छेद योजना आगे पर भी ध्यान रहे।

vi. **चित्र** - पाठ्य पुस्तकों के चयन में इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि चित्र किसी पुस्तक को सजाने-संवारने का माध्यम ना होकर विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता, आकर्षण ,रुचि और जिज्ञासा की अभिवृद्धि का माध्यम होते हैं। उनके लिए शब्दबिम्ब से ज्यादा महत्व चित्रबिम्ब का होता है। वह चित्र से शब्द और फिर भाव की ओर गमन करते हैं। चित्रों से कथ्य को सजीव और भाव को अनुभव गम्य बनाया जा सकता है। इसलिए उनकी उपयोगिता और युक्तियुक्तता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। चित्रों से विषय स्पष्ट हो जाते हैं। पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि के लिए चित्र होने चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं के पाठ्य पुस्तकों में चित्र अवश्य हो। धीरे धीरे ऊंची कक्षाओं में इन चित्रों की कमी होती जाए और उच्च कक्षाओं में चित्रों के विशेष आवश्यकता नहीं है।

एक अन्य तथ्य पर भी विचार आवश्यक है कि चित्रों की अधिकता से पुस्तक चित्रकथा ना बन जाए अर्थात उसमें चित्रों की भरमार ना हो जिस से विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता को अवसर ही ना मिले। साथ ही चित्रों की ऐसी न्यूनता भी ना हो कि पुस्तक श्वेत पृष्ठों पर व्याप्त काले शब्दों के रेगिस्तान जैसी लगे। अंतिम बात जिसका इस संदर्भ में ध्यान रखा जाना चाहिए वह चित्रांकन का वर्ण संयोजन या रंग व्यवस्था। इस विषय में भी प्रकाशक को व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए रंगों के ज्यादा चटकीले या फीके होने से चित्रों की वास्तविकता और आकर्षण कम हो जाते हैं ऐसी स्थिति में उनके होने का उद्देश्य ही संकट में पड़ जाता है।

vii. **जिल्द-** पाठ्य पुस्तकों के जल्दी मजबूत होनी चाहिए छोटी कक्षाओं में छात्र किताबें बहुत फाड़ते हैं और दुर्भाग्यवश आजकल उन्हीं की जिल्दें सबसे कमजोर होती हैं।

viii. **मूल्य -**पाठ्य पुस्तक का मूल्य उचित होना चाहिए जिससे कि छात्रों से सरलता से खरीद सकें और अभिभावकों पर अधिक पर न पड़े ।

2.6.2 आंतरिक गुण

आभ्यंतरिक पुस्तक के वे भीतरी गुण है जो उसकी भाषा, शैली,पाठ्य- विषय,आदि की दृष्टि से होते हैं और बाह्य गुणों में पुस्तक का आवरण ,मुद्रण और साज-सज्जा आदि आते हैं। दार्शनिक शब्दावली में पाठ्यपुस्तक का बाह्य- पक्ष शरीर है तो आंतरिक पक्ष उसकी आत्मा है। बाह्य पक्ष कितना भी सुंदर, मोहक और सुनियोजित हो किंतु अंतर्पक्ष के सार्थक,सार्थक,सशक्त और उपयोगी न होने तक पुस्तक निष्प्राण ही रहती है। इसलिए पुस्तक में संकलित सामग्री, उसकी भाषा, प्रस्तुतिकरण, शुद्धता और मूलयांकन विधियों का सम्यक अन्वीक्षण किया जाना चाहिए। पुस्तक के आंतरिक पक्ष का क्रम से विवेचन यहां प्रस्तुत है। -

i. **विषय सामग्री**- विषय सामग्री से तात्पर्य है -पुस्तक में संकलित गद्य- पद्यात्मक सामग्री और उनके कवियों अथवा लेखकों का संक्षिप्त परिचय। इस विषय के चयन और प्रस्तुतीकरण के आधार पर पाठ्य पुस्तक की गुणवत्ता निर्भर करती है। परंतु पाठ्य पुस्तक के संकलन में विद्यार्थी के स्तर, आवश्यकताओं और रुचियों के अतिरिक्त कुछ मूलभूत तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिनका उल्लेख किया किया जा रहा है।-

- एक पाठ्य पुस्तक में विषय -सामग्री का चयन पुस्तक के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। मुख्य पुस्तक काउद्देश्य विद्यार्थियों को भाषा के विविध पक्षों से परिचित कराना और उनके ज्ञानात्मक, विचारात्मक और भावात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। इस दृष्टि से मुख्य पाठ्यपुस्तक में साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कहानी, निबंध,आत्मकथा, जीवनी, यात्रा-वृतांत, पत्रादि के साथ खेल, विज्ञान, राजनीति, समाज, कला और दर्शन जैसे विषयों का भी यथेष्ट समन्वय होना चाहिए।
- चयनित सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों में भाषा -व्यवहार की कुशलता के साथ ही कवियों,लेखकों, कृतियों और विधाओं से परिचय भी प्रगाढ़ होना चाहिए ताकि वे भाषा के स्वरूप और उपयोगिता को जान सकें। भाषा की पाठ्य सामग्री विद्यार्थियों को इतिहास और वर्तमान के परिवेश से परिचित कराए तो भाषा शिक्षण बहुत उपयोगी हो सकता है।
- भारतीय संविधान में देश को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के भावों के विकास का लक्ष्य स्थापित किया गया है। यह लक्ष्य नागरिकों में शिक्षा और शिक्षकों के माध्यम से कार्यान्वित होता है। राज्य द्वारा निर्धारित और नियोजित होने के कारण पाठ्यक्रम और पुस्तकों की भूमिका यहाँ अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा की पुस्तकों को इन संवैधानिक मूल्यों को बढ़ावा देने वाला होना चाहिए। इसके लिए हमें विज्ञान कथाओं धर्म के प्रवर्तकों के संबंध में कारी चरित्रों एवं शिक्षाओं का समावेश करना चाहिए। साथ ही भारत की विविधता में एकता, सर्वधर्म-समभाव, एकता और अनुशासन, सहिष्णुता और भाईचारे के भाव को पुष्ट करने वाली सहायक सामग्री का संकलन किया जाना चाहिए। इसके बाद पौराणिक कहानियां या महापुरुषों की गाथाओं द्वारा उदात्त भावों

को प्रस्तुत किया जाता है। इस क्रम का अनुपालन विद्यार्थियों की मानसिकता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

- पाठ्यपुस्तक की सामग्री देश के लक्षण आधुनिकता और मानवता की पोषक और उत्प्रेरक होनी चाहिए। पाठों एवं कविताओं के संकलन से पूर्व उन के माध्यम से युवा-शक्ति की मानसिकता या विचारधारा पर पड़ सकने वाले प्रभाव का आकलन किया जाना चाहिए। इन उपायों को अपनाकर पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के कार्य को सरल बनाया जा सकता है।
- पाठ्य पुस्तकों के लिए सामग्री का चयन करते हुए राष्ट्रीय लक्ष्यों के साथ ही व्यक्तिगत उद्देश्यों को भी सामने रखा जाना चाहिए। ध्यान रहे कि व्यक्ति समाज की इकाई है और समाज राष्ट्र की। शिक्षा यदि व्यक्ति के ज्ञान अनुभव और चरित्र का निर्माण कर सके तो समाज और राष्ट्र की उन्नति सहज ही सुनिश्चित की जा सकती है। इस दृष्टि से पुस्तक में उच्चादर्शों की पोषक कथाओं, घटनाओं, प्रेरक-प्रसंगों, महापुरुषों की गाथाओं इत्यादि का समावेश होना चाहिए।
- पाठ्य पुस्तक के लिए सामग्री चयन करते हुए संतुलन के पक्ष पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। संतुलन का तात्पर्य विविध सामग्रियों के प्रतिनिधित्व, गद्य एवं पद्य और कक्षा या स्तर के अनुरूप सामग्री की मात्रा के अनुपात से है। इस पक्ष पर पाठ्य पुस्तक की उपयोगिता और सार्थकता काफी हद तक निर्भर करती है। इनमें किसी भी पक्ष के आधिक्य या न्यूनता से पाठ्यपुस्तकों परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।
- विभिन्न कक्षाओं के लिए सामग्री-संकलन में पाठ्य पुस्तक की प्रकृति, सरलता यह कठिनाई के साथ ही उसके परिमाण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। तदनुसार कुल संकलित सामग्री का परिमाण इतना होना चाहिए कि व्याकरण और पूरक पुस्तकों के पठन-पाठन और अन्य साहित्यिक गतिविधियों के संचालन के साथ ही एक शिक्षण सत्र के निर्धारित समय अवधि में उनका अध्ययन संपन्न कराया जा सके।
- एक अन्य ध्यातव्य बिंदु पाठों की लंबाई के सन्दर्भ में है। पाठों में यथासंभव इतनी ही पाठ्य-सामग्री होनी चाहिए कि उन्हें अधिकतम एक या दो कालांशों में संपन्न कराया जा सकें। ऐसा करने से पाठ्य पुस्तक के अध्ययन में विद्यार्थियों की रूचि और जिज्ञासा बनी रहती है और संदर्भ को समझने में सरलता होती है।
- **पाठ्य सामग्री की भाषा-** सामग्री के संचय के दौरान इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि संकलित पाठ्य सामग्री की भाषा कक्षा और विद्यार्थियों के अवस्था स्तर के अनुरूप हो। पाठ्यपुस्तक-निर्माण के दौरान समस्त सामग्री का सृजन नहीं अपितु संकलन किया जाता है ।यह सामग्री ऐसे विख्यात लेखकों और कवियों द्वारा सृजित होती है जिनकी भाषा सहज और स्पष्ट और शैली अवसरानुकूल होती है। कुछ विषयों पर कक्षागत आवश्यक्ताओं के चलते पाठ्य-सामग्री का सृजन भी कराया जाता है। ऐसा प्रायः खेल,विज्ञान एवं तकनीक कला,संगीत जैसे सामान्य जनजीवन से संबंधित विषयों के बारे में किया जाता है। इस संदर्भ में विशेषज्ञ और

कलाकारों की सेवाएं लेते हुए उन्हें भी रचना के उद्देश्य एवं स्तर के विषय में सूचना दी जानी चाहिए। इस प्रक्रिया द्वारा प्राप्त लेखों का मूल्याङ्कन उपयुक्त मानकों के अनुसार किया जाना चाहिए।

ii. **सोद्देश्यता**- प्रत्येक पाठ्यपुस्तक की रचना कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। पुस्तक में इन उद्देश्यों को पूरा करने की प्रेरणा विद्यमान होनी चाहिए। भाषा की पाठ्य पुस्तक का उद्देश्य भूगोल और विज्ञान का ज्ञान देना नहीं होता। अतः ऐसे विषयों पर आधारित पाठों का उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना ना होकर भाषा ज्ञान बढ़ाना है। अतः पाठों को भाषा ज्ञान वृद्धि का उद्देश्य पूरा करना चाहिए।

iii. **उपयुक्तता-** मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव-व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाएं हैं जैसे बाल्यावस्था, किशोरावस्था,प्रौढ़ावस्था आदि। इन अवस्थाओं की सामान्य प्रकृति के अनुकूल विषयों पर आधारित पाठ उपयुक्त होते हैं।

iv. **विषय विविधता** -एक ही प्रकार के विषय पर आधारित अनेक पाठों की अपेक्षा अनेक विषयों पर आधारित पाठ अच्छे होते हैं। इस प्रकार साहित्य के विभिन्न विधाओं का पुस्तक में प्रतिनिधित्व होना चाहिए। गद्य-पद्य नाटक, कहानी, निबंध इत्यादि सभी विषयों पर पाठ होने चाहिए।

v. **रोचकता** -जिन विषयों में छात्रों की रुचि होती है, उनके अध्ययन से वे उबते नहीं और उन्हें शीघ्र समझ लेते हैं। रूचि का सिद्धांत आज एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है और इस सिद्धांत को शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहार किया जाना चाहिए।

vi. **जीवन से सम्बद्धता-** पाठ्यपुस्तक से आये हुए विषय जीवन से संबंधित होने चाहिए। जीवन से असंबंधित विषयों को सीखने में छात्रों को कठिनाई होती है।

vii. **क्रमबद्धता/ पाठ्य सामग्री का प्रस्तुतीकरण** - पाठ्यपुस्तकों के पाठ क्रमबद्ध होने चाहिए। यह क्रम छात्रों की आयु के अनुसार होने चाहिए तथा 'विषयों को सरल से कठिन की ओर' के सिद्धांत पर के आधार पर व्यवस्थित करना चाहिए। सामग्री के संकलन के उपरांत उसके प्रस्तुतीकरण को भी समुचित क्रम और उपादेयता प्रदान की जानी चाहिए। इसके लिए एक परिपाटियों का अनुपालन किया गया है। इन में सर्वप्रथम है 'सरल से कठिन की ओर'। पाठ्य पुस्तक के आरंभिक पाठ पढ़ने और समझने की दृष्टि से सरल,रुचिकर और प्रेरणास्पद होने चाहिए। इस परंपरा के अनुसार भाषा,भाव,विषय और शैली की दृष्टि से सरल पाठों को पहले रखा जाना चाहिए।

viii. **आदर्शवादिता**- पाठ्यपुस्तक में कुछ पाठ ऐसे होते हैं जो विद्यार्थी को नया संदेश, नई प्रेरणा एवं नए आदर्श प्रदान करने में सक्षम हो।

ix. **व्यवहारिक** –पाठ्य-पुस्तक की भाषा कैसे भी होने चाहिए जो बालक की व्यवहारिक बुद्धि को विकसित कर सकें और उसे लोकाचार की शिक्षा दे सकें।

x. **स्तरानुकूलता-** पाठ्य पुस्तकों की भाषा छात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में इनकी भाषा बहुत सरल हो और शनैः-शनैः व्यवस्थानुसार भाषा के स्तर को बढ़ाया जाए।

xi. **शुद्धता-** भाषा की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तकों को शुद्ध होना चाहिए। यदि पुस्तक की भाषा अशुद्ध है तो यह आशा कैसे की जा सकती है कि छात्र उन्हें पढ़कर भाषा पर अधिकार कर सकेंगे।

xii. **सार्थकता-** पाठ्यपुस्तक का प्रत्येक शब्द सार्थक हो, प्रत्येक वाक्य तथा प्रत्येक अनुच्छेद सार्थक हो। ऐसा ना हो कि शब्द, वाक्य और अनुच्छेद अनावश्यक रुप से ठूंस न दिए गए हो। अनावश्यक शब्दों या वाक्यों को पुस्तक में स्थान नहीं मिलना चाहिए।

xiii. **सुसंबद्धता -** पुस्तक का प्रत्येक वाक्य दूसरे वाक्य से संबंधित हो। एक अनुच्छेद का दूसरे अनुच्छेद से संबंध हो। एक अनुच्छेद के अंदर विभिन्न वाक्य एक दूसरे से संबंद्ध होने चाहिए।

xiv. **भाषाधिकार वर्धकता-** पाठ्य पुस्तकों की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि छात्रों के शब्द भंडार में वृद्धि हो। शब्दों का चयन, वाक्यों की योजना इस प्रकार से हो कि छात्रों के शब्द- भंडार एवं सूक्ति- भंडार में वृद्धि हो और उनका भाषा पर अधिकार बन सके।

xv. **मौलिकता -** पाठ्य पुस्तक के पाठो में मौलिकता से छेड़छाड़ नहीं किया जाना चाहिए। कभी-कभी अध्यापक संकलन करते समय लेखक के मूल लेख को छोटा कर देते हैं और लेख को इस प्रकार मौलिकताविहीन कर देते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। जो पाठ नए लिखे जाएं, उनमें ध्यान रहे कि अभिव्यक्ति की नवीनता बनी रहे।

xvi. **शैलीगत विविधता** -प्रत्येक पाठ्यपुस्तक में विभिन्न साहित्यिक विधाएँ तो होनी ही चाहिए किंतु प्रत्येक विधा में शैलीगत विभिन्नता भी होनी चाहिए। मान लीजिए कविता के पाठ पुस्तक में संकलन होने हैं उन पाठों में शृंगार ,हास्य, करुण रस, भयानक, वीर, शांत आदि विविध रसों की कविताएं हो और दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, पद, तुकांत, अतुकांत आदि विविध छंद हों।

xvii. **ऋतुओं/मासों का ध्यान -** जो पाठ त्योहारों, ऋतु वर्णन, महापुरुषों की गाथाओं, जीवनियों इत्यादि से सम्बद्ध हो उनका संकलन ऐसे ही क्रम में किया जाए कि जब उन्हें पढ़ाया जाए तो उनकी जयंती, पुण्यतिथि या अन्य सम्बद्ध अवसर सन्निकट या आसपास हो। उदाहरण के लिए भारतीय विद्यालयों का सत्र अप्रैल माह से शुरु होता है। इस माह में महावीर जयंती, गुड फ्राइडे, बैसाखी, रामनवमी और भारतीय नववर्ष जैसे पर्व का आयोजन होता है। यदि हिंदी पाठ्यक्रम में भगवान महावीर, ईसा मसीह या भगवान श्री राम जैसे महापुरुषों पर वैशाखी, नववर्ष जैसे पर्व का वर्णन विधेय हो तो उसे पाठ्यपुस्तक के आरंभ में रखा जाए।

xviii. **पाठ्यवस्तु का सरलीकरण** -संकलित पाठों की प्रस्तुति के उपरांत दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है पाठ्यवस्तु का सरलीकरण। सामग्री संकलन के दौरान पर्याप्त ध्यान दिए जाने पर भी पाठों में अनेक दुर्बोध शब्द ,पारिभाषिक शब्द, प्रचलित मुहावरे या क्षेत्रीय लोकोक्तियां और अप्रसिद्ध, ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंग अनिवार्यतः आ जाते हैं। इन्हें सरल न किया जाए तो विद्यार्थियों के लिए पाठ का वास्तविक भाव ग्रहण कर पाना संभव नहीं हो पाता। पाठ पहेली

बन जाते हैं और विद्यार्थी उनके शब्द जाल में फंसे रह जाते हैं। इस समस्या के निराकरण के लिए पाठ के दौरान ही विभिन्न विधियों से कठिन अंशों का निवारण किया जाना चाहिए।

xix. **चित्रांकन पक्ष** - यद्यपि चित्रांकन किस शैली और प्रस्तुति पाठ्यपुस्तक के बाह्य पक्ष का विषय है, किंतु प्रस्तुत चित्रों की मूल पाठ से संबद्धता और विषय को जानने- समझने में उनकी उपयोगिता का परीक्षण अंतर्पक्ष का ही दायित्व है। अनुपयोगी तथा अनापेक्षित चित्र पाठ्यवस्तु को सुबोध बनाने की अपेक्षा विद्यार्थियों को भ्रमित कर सकते हैं

xx. **मूल्यांकन पक्ष**- पाठों के अंत में पाठ्य वस्तु के मूल्यांकन के लिए सरल और सटीक भाषा में प्रश्न दिए जाने चाहिए। प्रश्नों का उद्देश्य बोध परीक्षा एवं महत्वपूर्ण अंशों का अभ्यास होना चाहिए। मूल्यांकन को सरल, व्यवहारिक और वस्तुपरक बनाने के लिए सभी प्रकार के प्रश्नों – निबंधात्मक, लघुउत्तरात्मक और वस्तुनिष्ठ का संतुलन कायम किया जाना चाहिए।

xxi. **विषय सूची -** पाठों का स्थान, लेखक और विधा की सूचना के लिए पाठ्य वस्तु के प्रारंभ में विशेष सूची का प्रकाशन अनिवार्य है। इससे विद्यार्थियों को किसी भी पाठ के स्थान या परिचय जानने में सुविधा होती है। इन आंतरिक एवं बाह्य गुणों के अतिरिक्त भी कुछ बिंदु पाठ्य पुस्तक चयन की दृष्टि से ध्यातव्य है। इनमें पुस्तक की सरल उपलब्धता और उचित मूल्य प्रमुख है। सर्वगुण संपन्न पाठ्यपुस्तक भी यदि बाजार में दुर्लभ हो तो विद्यार्थियों के लिए उसकी उपयोगिता सीमित हो जाती है, दूसरी तरफ महंगी पाठ्यपुस्तकें भी सभी विद्यार्थियों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाती ।इन अपेक्षाओं पर खरा उतरने वाली पाठ्य पुस्तकें शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के बीच शिक्षण अधिगम को सरल बनाती हैं और शिक्षण के लक्ष्य को कार्यान्वित करती हैं।

2.7 पाठ्यपुस्तकों के दोष

पाठ्यपुस्तक के जिन गुणों की चर्चा उपर की गई है , उनका न होना ही पाठ्य-पुस्तक की कमी मानी जा सकती है। फिर भी पाठ्य-पुस्तक के दोषों के रूप में निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख किया जा सकता है।

1. **जीवन से असम्बद्ता:** राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 अपने अनुशंसाओं में इस बात की वकालत करती है कि कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाला ज्ञान बालकों के जीवन से सम्बद्ध हो अतः पाठ्यपुस्तकों को भी बच्चों के जीवन को प्रतिबिंबित करने वाला होना चाहिए। साथ ही शिक्षक के लिए यह संभावना रहें कि वे बालकों के जीवन के विवरणों को पाठ्यपुस्तक में दी गई सामग्री से जोड़ सकें। अगर शिक्षक के लिए यह उद्देश्य है कि बच्चों का जीवन कक्षा में की जाने वाली पढाई का सन्दर्भ बनें तो पाठ्यपुस्तक उस काम को सहारा देने का काम करती है। इसके अभाव में पाठ्यपुस्तक केवल अनुपयोगी तथ्य ज्ञान ही दे पाएगी।

2. **प्रयोजनहीनता:** पाठ्यपुस्तकों में वर्णित सामग्री बालकों के जीवनोपयोगी होनी चाहिए। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में हालाँकि यह कठिन कार्य है किन्तु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 के सिफ़ारिशों को ध्यान में रखकर बनाई गयी पुस्तकों में भावी जीवन को लक्षित किया गया है।
3. **अनुपयुक्तता:** शिक्षा प्रदान करना एक लोक-कल्याणकारी कार्य है किन्तु व्यावसायिकता का दबाव इस क्षेत्र पर बड़ा है। इस क्षेत्र के बाजारीकरण के चलते नीजी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों का मूल्य इतना हो गया है कि उसे एक निश्चित आयवर्ग का व्यक्ति ही खरीद सकता है। यह एक बड़ा दुर्गुण है।
4. **नीरसता:** पाठ्यपुस्तक में विशेषज्ञ लेखक द्वारा एक ही प्रकरण पर अलग-अलग प्रकार से लिखा जा सकता है। यदि पाठ की विषय-वस्तु में पाठकों के साथ संवाद करने की शैली होती है अर्थात उनकी रूचि जगाने की क्षमता ,सरल शब्दावली, चित्रात्मकता आदि नहीं होती तो पुस्तक नीरस और बोझ प्रतीत होती है।
5. **आदर्शहीनता:** पाठ्यसामग्री अध्येता के साथ संवाद स्थापित करता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि क्या यह संवाद साम्प्रदायिकता के वातावरण को फैला रहा है या उपभोक्तावाद के परिवेश जिसमें बालक जी रहा है, उसे बढ़ावा दे रहा है। स्त्रियों,दलितों,प्रकृति के प्रति हिंसा को प्रोत्साहित कर रहा है। यदि पाठ्यपुस्तक में सभी धर्मों में निहित महान मूल्यों का पुट नहीं है तो वह नितांत खोखली है।
6. **अव्यावहारिकता और राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव:** पुस्तकें ज्ञान का वहन करती है और अनेक मामलों में विद्यार्थियों के मष्तिष्क को अकेले आकार देती है। अतः पाठ्यपुस्तक में ऐसे तत्व हो जो भविष्य के राष्ट्र के अनुरूप हो। कई बार राजनीतिक दलों द्वारा अपने एजेंडे के लिए पाठ्यपुस्तकों में ऐसी पाठ्यवस्तु डाल दी जाती है जो राष्ट्रीय समभाव और देश की सेहत के लिए अच्छा नहीं होता। यह ध्यान रखना होगा कि किसी पाठ्यक्रम या पाठ्यवस्तु का निर्माण किसी संकीर्ण विचारधारा के साए में ना हो।
7. **अशुद्धः** भाषागत अशुद्धियों के निराकरण के अभाव में उत्तम पुस्तक भी अपनी अर्थवत्ता खो देती है कई बार पाठक शिक्षक के निर्देशन के बिना पुस्तक का स्वाध्याय करते है और पुस्तक में दिए भाषा और तथ्यगत अशुद्धियों को ही सत्य मान लेते हैं। यह स्थिति खतरनाक है।
8. **कुसंपादन**: पुस्तक का संपादक नौका का कप्तान होता है जिसकी जिम्मेदारी बड़ी महत्वपूर्ण होती है। पुस्तक के बाह्य और आंतरिक गुणों को जाँचने की अंतिम जिम्मेदारी संपादक की होती है ,इस दायित्व के कुशल निर्वहन के अभाव में पुस्तक में अनेकानेक त्रुटियों की संभावना रहती है।
9. **शैलीगत अरोचकता**: कई बार लेखकों द्वारा अपने विद्वता के प्रकाशन या आनुवादिक आवश्यकता के लिए कठिन, दुरूह शब्दावली, अप्रचलित मुहावरों,अंतर्कथा के द्वारा स्पष्ट किए जाने वाले सन्दर्भों आदि का वर्णन करने है। संपादन में इनकी ओर ध्यान न दिए जाने पर ये प्रसंग पाठकों के लिए समस्या उत्पन्न करते हैं।

10. **अनाकर्षक साज-सज्जा:** बहुधा गुणवत्ता वाले विषयवस्तु के बावजूद एक पाठ्य-पुस्तक अपनी अनाकर्षक साज-सज्जा के कारण अनुपयोगी हो जाती है। पुस्तक का आवरण-पृष्ठ,चित्रांकन,पृष्ठों की गुणवत्ता, आदि पर ध्यान देना विषय-वस्तु के समान ही आवश्यक है। खासकर प्राथमिक स्तर के बालकों के लिए इन तत्वों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।
11. **पाठक-वर्ग की आवश्यकता को ध्यान में न रखना-** पाठ्यपुस्तक लिखते समय अगर पाठक वर्ग का ध्यान नहीं रखा जाए तो वह पुस्तक पठनीय नहीं हो सकती। अगर पाठक कोई बालक/बालिका है और उसकी सोच,मनोविज्ञान और मनोस्थिति को ध्यान में रखे बगैर जो सामग्री लिखी गई है तो वह सामग्री खराब ही होगी। साथ ही वह पुस्तक जो बच्चों को सब कुछ बता दें और कुछ करने की चुनौती ना दे तो उसे भी अच्छी पुस्तक नहीं कह सकते।

अभ्यास प्रश्न

5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में क्या कहती है?
6. संपादक की उपमा नौका में किस अधिकारी से दी गयी है ?

2.8 सारांश

भाषा-शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक एक साधन है,साध्य नहीं। पुस्तकों के बिना भी भाषा की शिक्षा दी जा सकती है। एक अच्छा भाषा-अध्यापक अपने छात्रों को पाठ्य-पुस्तक अच्छी तरह पढ़ायेगा किन्तु वह उन्हें पुस्तक का कैदी नहीं बना देगा। वह सदा ध्यान रखेगा कि उसके छात्र पुस्तक के माध्यम से जीवन और जगत के बारे में पढ़ रहे हैं। वह छात्रों के ज्ञान को अन्य साधनों से –विशेषकर अपने व्यैक्तिक ज्ञान से बढ़ाने का पूरा-पूरा यत्न करेगा। उसके छात्र अनुभव करेंगे कि भाषा-पढ़ते हुए वे विश्व की सबसे सजीव,रोचक और उपयोगी चीज पढ़ रहे हैं। हिंदी पाठ्य-पुस्तक पढ़ते हुए उन्हें छात्रों को अपनी प्रगति का आभास होते रहना चाहिए।

सारांशतः मातृभाषा का शिक्षण एक बहुमुखी और जटिल कार्य है। इसकी पाठ्य-पुस्तक अन्य विषयों के पाठ्य-पुस्तक के समान सुनिश्चित उद्देश्यों से बद्ध नहीं रह सकती। क्योंकि मातृभाषा की शिक्षा देते हुए हम वास्तव में भाषा द्वारा सिखाये जाने वाले लगभग सभी विषयों की शिक्षा एक साथ दे रहे होते हैं ।

वर्तमान भाषा-शिक्षण पद्धति में पाठ्य-पुस्तक का स्थान सर्वोपरि है। इस व्यवस्था में बहुत सी कमियाँ हैं, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी भाषा-शिक्षण पद्धति में पाठ्य-पुस्तक का स्थान प्रमुख रहेगा।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रंथ का अर्थ है-'गूंथना' , बांधना, क्रम से रखना, नियमित ढंग से जोड़ना आदि। गुरुकुलों में आचार्य लोग भोजपत्र या ताड़पत्र को अपने शिक्षकों के समक्ष क्रम से रखते थे। उनके बीच में छेद करके किसी धागे से गूँथ भी देते थे,अतः इन्हें ग्रन्थ नाम दिया गया। पुस्तकों के लिए इन भोजपत्रों के कारण यह शब्द पाठ्यपुस्तकों के लिए प्रचलित हो गया।
2. जो विद्यार्थी किसी शारीरिक या बौद्धिक सीमाओं के चलते कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षण बिंदुओं का अधिगम नहीं कर पाते, वह घर पर अभिभावकों एवं पुस्तक की सहायता से उसका अभ्यास कर सकते हैं।
3. पूरक पुस्तकों का स्वरुप पाठ्यपुस्तक से कम औपचारिक होता है और इसका निर्माण विद्यार्थियों में स्वाध्याय ,मौन-पाठ और साहित्यालोचन की प्रवृति का विकास के लिए किया जाता है।
4. सन्दर्भ-पुस्तकों का उपयोग वरिष्ठ कक्षाओं में पाठ्य तथा पूरक पुस्तकों द्वारा प्रदत्त ज्ञान के विस्तार के लिए किया जाता है ताकि विद्यार्थी सह-सम्बन्ध से अन्य विषयों, सन्दर्भ,प्रसंग के बारे में और जानकारी प्राप्त कर सकें।
5. पाठ्यपुस्तक की सामग्री जीवनोपयोगी एवं कक्षा से बाहर बालक के जीवन से सम्बद्ध होनी चाहिए।
6. संपादक नौका के कप्तान की तरह होता है।

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, मनोरमा,**भाषा -शिक्षण सिद्धांत और प्रविधि** आगरा,केन्द्रीय हिंदी, संस्थान (2010)
2. चौहान,रीता,**हिंदी शिक्षण**आगरा,अग्रवाल, पब्लिकेशन 17-2016,
3. श्रीवास्तव,डॉ.रविन्द्रनाथ, भाषा-शिक्षण,वाणी प्रकाशन,2005,नई दिल्ली
4. मंगल एस.के,शुभ्रा, व्यावहारिक विषयों में अनुसन्धान विधियाँ,पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली,2014
5. पाण्डेय,श्रुतिकांत ,हिंदी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली,2014
6. चतुर्वेदी,रामस्वरूप(2005), हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास , लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भाषा शिक्षण-अधिगम में पाठ्यपुस्तक की महत्ता बताएँ।
2. पाठ्यपुस्तक के विभिन्न प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
3. एक उत्तम पाठ्य-पुस्तक में कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिए ?
4. पाठ्यपुस्तक में कौन से दोष हो सकते हैं ? बिन्दुवार वर्णन करें।

इकाई 3- हिंदी भाषा में उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु परीक्षण

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उपलब्धि परीक्षण से आशय
3.4 उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता
3.5 उपलब्धि परीक्षण का महत्व
3.6 परीक्षण का निर्माण
  3.6.1 परीक्षण-निर्माण के ध्यातव्य बिंदु
  3.6.2 वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का निर्माण एवं उपयोग
3.7 उपलब्धि परीक्षण निर्माण की प्रक्रिया एवं विशेषताएँ
  3.7.1 अध्यापक निर्मित एवं मानकीकृत परीक्षण का अंतर
  3.7.2 उपलब्धि परीक्षण निर्माण के सोपान
  3.7.3 वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के मानक
3.8 सारांश
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

शिक्षण और मूल्यांकन परस्पर संबंध प्रक्रियाएं हैं। अध्यापक तथा छात्र, दोनों ही शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग है। छात्र सीखने में किस सीमा तक समर्थ हो सका है और अध्यापक का शिक्षण कितना प्रभावशाली है, इसका समय समय पर मूल्यांकन करना आवश्यक है।
अध्ययनों द्वारा यह प्रमाणित किया गया है किसी के हुए ज्ञान की जानकारी, उसका मूल्यांकन अधिगम और शिक्षण की प्रक्रिया में सहायक है। इस दृष्टि से मूल्यांकन अधिगम- प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।

परीक्षण मूल्यांकन का साधन है।' मूल्यांकन' शब्द का प्रयोग बालक के समग्र विकास के संदर्भ में किया जाता है। 'परीक्षण' शब्द का प्रयोग निर्दिष्ट शिक्षण बिंदु, सीखे गए ज्ञान अथवा कुशलता के संदर्भ में होता है। अतः मूल्यांकन के लिए परीक्षण आवश्यक है। परीक्षण के द्वारा अधिगम- प्रक्रिया की कार्यकारिता,

निश्चित उद्देश्यों के संदर्भ में उसका विकास आदि का विवरण तथा लेखा जोखा प्राप्त करना संभव है। इस प्रकार परीक्षण परीक्षण की प्रक्रिया द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के संदर्भ में अपनाई गई कार्यशैली तथा क्रियात्मकता का विधिवत विवेचन किया जाता है।

परीक्षण के विभिन्न स्वरूपों यथा- निबंधात्मक, वस्तुनिष्ठ तथा लघु उत्तर, कौशल परीक्षण, प्रावीण्य परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण आदि की सहायता से समग्र शैक्षिक प्रक्रिया का मूल्यांकन संभव है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. उपलब्धि परीक्षण के संप्रत्यय का वर्णन कर पायेंगे।
2. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व का बोध विकसित होगा।
3. शिक्षक निर्मित उपलब्धि परीक्षण एवं मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण में अंतर स्पष्ट कर पायेंगे।
4. उपलब्धि परीक्षण के निर्माण में रखे जाने वाली आवश्यक सावधानियों का वर्णन कर पायेंगे।
5. उपलब्धि परीक्षण निर्माण के सोपानों का क्रमबद्ध वर्णन कर पायेंगे।
6. उत्तम उपलब्धि परीक्षण के विशेषताओं का वर्णन कर सकने का कौशल विकसित होगा।

3.3 उपलब्धि परीक्षण से आशय

उपलब्धि परीक्षा या उपलब्धि परीक्षण पर मानव जीवन के विभिन्न व्यवसाय क्षेत्रों की तुलना में शैक्षिक क्षेत्र में ज्यादा लोकप्रिय है। अपने शाब्दिक अर्थ में उपलब्धि परीक्षा से अभिप्राय किसी अवधि विशेष में किसी एक या अन्य अधिगम क्षेत्र में, अपने अधिगम यह प्रशिक्षण प्रयासों के द्वारा एक विद्यार्थी ने जो कुछ भी उपलब्धियां अर्जित किया है उसके मापन और मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त परीक्षण से है। उपलब्धि परीक्षा के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचार दृष्टव्य है -

- **सुखिया और अन्य:** हमारे विद्यालयो में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के परीक्षणों में सबसे ज्यादा प्रचलन उपलब्धि परीक्षणों का होता है। उनका प्रयोजन यह मापन करना होता है की औपचारिक और अनौपचारिक अनुदेशन के परिणाम स्वरुप विद्यार्थियों ने क्या और कितना अधिगम किया है। वह शैक्षिक अधिगम में व्यक्तियों या समूहों की निष्पत्ति के वर्तमान स्तर का मापन करते हैं।
- **बेस्ट एवं काहन :** उपलब्धि परीक्षण यह मापन करने का प्रयास करते हैं की एक व्यक्ति ने क्या अधिगम किया- उसके निष्पत्ति का वर्तमान स्तर क्या है ? विद्यालयों में उपयोग किए जाने वाले परीक्षणों में उपलब्धि परीक्षणों का ही सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है। यह परीक्षण व्यक्ति या समूह के शैक्षणिक अधिगम स्तर का निर्धारण करने में विशेष रूप से सहायक होते हैं।

विद्यार्थियों को अगली कक्षा में भेजने या किसी विशेष कक्षा में रोकने के लिए इन्हीं उपलब्धि परीक्षणों के प्राप्तांकों का प्रयोग किया जाता है। यह विद्यार्थियों की योग्यताओं एवं कमजोरियों का निदान करने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं तथा इन्हीं के आधार पर विद्यार्थियों को पुरस्कार, छात्रवृत्ति या उपाधियां आदि प्रदान किए जाते हैं।

इसका संबंध छात्र की उपलब्धियों के मूल्यांकन से है। इसके द्वारा एक प्रकार से छात्र की भाषाई संप्राप्ति का, उपलब्धियों का मापन संभव है। छात्र ने अध्येय भाषा पर कितना अधिकार प्राप्त कर लिया है, उसकी शैक्षिक उपलब्धि क्या है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। यह परीक्षण किसी पाठ्यक्रम पर आधारित नहीं होते। यह सामान्यतः बाह्य परीक्षकों द्वारा निर्मित होते हैं। परीक्षण तैयार हो जाने पर उसका पूर्व परीक्षण किया जाता है और उनको मानकीकृत किया जाता है। इसके द्वारा छात्र की अन्य भाषाई उपलब्धियों का अध्ययन किया जाता है और उनका औसत निर्धारित किया जाता है। यह परीक्षण निश्चित उद्देश्यों की सीमा में ही वैध एवं विश्वसनीय माना जाता है। सामान्यतः प्रगति परीक्षण को भी इसके अंतर्गत समाविष्ट मान लिया जाता है। परंतु इन दोनों में अंतर है। प्रगति परीक्षण निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित होता है और छात्र की निरंतर प्रगति का द्योतन करता है जबकी उपलब्धि परीक्षण का उद्देश्य समग्र भाषा ही उपलब्धि का मापन है।

भाषाई परीक्षण संबंधी विचारधाराओं में समय-समय पर परिवर्तन हुआ है। वस्तुतः भाषा परीक्षण की संकल्पना का संबंध भाषा विषयक विचारधाराओं से है। भाषाविषयक यह विचारधाराएं भाषा परीक्षण के सिद्धांतों को प्रभावित करती हैं। परंपरावादी विचारधारा में भाषा को एक वस्तु माना गया तथा उच्चारण को महत्व नहीं दिया गया। शिक्षण में व्याकरण-अनुवाद पद्धति का समर्थन किया गया। परीक्षण प्रक्रिया मुख्यतः निबंधात्मक रही। संरचनावादी विचारधारा भाषा को यांत्रिक प्रक्रिया मानती है, जिसमें भाषा को उत्तेजना के प्रति की गई प्रतिक्रिया माना गया है। भाषा-अधिगम अनुकूलन पर आधारित है। शिक्षण वस्तुतः भाषाई संरचनाओं का शिक्षण है। परीक्षण का साधन बहुविकल्प वस्तुनिष्ठ प्रश्न है। भाषा का रूपांतरण परक दृष्टिकोण भाषा को सर्जनात्मक एवं नियम पर आधारित मानता है। भाषा शिक्षण एवं अधिगम की दृष्टि से इसकी संभावनाएं बहुमुखी हैं। परीक्षण का उद्देश्य समस्या प्रस्तुत करना है जिसके समाधान में भाषा का सचेतन रूप से प्रयोग होता है। स्पष्ट है कि भाषा- वैज्ञानिक तथा मनोभाषा -वैज्ञानिक सिद्धांत शिक्षण एवं परीक्षण के सिद्धांतों तथा प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। सामान्य परीक्षणों की तुलना में भाषा परीक्षणों की कुछ विशेषताएं हैं। यह विशेषताएं निम्नलिखित हो सकती हैं-

i. भाषा परीक्षण अन्य विषयों के परीक्षण की तुलना में एक जटिल प्रक्रिया है। इसका प्रमुख कारण स्वयं भाषाई प्रक्रिया की जटिलता है। इसमें एक साथ भाषा वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा समाज वैज्ञानिक घटकों का समावेश रहता है। अतः भाषा अध्येता एवं प्रयोग की विशेषताओं के आकलन एवं परीक्षण के समस्याओं की जटिलता इसका सहज परिणाम है।

ii. अन्य विषयों के परीक्षण के संदर्भ में भाषा-परीक्षण की जटिलता का दूसरा कारण यह है कि भाषा में ही मातृभाषा-भाषी प्रयोक्ता तथा मातृभाषा से इतर प्रयोक्ता की संकल्पनाएं क्रियाशील होती हैं। अन्य किसी विषय में अन्य प्रयोक्ता का प्रश्न ही नहीं उठता।

iii. भाषा पर परीक्षणों की जटिलता का तीसरा प्रमुख कारण है परीक्षण बिंदु की प्रकृति। भाषा मुख्यतः कौशल प्रधान विषय है जबकि अन्य विषय ज्ञान और विषय-वस्तु प्रधान है। कौशल का परीक्षण अपने आप में एक जटिल समस्या है। भाषा में प्रावीण्य परीक्षणों के निर्माण की जटिलता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। तथ्य एवं ज्ञान प्रधान विषयों में प्रावीण्य परीक्षा का निर्माण अपेक्षाकृत सरलता से होता है। परंतु भाषा-परीक्षक का अतिरिक्त दायित्व परीक्षण सामग्री का निर्माण तथा अधिगम स्तर का परीक्षण करना है, साथी सामग्री की वैधता को प्रमाणित करना भी आवश्यक है। अन्य भाषा के संदर्भ में परीक्षण किया समस्या और भी जटिल हो जाती है। जो भी हो परीक्षण का लक्ष्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारु रुप से विकसित करने में सहायता देना है।

अभ्यास प्रश्न

1. संरचनावाद के अनुसार भाषा कैसी प्रक्रिया है ?
2. भाषा और अन्य विषयों की प्रकृति में मूल अंतर बतायें।

3.4 उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता

शिक्षण का उद्देश्य छात्र के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना है। प्रशिक्षण तथा अनुभव के फलस्वरुप व्यवहार के परिवर्तन को अधिगम कहा जाता है। शिक्षण के क्रम में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में छात्र किस सीमा तक समर्थ हो सकते हैं, सिखाएं जाने वाले ज्ञान और कौशल को सीखने में उसने कितनी निपुणता अर्जित की है, इसके विधिवत विवेचन की प्रक्रिया को अधिगम- मूल्यांकन के नाम से अभिहित किया जाता है।

शिक्षण की प्रक्रिया निश्चित उद्देश्यों के आधार पर गतिशील होती है। शिक्षण में निर्दिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति कहां तक हुई है, इसका मूल्यांकन करना अत्यंत आवश्यक है। इसी के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया में वांछित परिवर्तन संभव है अतः मूल्यांकन की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट है।

मूल्यांकन का महत्व इस तथ्य से भी प्रकट होता है किस शिक्षण में इसकी सुधारात्मक भूमिका होती है। मूल्यांकन केवल मूल्यांकन के लिए ही नहीं किया जाता, बल्कि अधिगम और शिक्षण प्रक्रिया में सुधार की दृष्टि से किया जाता है। छात्र निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में किस कारण से समर्थ नहीं हुआ है ? क्या शिक्षण प्रक्रिया दोषपूर्ण है? क्या अधिगम प्रक्रिया में कोई व्याघात उत्पन्न हुआ है ? आदि बातों की जानकारी मूल्यांकन के द्वारा ही संभव है। अतः अधिगम में वांछित सहायता देने ,शिक्षण अधिगम

परिवेश में समुचित परिवर्तन लाने तथा शैक्षिक प्रक्रिया को यथासंभव अधिक प्रभावशाली बनाने में मूल्यांकन का विशेष योगदान है।

मूल्यांकन का संबंध छात्रों की अधिगम प्रक्रिया से है। अधिगम प्रक्रिया के संबंधित सभी घटकों, योग्यताओं तथा इसमें स्थितियों का स्वतह समावेश हो जाता है। छात्रों की योग्यता, उनकी विविध मानसिक एवं संवेगात्मक शक्तियां, विविध प्रकार की कुशलताओं आज की जानकारी मूल्यांकन द्वारा संभव है। अतः इस से न केवल उनकी उपलब्धियों की सूचना मिलती है बल्कि यह समुचित मार्गदर्शन में सहायक है।

मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया से संबंध है। निर्धारित पाठ्य विषय से संबंधित कुशलताओं के विकास में प्रयुक्त शिक्षण विधि तथा युक्तियां किस सीमा तक उपादेय है, इस जानकारी के आधार पर शिक्षण तकनीकों में परिवर्तन परिवर्धन संभव है। अध्यापक शिक्षण को प्रभावी बनाने, निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए शैक्षणिक क्रियाओं के चयन में विशेष सतर्कता से काम कर सकता है। अध्यापक की कार्य क्षमता, शिक्षण के प्रति उसका दृष्टिकोण तथा शिक्षण से संबंधित अन्य गतिविधियां विशेष रुप से निर्देशित एवं नियंत्रित होती हैं।

शिक्षण प्रक्रिया में पाठ्यक्रम तथा शिक्षण सामग्री का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अधिगम एवं शिक्षण की दृष्टि से पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सामग्री की उत्कृष्टता का निर्धारण आवश्यक हो जाता है। मूल्यांकन इस कार्य में भी अध्यापक की सहायता करता है। शैक्षिक प्रक्रिया में निर्धारित लक्ष्य प्रथम लक्ष्यों की प्राप्ति के स्तर की तुलना करते हुए अध्यापक शिक्षण सामग्री में वांछित परिवर्तन एवं परिवर्धन करता है। इस प्रकार पाठ्य सामग्री के चयन एवं निर्माण में मूल्यांकन का महत्व स्वीकृत है।

3.5 उपलब्धि परीक्षण का महत्व

ऊपर दिए गए वर्णन से भाषा परीक्षण का महत्व स्वतह स्पष्ट है। भाषा परीक्षण के चयन अथवा निर्माण से पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिए यह किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किस प्रयोजन से भाषा परीक्षणों का निर्माण किया जा रहा है। इन भाषा परीक्षणों के माध्यम से अनेकानेक उद्देश्यों की प्राप्ति संभव है। यह कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं।

i. **अनुसंधान**-भाषा- परीक्षण का मुख्य कार्य अनुसंधान है। मात्री भाषा तथा अन्य भाषा के संदर्भ में विकसित परीक्षण हो अथवा भाषा प्रयोगशाला के सुनियोजित औपचारिक परिवेश और सहज स्वाभाविक संदर्भों में प्रयुक्त भाषा परीक्षण वस्तुतः छात्र की प्रगति के सूचक है। इसके आधार पर अनुसंधान की नवीन दिशाएं स्पष्ट होती हैं। भाषा परीक्षण का मुख्य कार्य भाषाई अनुसंधान को गति देना है।

ii. **प्रगति का मापन**- भाषा परीक्षण का प्रायोजन शिक्षण सामग्री तथा शिक्षण प्रणाली की तुलना करना है जिससे उनमें वांछित परिवर्तन लाया जा सके। प्रगतिपरक परीक्षणों का उद्देश्य निर्धारित

स्तर के संदर्भ में छात्रों की प्रगति के आंकड़े प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से इन परीक्षणों का महत्व एवं प्रक्रम सुस्पष्ट है।समस्त परीक्षाएं तथा ज्ञान के मापन की विविध प्रणालियाँ प्रगति परीक्षण के ही विविध रूप है।

iii. **निर्दिष्ट व्यवहार का द्योतन**- भाषा- अधिगम का लक्ष्य भाषा पर अधिकार प्राप्त करना है। भाषा पर यह अधिकार भाई कुशलता के रूप में दृष्टिगत होता है। अतः भाषाई परीक्षण कर दायित्व प्रारंभिक तथा अंतिम स्तर पर निर्दिष्ट भाषाई व्यवहार का द्योतन करना है।
भाषा के क्षेत्र में प्रयुक्त विविध परीक्षणों की प्रकृतिगत विशिष्टताओं का अध्ययन करने पर इनकी उपयोगिता स्पष्ट होती है।

iv. **पाठ्यक्रम मार्गदर्शन**- भाषा परीक्षणों का दायित्व शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करना है बल्कि पाठ्यक्रम में वांछित परिवर्तन की ओर संकेत भी करना है। इतना ही नहीं, परीक्षण के माध्यम से छात्रों में उद्देश्य की चेतना भी विकसित होती है, जिससे वे अधिगम प्रक्रिया में निर्धारित लक्ष्य और भाषाई कुशलता के निर्दिष्ट स्तर से परिचित होते हैं।

3.6 परीक्षण का निर्माण

परीक्षण निर्माण के पूर्व अध्यापक को कुछ आवश्यक बातों पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। भाषा अध्यापक निर्धारित समय का अधिक से अधिक सदुपयोग करना चाहता है, अतः भाषा अधिगम की भांति मूल्यांकन के क्षेत्र में भी उसे छात्रों से मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित करना पड़ता है। उनमें इसके प्रति पर्याप्त अभिरुचि एवं जागरुकता उत्पन्न करनी पड़ती है,जिससे वह सहज रूप में मूल्यांकन की प्रक्रिया में भाग ले सकें। शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है। अतः शिक्षण के विविध साधनों में लक्ष्य की एकरूपता स्थापित करना आवश्यक है। यही कारण है कि कक्षा में पढ़ाई गई सामग्री तथा प्रयोगशाला में अभ्यास की जाने वाली सामग्री में संबंध स्थापित करना जरूरी समझा जाता है और इनके द्वारा निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार परीक्षण योजना का भी लक्ष्य केंद्रित होना आवश्यक है। परीक्षण के द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि छात्र निश्चित भाषा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहां तक समर्थ हो सकता है। अतः अध्यापक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह कक्षा परीक्षण में संबंधित कुछ मुख्य बातों पर विशेष ध्यान दें-

3.6.1 परीक्षण निर्माण के ध्यातव्य बिंदु

i. **निर्धारित उद्देश्यों का स्पष्टीकरण एवं तदनुरूप परीक्षणों का निर्माण -** परीक्षण के पूर्व समय-समय पर भाषा अध्यापन से संबंधित उन उद्देश्य की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण आवश्यक है जिनको सम्मुख रखकर अध्यापन शिक्षण कार्य में संलग्न है। यह देखा गया है कि छात्र विशेषकर समझदार छात्र परीक्षण की प्रकृति को बहुत जल्दी भाप लेते हैं; तदनुसार भाषा अधिगम में उन्हीं तथ्यों पर विशेष बल देने लगते हैं। उदाहरण के लिए, यदि अन्य भाषा शिक्षण

में छात्रों की भाषण कुशलता के विकास के उद्देश्य को कक्षा में महत्व दिया जा रहा है परंतु परीक्षण में लेखन को प्रधानता दी गई है, तो छात्र निर्धारित उद्देश्य पर ध्यान नहीं देते। अतः यह आवश्यक है की परीक्षण निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप हो। उद्देश्य एवं व्यवहार की एकरूपता भाषा अधिगम में विशेष रूप से सहायक होती है। इस एकरूपता के अभाव में परीक्षण उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहता है। उद्देश्य के अनुरूप ही परीक्षण सामग्री का प्रयोग आवश्यक है।

ii. **परीक्षण के उद्देश्य की जानकारी**- अन्य भाषा के शिक्षण में विभिन्न भाषाई तत्वों का परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के पूर्व अध्यापक तो यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह छात्रों का परीक्षण किस उद्देश्य से कर रहा है। इसके अनुसार ही परीक्षण के स्वरूप का निर्धारण संभव है और तदनुसार परीक्षण सामग्री का चयन किया जा सकता है। परीक्षण का उद्देश्य छात्र की प्रगति को नापना है अथवा उसकी भाषाई उपलब्धि का मूल्यांकन करना है अथवा छात्र की संभावित योग्यता का अनुमान लगाना है अथवा उसके प्राविण्य का परीक्षण करना है? यह निश्चित करना आवश्यक है। विभिन्न उद्देश्यों के अनुरूप परीक्षण के प्रकार एवं स्वरूप में भिन्नता पाई जाती है। कक्षा में उपयुक्त परीक्षण का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है की परीक्षण के लक्ष्य का पूर्व निर्धारण किया जाए। तभी परीक्षण की प्रक्रिया सफल हो सकती है।

iii. छात्र की प्रगति को प्रोत्साहित करना-परीक्षण को शिक्षण प्रक्रिया के अनिवार्य अंग के रुप में स्वीकार करना आवश्यक है। वस्तुतः परीक्षण का उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया में सहायता देना है, अतः इसे शिक्षण का स्वाभाविक एवं अनिवार्य सोपान मानना उचित होगा। इसके लिए यह जरूरी है की परीक्षण कार्य में लगाया गया समय शैक्षिक अनुभव की दृष्टि से उपादेय हो। छात्रों को पर्याप्त का अवसर दिया जाए जिससे वह अध्येय भाषा में विशिष्ट शिक्षण बिंदुओं से संबंधित विभिन्न कुशलताओं का विकास कर सकें। परीक्षण का उद्देश्य छात्रों की त्रुटियों की ओर संकेत करना नहीं है बल्कि सही उत्तर की प्रेरणा देना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि छात्रों को उत्तर देने का पर्याप्त समय दिया जाए जिससे वे जो भी कुछ जानते हैं उसको अभिव्यक्त कर सकें। छात्रों को परीक्षण के परिणाम की जानकारी परीक्षण के पश्चात जितनी जल्दी दी जा सके, उतना ही लाभदायक है। परीक्षण परिणाम का तुरंत अभिज्ञान, अधिगम की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है। सही उत्तर की जानकारी से वह सीखने के लिए उत्प्रेरित होता है।

अन्य भाषा- शिक्षण का उद्देश्य छात्र में अन्य भाषा के व्यवहार की कुशलता उत्पन्न करना है। इसके लिए शिक्षण के साथ ही साथ परीक्षण में भी उन बातों पर ध्यान देना जरूरी है किससे भाषाई कुशलता के विकास में सहायता मिले। कक्षा परीक्षणों में तथा क्विजों में अन्य भाषा के प्रयोग पर ही बल देना उचित है। परीक्षण में अन्य भाषा का ही प्रयोग किया जाए। संबंधित सूचनाएं भी अध्येय भाषा में ही दी जाए। यदि छात्र अन्य भाषा में दिए गए निर्देशों को समझने में असमर्थ है तब मातृभाषा में निर्देश दिए जा सकते हैं। परीक्षण में भाषा के सही रूप एवं सही साँचों का प्रयोग सिखाया जाए जिससे भाषा के सही रूप के प्रयोग का अभ्यास दृढ़ हो सके।

iv. **निर्धारित समय में एक ही शिक्षण बिंदु का परीक्षण किया जाए-**परीक्षण के लिए एक ही शिक्षण बिंदु का चयन करना उचित है। परीक्षण के द्वारा छात्रों की प्रगति का, उनकी योग्यता का सही-सही मूल्यांकन करने के लिए विशिष्ट शिक्षण बिंदु का चयन आवश्यक है। भाषाई कौशलों के परीक्षण में विस्तार की अपेक्षा गहराई महत्वपूर्ण है। सीमित समय में अनेक तत्वों का एक साथ परीक्षण करने पर कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकलता, जिससे छात्र की प्रगति में सहायता नहीं मिलती। इसके विपरीत विशिष्ट शिक्षण बिंदु पर आधारित परीक्षण निश्चित रूप में शिक्षण में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, छात्र की भाषण कुशलता का परीक्षण करते समय मौखिक अभिव्यक्ति से संबंधित एक- एक कुशलता का अलग-अलग परीक्षण करना आवश्यक है। अंत में सभी कुशलताओं का समन्वित रूप में परीक्षण किया जा सकता है। इस संबंध में इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि उन्हीं शिक्षण बिंदुओं का परीक्षण किया जाए जिन्हें कक्षा शिक्षण में महत्व दिया गया है। इस प्रकार परीक्षण में महत्वपूर्ण अंशों पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है।

v. **परीक्षण-समय अनावश्यक रूप से लम्बा नहीं होना चाहिए** – परीक्षणों के लिए निर्धारित किया गया समय छात्रों के स्तर के अनुकूल होना चाहिए। जिससे वे परीक्षण से ना तो थके और ना उनमें अनावश्यक रुप से परीक्षण के प्रति विरक्ति पैदा हो। यह कहा जा चुका है कि परीक्षण में एक ही शिक्षण बिंदु का मूल्यांकन करना उचित है। इससे परीक्षण परीक्षण में दिए निर्देश संक्षिप्त एवं स्पष्ट हो

vi. परीक्षण में दिए गए निर्देश स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। बहुधा यह देखा गया है के अध्यापक द्वारा दिए गए निर्देश इतने अस्पष्ट होते हैं, उनकी भाषा इतनी जटिल होती है की छात्र उन्हें समझने में असमर्थ होता है। फलस्वरूप उत्तर की जानकारी होने पर भी वे सही उत्तर नहीं दे पाते। अतः निर्देश स्पष्ट भाषा में दिया जाए। कक्षा में प्रयुक्त निर्देशों का ही परीक्षण में प्रयोग करना उचित है, इससे छात्र उन्हें समझने में समर्थ होते हैं। निर्देश में अपरिचित शब्दावली का प्रयोग करने से छात्रों को कठिनाई होती है और वह सही उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। कभी-कभी अधिक लंबे निर्देशों से अनावश्यक रुप से उलझन पैदा होती है। अतः यह आवश्यक है के निर्देश उचित, तर्कसंगत स्पष्ट और संक्षिप्त हो।

vii. **परीक्षण समय अनावश्यक रूप से लंबा नहीं होना चाहिए-** परीक्षणों के लिए निर्धारित किया गया समय छात्रों अनावश्यक रूप से लंबा नहीं होता और छात्रों में थकान नहीं उत्पन्न होती। परीक्षण के लिए कक्षा के एक अंतर की अवधि पर्याप्त है। परीक्षण इतना ही लंबा रखा जाए की छात्र उसे अंतर के दो-तिहाई समय में पूरा कर ले, एक-तिहाई समय दोहराने के लिए निर्धारित करना उचित है। इस से न केवल छात्र भूल करने से बच सकता है बल्कि पुनरावलोकन के द्वारा अपनी त्रुटियों से बहुत कुछ सीखता है।

viii. **भाषाई परीक्षणों में परिचित संदर्भों का ही प्रयोग किया जाए-** परिक्षण में ऐसे संदर्भों अथवा ऐसी सामग्री का उपयोग किया जाए जिससे छात्र परिचित हैं। अनावश्यक रूप से जटिल

सामग्री और अपरिचित प्रसंगों से छात्रों को कठिनाई होती है। फलस्वरूप सही उत्तर जानने पर भी वे उनका उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार शब्दावली तथा संरचना का परीक्षण उचित संदर्भों में करना चाहिए। इससे परीक्षण के साथ ही साथ छात्र उनके प्रयोग से भी परिचित होते हैं। परीक्षण में ऐसे वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए जगह सामान्य रुप से मौखिक अथवा लिखित अभिव्यक्ति में प्रयुक्त किया जाता है। वह अन्य भाषा में दिए गए निर्देशों को सहज ही आत्मसात कर लेता है। परीक्षित शब्दावली के आधार पर निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के परिणाम अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय होते हैं और परीक्षण का लक्ष्य पूरा करते हैं।

ix. **कक्षा में सिखाए गए तथ्यों का ही मूल्यांकन किया जाए -** परीक्षण में उन्ही तथ्यों आपको सफलताओं का समावेश करना उचित है जिन का विधिवत शिक्षण किया गया है। परीक्षणों को तैयार करते समय अध्यापक के सामने कक्षा विशेष का विवरण होना चाहिए। अमुक कक्षा को क्या सिखाया गया है? उसका भाषाई स्तर क्या है? वह किस कुशलता का परीक्षण करना चाहता है? इसके लिए किस प्रकार का परीक्षण उपयुक्त है? इन बातों की जानकारी आवश्यक है। अध्यापक को अपने विषय ज्ञान के आधार पर अथवा अपनी सुविधा के अनुरूप परीक्षणों का निर्माण नहीं करना चाहिए। उसका उद्देश्य छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करना है। इसलिए कक्षा के छात्रों का वास्तविक चित्र उसके सामने होना चाहिए। परीक्षण निर्माण करते समय वह स्वयं अपने से कई प्रश्न पूछ सकता है, यथा- क्या परीक्षण उन्ही शिक्षण विधियों का मूल्यांकन करते हैं जिन्हें छात्र भली-भांति सीख चुका है ? क्या यह छात्रों में सही प्रतिक्रिया जागृत करने में समर्थ है ? सावधानी से तैयार किया गया परीक्षण छात्रों की भाषाई कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायक होता है।

x. **भाषाई परीक्षणों का संबंध भाषाई कुशलताओं से होना चाहिए-** भाषाई कुशलता और भाषा विषयक जानकारी दो अलग अलग तथ्य है ।भाषा ही कुशलता से अभिप्राय अवधी भाषा के विभिन्न कौशलों पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त करना है जिससे छात्र श्रवण, वाचन और लेखन कौशलों में समुचित भाषाई दक्षता प्राप्त कर सकें। भाषा के संबंध में सामान्य जानकारी से तात्पर्य भाषा संबंधी कुछ विवरण की जानकारी प्राप्त करना है। केवल भाषाई नियमों, सिद्धांतों को रट लेने से भाषा व्यवहार की कुशलता नहीं उत्पन्न होती। कक्षा में विभिन्न कौशलों के प्रयोग का अभ्यास कराया जाता है और छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह भाषा ही प्रयोग की आदत डालें। अतः छात्रों की भाषा ही कुशलता को परखने के लिए परीक्षणों में ऐसे व्यवहारिक तथ्यों का भी समावेश करना आवश्यक है।

xi. **परीक्षण में मनोवैज्ञानिकता का समावेश होना चाहिए-** रक्षा के लिए तैयार किए गए परीक्षणों को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित करना आवश्यक है। यदि परीक्षण सामग्री में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का समावेश है तो छात्रों उत्तर देने के लिए स्वयं ही उत्प्रेरित होता है। यह देखा गया है यदि परीक्षण सामग्री में प्रारंभ में ही जटिल प्रश्नों का समावेश किया जाता है तो

छात्रों उत्तर देने के लिए स्वतः तैयार नहीं होते, यदि होते भी हैं तो वे इतने आतंकित होते हैं उनका उत्तर गलत हो जाता है। इस प्रकार परीक्षण निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करने में असफल होता है।

3.6.2 वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का निर्माण एवं उपयोग

अन्य भाषा शिक्षण में वस्तुनिष्ठ परीक्षण की महत्ता उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है। इसकी सहायता से भाषा अधिगम के विविध पक्षों का परीक्षण सफलता से किया जा सकता है । विभिन्न भाषाई कौशलों से संबंधित सूक्ष्म कुशलताओं का परीक्षण इनके द्वारा संभव है। उदाहरण के लिए , श्रवण कौशल में ध्वनियों के सूक्ष्मतम अंतर की पहचान , भाषण कौशल में ध्वनियों के उच्चारण तथा मौखिक अभिव्यक्ति की कुशलता का विकास, वाचन तथा लेखन संबंधी दक्षताएं, शब्द भंडार तथा व्याकरणिक संरचना की जानकारी आदि में वस्तुनिष्ठ अभ्यासों की उपादेयता स्वतःस्पष्ट है।

i. **परीक्षण बिंदुओं की वस्तुनिष्ठता-** छात्रों से वस्तुनिष्ठ उत्तरों की प्राप्ति के लिए ऐसे प्रश्नों का गठन किया जाता है जिनके उत्तर निश्चित हो। वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जाता है जिससे छात्र निर्दिष्ट उत्तर दे सके। इस से छात्रों में प्राप्त उत्तर का मूल्यांकन भी सहज एवं सरल होता है । यद्यपि इन परखों के निर्माण में अधिक समय लगता है परंतु उनका मूल्यांकन बहुत कम समय में होता है। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा मूल्यांकन करने पर भी इनके परिणाम में एकरूपता पाई जाती है। मुल्यांकन की सहजता यांत्रिक साधनों के प्रयोग से अधिक स्पष्ट हो जाती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की विश्वसनीयता तथा यांत्रिक साधनों के प्रयोग की सुविधा के कारण यह परीक्षण अधिक प्रचलित हैं।

ii. **परीक्षण में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली -** वस्तुनिष्ठ परीक्षण में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली में भी वस्तुनिष्ठता लाने के लिए एकरूपता स्थापित की जाती है। परीक्षण बिंदु अनिवार्यता प्रश्न सूचक वाक्य ही नहीं होते, सामान्य कथन के रूप में भी प्रस्तुत किए जाते हैं। बहुविकल्पीय परीक्षण बिंदुओं में प्रारंभिक अंश को ' मुख्य वाक्य' कहते हैं। उनके साथ जो विकल्प प्रस्तुत किए जाते हैं उन्हें, ' विकल्प' या ' उत्तर' कहां जाता है कहा जाता है इन विकल्पों में से एक विकल्प सही होता है, उसे ' सही उत्तर' कहा जाता है। अन्य विकल्पों अथवा गलत उत्तरों को ' अवधान अंतरक' कहते हैं। यह अवधान अंतरक सामान्यता इतने मिलते जुलते होते हैं कि छात्रों को सही उत्तर का भ्रम होता है। यदि यह अंतर के स्पष्ट रूप से गलत प्रतीत होते हैं तो सही उत्तर का पता लगाना सरल हो जाता है। परंतु ऐसे अवधान अंतरक परीक्षण की दृष्टि से बहुत उपयोगी नहीं होते।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण बिंदुओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- अनुच्छेद बिंदु तथा एकाकी बिंदु। अनुच्छेद बिंदु में पूरे अनुच्छेद को परीक्षण बिंदु के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसमें एक अनुच्छेद, एक संक्षिप्त कविता अथवा एक वार्तालाप के अवतरण का प्रयोग किया जा सकता है। इन अवतरणों को परीक्षण पुस्तिका में लिखित रुप से अथवा टेप रिकॉर्ड के द्वारा

प्रस्तुत किया जाता है या भाषा प्रयोगशाला में छात्रों के सम्मुख मौखिक रुप से प्रस्तुत किया जाता है। इन अवतरणों से सम्बद्ध कुछ प्रश्न छात्रों से पूछे जाते हैं। वह अंश अथवा प्रश्न जो अवतरणों के साथ जुड़े हुए हो , ऐसे होने चाहिए, जिनसे यह सही-सही अनुमान लगाया जा सके कि छात्र कितना समझते हैं। अवतरण इस प्रकार का होना चाहिए कि छात्रों से पढ़कर अथवा सुनने के बाद समझ कर ही उत्तर दे सके। भाषाई परीक्षणों में लिखित अवतरण के बदले किसी दृश्य सामग्री का भी उपयोग किया जा सकता है इसके द्वारा अर्थग्रहण की कुशलता का परीक्षण किया जाता है।

एकाकी परीक्षण बिंदुओं में प्रायः वाक्य स्वतंत्र होता है और इसकी सहायता से शिक्षण बिंदुओं का परीक्षण संभव है यह सामग्री परस्पर संबंध नहीं होती प्रत्येक प्रश्न अथवा बाकी एक दूसरे से भिन्न होता है इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है इन दोनों प्रकार के परीक्षणों से छात्रों की भाषाई कुशलता के मापन का प्रयत्न किया जाता है।

iii. **परीक्षण-बिन्दुओं का चयन एवं अनुस्तरीकरण-** परीक्षण तैयार करने के पूर्व अध्यापक को यह जानना आवश्यक है कि उसे किन शिक्षण एवं अधिगम एवं अधिगम-बिंदुओं का मूल्यांकन करना है। इसके लिए कक्षा में पढाई अथवा सिखाई गई सामग्री के आधार पर परीक्षण-बिन्दुओं की सूची तैयार करना आवश्यक है। ये परीक्षण-बिंदु-विस्तृत,स्पष्ट एवं पूर्ण होने चाहिए जिससे पाठ्यवस्तु में प्रतिपादित सभी बिन्दुओं का परीक्षण हो सके। परीक्षण-बिन्दुओं का चयन करने के पश्चात सरलता से जटिलता के क्रम में उनको अनुस्तरीकरण करने के पश्चात उनपर आधारित प्रश्नों का निर्माण करना आवश्यक होता है। सूचीबद्ध परीक्षण-बिन्दुओं तथा उनसे संबंधित प्रश्नों में वांछित सुधार लाने के लिए इनका प्रयोग लघु परीक्षणों (क्विज) में करना उचित है। इन के आधार पर इन परीक्षणों की भाषा में, इनके गठन में एवं परीक्षणों के उत्तर में वांछित सुधार किया जाता है। परीक्षणों के पूर्व "क्विजों" में इनका प्रयोग करने का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्र इन प्रश्न के उत्तर देने की कला से परिचित हो जाए तथा मनोवैज्ञानिक रूप से वह विभिन्न परीक्षणों के लिए तैयार हो जाएं।

प्रश्नों के निर्माण में शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए की सिखाई गई समस्त संरचनाओं, शब्दावली तथा अन्य शिक्षण बिंदुओं का समावेश परीक्षण में कर लिया जाए। परीक्षण में अत्यंत सरल अंशो का समावेश नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार अत्यंत जटिल सामग्री का भी प्रयोग वर्जित है।

iv. **परीक्षण को अंतिम रूप प्रदान करना-** वस्तुनिष्ठ परीक्षणों को परीक्षण बिंदुओं, क्विजों तथा अन्य आवश्यक युक्तियों की सहायता से तैयार कर लेने पर अंतिम रुप प्रदान करने की आवश्यकता होती है। प्रश्नों में दिए गए निर्देशों, प्रश्नों की भाषा एवं गठन में पर्याप्त सुधार अपेक्षित है। छात्रों के स्तर एवं उनकी भाषा ही योग्यता को ध्यान में रखते हुए प्रश्नों के गठन एवं उनके स्तर में अपेक्षित परिवर्तन किया जाता है। यह निर्धारित कर लेने पर कि प्रश्नों से वांछित

उत्तर प्राप्त होता है, उनमें परस्पर संबद्धता है, उनका क्रम ठीक है, अध्यापक उन प्रश्नों का समावेश परीक्षण में करता है।

परीक्षण के लिए निर्धारित प्रश्नों के सही उत्तरों को अध्यापक क्रम से सूचीबद्ध करता है। इनकी सहायता से वह परीक्षण को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाता है। लिखित परीक्षणों के लिए मूल्यांकन- तालिका पहले से ही तैयार करनी चाहिए। इसी प्रकार मौखिक परीक्षणों में भी मूल्यांकन की रूपरेखा पहले से निर्धारित करना आवश्यक है। लघु उत्तर वाले प्रश्नों अथवा निबंधात्मक प्रश्नों के उत्तरों में निहित बिंदुओं की सूची तैयार करना तथा उनके लिए अंक निश्चित करना भी जरूरी है। इनकी सहायता से छात्रों के उत्तरों का मूल्यांकन अधिक वस्तुनिष्ठता से किया जा सकता है और मूल्यांकन में एकरूपता स्थापित की जाती है।

मौखिक परीक्षणों के लिए परीक्षण- तालिका तैयार करते समय कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है। मौखिक परीक्षण द्वारा अनेक परीक्षण बिंदुओं का परीक्षण किया जाता है, अतः इनसे संबंधित विभिन्न कुशलताओं का परीक्षण आवश्यक होता है। परीक्षण- तालिका में विविध परीक्षण- बिंदुओं के लिए अंक निर्धारित करना उचित है। इसके साथ ही छात्र की विशिष्ट योग्यता के लिए अतिरिक्त अंक अथवा श्रेणी प्रदान करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए वैयक्तिक रूप से छात्रों का मूल्यांकन करना चाहिए। छोटी कक्षाओं में सामूहिक मूल्यांकन किया जा सकता है। परंतु विशिष्ट कुशलताओं का परीक्षण करने के लिए वैयक्तिक मूल्यांकन ही उपयोगी होता है। सारांश यह है की परीक्षण के लिए परीक्षण तालिका का निर्माण करना आवश्यक है जिससे निर्धारित बिन्दुओं का सही- रही मूल्यांकन किया जा सके।

निष्कर्ष यह है कि परीक्षण का प्रयोग के पूर्व अध्यापक को पहले से तैयार रहना जरूरी है जिससे उसकी परीक्षण सामग्री तथा उसके प्रयोग में किसी प्रकार की त्रुटि ना हो। छात्रों को परीक्षण को समझने और उत्तर देने में पर्याप्त सुविधा देखनी चाहिए। यह देखना भी जरूरी है कि परीक्षण सच्चे अर्थों में उपयोगी है जिससे अध्यापक को निश्चित परिणाम का ज्ञान हो सके और वह शिक्षण- अधिगम- प्रक्रिया में सफलता से उस ज्ञान का उपयोग कर सके।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न कई तरह के होते हैं। इनमें से निम्नलिखित प्रकार मुख्य माने जाते हैं-

i. **सत्य असत्य परीक्षण-** इन परीक्षणों में किसी तथ्य से सम्बद्ध कथन की सत्यता और असत्यता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। छात्रों को यह बताना होता है कि अमुक कथन सत्य है अथवा नहीं।
ii. **बहुविकल्प प्रश्न-** एक प्रश्न के साथ कई विकल्प दिए जाते हैं। उनमें से केवल एक विकल्प ही सही होता है। छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सही विकल्प का चयन करें।
iii. **रिक्त स्थान पूर्ति-** इस परीक्षण में वाक्य में रिक्त स्थान रहता है। छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे सही शब्द के चयन द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

iv. **अनुरूपण-** भाषाई सामग्री को दो खंडों में प्रस्तुत किया जाता है। छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वह शब्द अथवा वाक्य के पहले अंश से दूसरे अंश का मिलान करें।

3.7 उपलब्धि-परीक्षणों के निर्माण की प्रक्रिया एवं विशेषताएँ

अपने निर्माण एवं स्वरुप की दृष्टि से परीक्षण दो प्रकार के होते है 1. मानकीकृत एवं 2. अध्यापक निर्मित। सबसे पहले इन दोनों प्रकार के उपलब्धि परीक्षण का अंतर एक तालिका के माध्यम से देखते हैं :

3.7.1 अध्यापक निर्मित एवं मानकीकृत परीक्षण का अंतर

अध्यापक निर्मित परीक्षण	मानकीकृत परीक्षण
1. एक अध्यापक समय-समय पर अपने छात्रों की उपलब्धियों का मापन करने के लिए इन परीक्षणों का निर्माण करता है।	1.अध्यापक कृत अनौपचारिक परीक्षणों की तरह इनका निर्माण करना इतना सरल नहीं है।
2. ये परीक्षण मौखिक ,प्रायोगिक एवं लिखित (निबंधात्मक,लघु उत्तर और वस्तुनिष्ठ) परीक्षण होते हैं।	2. ये परीक्षण सामान्यतः वस्तुनिष्ठ होते हैं।
3. इन परीक्षणों के अनुप्रयोग का दायरा सीमित होता है।	3.इस प्रकार के परीक्षण में विषयवस्तु,प्रशासन,अंकन,कार्य और व्याख्या सब पूर्व निश्चित या मानकीकृत होते हैं । जिससे कि पूर्ण शुद्धता के साथ एक ही परीक्षण,अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समय में एक समान आयु समूह या ग्रेड स्तर के विद्यार्थियों के लिए प्रयोग में लाया जा सकें।
4. ये परीक्षण विद्यालयों के अध्यापकों द्वारा अपनी-अपनी कक्षा के उपलब्ध शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों तथा कक्षा-कक्ष के विशिष्ट उद्देश्यों से सम्बंधित परिणामों को सीधे ही मापन करने के लिए उनकी अपनी जरूरतों के अनुसार तैयार किए जाते हैं।	4.ये परीक्षण अनुसंधानकर्ताओं या अनुभवी व्यवसायियों द्वारा तैयार किए जाते हैं।
5. ये परीक्षण प्रत्येक अध्यापक के अपने संसाधनों के अनुरूप ही होते हैं तथा कक्षा-कक्ष शिक्षण अधिगम व्यवस्था के अनुसार मितव्ययी भी होते हैं।	5.कक्षा-कक्ष शिक्षण अधिगम व्यवस्था के लिहाज से ये काफी खर्चीले होते हैं।

अध्यापक कृत एवं मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण के अनुप्रयोग में अंतर-

अध्यापक कृत उपलब्धि परीक्षणों को निम्न कार्यों के सम्बन्ध में प्राथमिकता दी जाती है-

i. दिन प्रतिदिन के अनुदेशनात्मक निर्णय लेने में।
ii. विद्यार्थियों के अधिगम परिणामों का निर्माणात्मक मूल्याङ्कन करने के लिए।
iii. जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी विद्यार्थियों को उनके अधिगम परिणामों से परिचित कराकर उन्हें अभिप्रेरणा प्रदान करने के लिए।
iv. किसी विशेष अधिगम क्षेत्र में विद्यार्थियों की कठिनाइयों एवं कमजोरियों का निदान करने तथा उनमें समय पर सुधार करने के लिए।
v. विद्यार्थियों के ग्रेडिंग करने के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए।

मानकीकृत उपलब्धि परीक्षणों को निम्न कार्यों के लिए प्राथमिकता दी जाती है-

i. विद्यार्थियों के बारे में उनका आगे की कक्षाओं या व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिला देने सम्बन्धी निर्णय लेने के कार्य में इनसे विश्वसनीय ,वैध और वस्तुनिष्ठ रूप में मदद मिलती है।
ii. क्योंकि इनमें अधिगम परीक्षणों की शक्ति और कमजोरियों को अच्छी तरह पहचानने की सामर्थ्य पाई जाती है इसलिए इन परीक्षणों से निर्देशन और परामर्श निर्णय लेने में पर्याप्त सहायता मिलती है।
iii. क्योंकि इनमें एक प्रयोज्य की दूसरे प्रयोज्यों से भलीभांति तुलना करने की क्षमता होती है,इसलिए समूह में से किसका चयन किया जाए ,यह निर्णय लेने में पर्याप्त सहायता मिलती है।
iv. इनसे किसी विस्तृत क्षेत्र या प्रदेश में लागू किए जाने वाले पाठ्यक्रम या नीतिगत निर्णयों को लेने में उचित मदद मिलती है।
v. किसी विशेष क्षेत्र,राज्य या देश के विद्यालयों तथा इनमें विद्यमान अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की कार्यक्षमता की तुलना और मूल्यांकन हेतु इन्हें भलीभांति प्रयोग में लाया जाता है।

3.7.2 एक अध्यापक कृत एवं मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण के सोपान

एक अध्यापक कृत उपलब्धि परीक्षण के सोपान अग्रलिखित प्रकार से होते हैं

i. लक्ष्य निर्धारित करना
ii. पूर्ण पाठ्यक्रम या इकाई विशेष का ध्यान रखना
iii. प्रश्नों के प्रकार का निर्णय
iv. समय का निर्णय
v. ब्लू प्रिंट तैयार करना

vi. परीक्षण के प्रारूप का निर्णय
vii. पद विश्लेषण
viii. परीक्षण के अंतिम प्रारूप को तैयार करना
ix. अंकन तालिका तैयार करना

सोपान 1- लक्ष्य-निर्धारित करना

कक्षा में अध्यापक विषय के जिस भाग या इकाई विशेष को पढ़ा रहा है उसके शिक्षण-अधिगम उद्देश्य क्या हैं,सर्वप्रथम उनकी ओर ध्यान देना चाहिए। अध्यापक उस विषय,प्रकरण या इकाई विशेष के उद्देश्यों का ज्ञान,अवबोध,अनुप्रयोग,कौशल,रूचि,अभिवृत्ति आदि प्राप्य उद्देश्यों के रूप में स्पष्टतापूर्वक उल्लेख करना चाहिए।

सोपान 2- पूर्ण पाठ्यक्रम या इकाई विशेष का ध्यान रखना

अध्यापक को यह देखना चाहिए कि उसने अपनी कक्षा में विषयवस्तु के कितने भाग का शिक्षण किया है। इसको ध्यान में रखते हुए उसे उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय पढाई गई सम्पूर्ण विषयवस्तु पर प्रश्नों या पदों का निर्माण करना चाहिए। यद्यपि किसी बड़ी इकाई या पढाए गए प्रकरण को नहीं छोड़ा जाना चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कक्षा में अध्यापक के द्वारा जिन बातों पर चर्चा की गई है उन सभी को परीक्षण में शामिल किया जाए। इसलिए उद्देश्य यह रखना चाहिए कि जो अधिगम अनुभव विद्यार्थियों को दिए जाएँ उनसे सम्बंधित विभिन्न पक्षों को अच्छी तरह सोच समझकर परीक्षण में सम्मिलित किया जाए।

सोपान 3 - प्रश्नों के प्रकार का निर्णय

परीक्षण प्रपत्र में किस प्रकार के प्रश्नों को शामिल किया जाए ,इस बारे में निर्णय लेना ,उपलब्धि परीक्षण निर्माण का एक आवश्यक पक्ष है। एक संतुलित लिखित उपलब्धि परीक्षण में तीनों प्रकार के प्रश्न निबंधात्मक,लघु-उत्तर एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न होने चाहिए। इनके संतुलित प्रतिनिधित्व का भी ध्यान रखना चाहिए।

सोपान 4 - समय का निर्णय

उपलब्धि परीक्षण को हल करने के लिए विद्यार्थियों को कितना समय दिया जाएगा ,यह निर्णय भी पहले कर लेना चाहिए एवं उपलब्धि परीक्षण में इसका स्पष्ट लिखित वर्णन होना चाहिए।

सोपान 5 - ब्लू प्रिंट तैयार करना

उपलब्धि परीक्षण के नियोजन और निर्माण प्रक्रिया का यह चुनौतीपूर्ण सोपान है।ब्लू-प्रिंट से तात्पर्य एक प्रश्न-पत्र निर्माण हेतु किए जाने वाले निर्णय से हैं जिसमें विशिष्ट उद्देश्यों ,प्रकरणों तथा प्रश्नों के प्रकार का

ध्यान रखते हुए , निर्मित प्रश्नों के लिए अंकों के वितरण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है । इसलिए किसी ब्लू-प्रिंट को तैयार करते समय चार बातों पर ध्यान देना चाहिए-परीक्षण किए जाने वाले उद्देश्य,विषयवस्तु जिनपर प्रश्न की रचना की जानी है,पूछे जाने वाले प्रश्नों का प्रकार और प्रश्न-पत्र हल करने के लिए दिया जाने वाला समय ।

सोपान 6- परीक्षण के प्रारूप का निर्णय

उपलब्धि परीक्षण को उचित प्रारूप प्रदान करने के लिए उसमें शामिल किए जाने वाले प्रश्नों को समुचित रूप से गठित एवं व्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है । इस कार्य के लिए निम्न बातों से सहायता मिल सकती है :

i. निबंधात्मक और वस्तुपरक प्रश्न अलग-अलग भागों में रखे जाने चाहिए , लघु-उत्तर प्रश्नों को उनकी प्रकृति के आधार पर इन दोनों भागों में रखना जाना चाहिए लघु उत्तर प्रश्नों को उनकी प्रकृति के आधार पर इन दोनों भागों में से किसी एक भाग में रखा जा सकता है या उसके लिए अलग एक भाग बनाया जा सकता है । प्रत्येक भाग के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अलग-अलग समय निर्धारित होना चाहिए और उसे परीक्षण-प्रपत्र में भी लिखा जाना चाहिए ।
ii. प्रत्येक भाग के लिए अलग-अलग निर्देश होना चाहिए या दोनों भागों के लिए सामान्य निर्देश भी दिए जा सकते है ।
iii. परीक्षण-प्रपत्र में प्रश्नों को सरल से कठिन क्रम में व्यवस्थित करना चाहिए ।
iv. वस्तुपरक प्रश्नों में सभी प्रकार के प्रश्नों का समावेश ठीक नहीं होता क्योंकि अलग-अलग प्रकार के प्रश्नों के लिए अलग-अलग प्रकार के निर्देश पढने होते है इसमें विद्यार्थियों का बहुत सा समय नष्ट हो जाता है । यदि संभव हो तो केवल बहुविकल्पी प्रश्नों को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि ये अन्य प्रश्नों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय,वैध और वस्तुपरक होते हैं ।
v. अच्छा होगा यदि परीक्षण में 20% से 30% अधिक प्रश्न बनाये जाएँ जिससे कि प्रश्न-पत्र को अंतिम रूप देते समय निरर्थक या कम महत्त्व के प्रश्नों को हटाया जा सकें ।

सोपान 7 - परीक्षण लेना तथा पद- विश्लेषण करना

जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है इस प्रकार से निर्मित परीक्षण को उसकी उपयुक्त जांच एवं पद विश्लेषण करने हेतु विद्यार्थियों के उचित प्रतिदर्श पर प्रशासित किया जाना चाहिए । पद विश्लेषण के कार्य को यह मुख्य रूप से निम्न बातों के संदर्भ में संपादित करने का प्रयत्न किया जाता है:

i. गलतियों, अस्पष्टताओं या भ्रांतियों के निवारण हेतु प्रत्येक पद या कठिनाई मूल्य निर्धारित करने के लिए ।
ii. प्रत्येक पद का विभेदीकरण मूल्य निर्धारित करने के लिए ।
iii. इस प्रकार से हम अपने निर्मित परीक्षण से सभी प्रकार के दोषपूर्ण पदों से मुक्ति पाने में मदद मिल जाती है ।

सोपान 8- परीक्षण के अंतिम प्रारूप को तैयार करना

निर्मित किए गए उपलब्धि परीक्षण के प्रारंभिक प्रारूप का परीक्षण करने तथा पद विश्लेषण करने के उपरांत जो प्रश्न अनुचित प्रतीत होते हैं, उन्हें परीक्षण में से निकाल देना चाहिए और जिन प्रश्नों या भाषा में कुछ सुधार की जरूरत है उन्हें ठीक कर लेना चाहिए। यदि जरूरत हो तो परीक्षण को और अधिक कार्यपरक बनाने के लिए कुछ नए पद भी जोड़े जा सकते हैं। फिर परीक्षण के इस अंतिम प्रारूप को छपवा लेना या फोटोकॉपी करा लेना या साइक्लोस्टाइल, जैसी भी जरूरत या सुविधा हो विद्यार्थियों की उपलब्धि का आवश्यक मूल्यांकन करने के लिए, उसी रुप में तैयार करा लेना चाहिए।

सोपान 9- अंक-तालिका तैयार करना

अंकन कार्य में वस्तुपरकता लाने के लिए अंकन विधि को पहले से निश्चित कर लेना चाहिए। केवल वस्तु परक प्रश्नों के लिए ही नहीं वरन निबंधात्मक प्रश्नों तथा लघु उत्तर प्रश्नों के लिए भी अंकित योजना पहले से निर्धारित की जानी चाहिए। इसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए

i. विभागों और उपविभागों के अनुसार अंकों का विभाजन
ii. प्रश्न के उत्तर में सभी सोपानों या बिंदुओं के लिए अंको का विभाजन
iii. लघु उत्तर या अत्यंत लघु उत्तर वाले प्रश्नों का उत्तर देने के लिए पंक्तियों या निर्धारित शब्दों की संख्या का निर्धारण।
iv. निबंधात्मक प्रश्न के लिए अंकों का निर्धारण
v. विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तर में तृतीय सोपान या बिंदु के लिए भार (Weightage) का निर्धारण।

एक मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण के सोपान

एक मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण विकास की चार अवस्थाओं से गुजरती है। इन चारों अवस्थाओं और उनकी उप-अवस्थाओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है :

प्रथम सोपान : परीक्षण का नियोजन

- परीक्षण के उद्देश्य, प्रयोजनों एवं क्षेत्र की पहचान करना।
- जिस क्षेत्र में परीक्षण का प्रयोग किया जाना है उसके वर्तमान पाठ्यक्रम का अवलोकन या पुनर्वीक्षण
- प्रश्नों के प्रकार और प्रारूप, समय, परीक्षण के स्थान और अंकन विधि के बारे में निर्णय लेना।
- विशिष्टताओं की एक तालिका या ब्लूप्रिंट तैयार करना।

द्वितीय सोपान: परीक्षण का निर्माण

- परीक्षण के पदों या प्रश्नों को तैयार करना और उनका लेखन।

- अनुक्रिया प्रारूप का चुनाव एवं निर्माण।
- पदों या प्रश्नों की व्यवस्था और उसके मापन पर ध्यान देना
- परीक्षण के निर्देशों को तैयार करना

तृतीय सोपान : पदों का पुनर्वीक्षण,परीक्षण करना और परीक्षण को उचित रुप देना

- अस्पष्ट,पक्षपातपूर्ण पदों को हटाने के लिए उनका पुनरावलोकन
- परीक्षण समष्टि के छोटे प्रतिदर्श पर पदों का परीक्षण करना
- पदों की गुणात्मकता को वस्तुनिष्ठ पुष्टिकरण प्रदान करने के लिए पद-विश्लेषण करना
- परीक्षण को उचित रूप देना- पद विश्लेषण के उपरांत बचे हुए पदों को उचित रूप से व्यवस्थित करना

चतुर्थ सोपान: परीक्षण का मानकीकरण

- समष्टि के एक बड़े प्रतिदर्श पर परीक्षण का प्रशासन
- नोर्म्स का विकास
- परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता स्थापित करना

3.7.3 वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षणों के मानक

परीक्षणों का निर्माण विशिष्ट कुशलता सापेक्ष प्रक्रिया है। सभी अध्यापक परीक्षणों का निर्माण समान रुप से और सहज कुशलता से नहीं कर पाते। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण, सतर्कता एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में परीक्षण निर्माण के लिए विशेष कुशलता अपेक्षित है। तैयार किए गए प्रश्नों में निश्चित विशेषताओं का समावेश अनिवार्य माना जाता है। अतः वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के चयन एवं निर्माण में निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

i. **वैधता-** परीक्षण का प्रयोग विशिष्ट भाषाई कुशलता के मापन के लिए किया जाता है। किसी भी परीक्षण को तभी उपयुक्त अथवा तकनीकी शब्दावली में " वैध" माना जाता है जब वह निश्चित कुशलता का सही मापन करता है। जिस उद्देश्य से परीक्षण किया जा रहा है, उस उद्देश्य की पूर्ति होने पर ही परीक्षण की वैधता स्वीकार की जाती है। दूसरे शब्दों में जिस योग्यता के मापन के लिए विशिष्ट परीक्षण तैयार किया गया है उसका मापन करने के पश्चात ही उस परीक्षण को वैध माना जा सकता है। किसी परीक्षण की वैधता को निरपेक्ष रूप से सही संदर्भों में नहीं स्वीकार किया जा सकता। कोई परीक्षण एक उद्देश्य को प्राप्त करने में वैधता के मापदंड पर खरा उतरता है, परंतु वही परीक्षण अन्य उद्देश्यों के संदर्भ में वैधता रहित भी हो सकता है। जो भी हो, वैधता वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की प्रमुख कसौटी है।

ii. **विश्वसनीयता-** वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की दूसरी विशेषता उनकी विश्वसनीयता है। विश्वसनीयता का संबंध परीक्षण -परिणामों की वस्तुनिष्ठता तथा स्थायित्व से है। परीक्षणों का मूल्यांकन कितनी ही बार, कितने ही भिन्न भिन्न व्यक्तियों अथवा यांत्रिक साधनों के द्वारा क्यों न किया जाए, निर्धारित परिणामों में निश्चितता, स्थायित्व तथा एकरूपता का गुण वर्तमान रहता है। परीक्षण-परिणामों पर विश्वास किया जा सकता है और यह माना जाता है की विभिन्न समय में वह परीक्षण योग्यता- विशेष का मापन सत्यता से करता है।

iii. **वस्तुनिष्ठता-** वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की प्रमुख विशेषता उसकी वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य यह है की परीक्षण से प्राप्त परिणाम परीक्षक की व्यक्तिगत विचार धाराओं, रुचियों तथा मान्यताओं से प्रभावित नहीं होते। परीक्षक के राग द्वेष का अथवा उसके संवेगात्मक मनोभावों का परीक्षण के परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। छात्रों के ज्ञान का परीक्षण निरपेक्ष दृष्टि से किया जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन में व्यक्तिनिष्ठता नहीं आ पाती। एकाधिक परीक्षकों द्वारा दिए गए अंको में समानता पाई जाती है। कई परीक्षकों द्वारा दिए गए प्राप्तांकों में एवं उनके निर्णयों में एकरूपता होने पर ही परीक्षण वस्तुनिष्ठ माना जाता है। इस प्रकार छात्र की योग्यता का सही सही मापन इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा संभव है।

iv. **समग्रता-** एक अच्छे परीक्षण में समग्रता का गुण अनिवार्यतः वर्तमान रहता है। समग्रता से अभिप्राय है कि उस परीक्षण के द्वारा छात्र की विशिष्ट योग्यता का मापन समग्र रुप से किया जा सकता है। उसकी योग्यता का खंडित अथवा आंशिक मूल्यांकन परीक्षण के उद्देश्य को पूर्ण करने में असमर्थ होता है, इससे निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती। इसके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण में इतने प्रश्नों का समावेश किया जाए जिससे छात्र की विशिष्ट योग्यता से संबंधित सभी पक्षों का पूरा परिचय प्राप्त हो सके। उदाहरण के लिए, छात्र की मौखिक अभिव्यक्ति की कुशलता का मापन करते समय परीक्षण में इतने प्रश्नों का अनिवार्य रूप से समावेश होना चाहिए की मौखिक अभिव्यक्ति से संबंधित सभी पक्षों का परीक्षण किया जा सके।

v. **विभेदकता-** अच्छे परीक्षण का मापदंड यह है कि वह छात्र की उपलब्धियों का पूर्ण विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करें कि उन के आधार पर उनकी योग्यता का स्तर निर्धारित किया जा सके। कक्षा में उपलब्धियों की दृष्टि से श्रेष्ठ छात्र कौन से हैं, सामान्य छात्र कौन से हैं और कमजोर छात्र कितने हैं, इसकी जानकारी परीक्षणों के आधार पर प्राप्त होनी चाहिए। इस प्रकार छात्रों की योग्यता तथा उनके स्तर की विभेदकता का निर्धारण करने के लिए विभेदकता का गुण आवश्यक है। इससे अध्यापक को शिक्षण में सुगमता होती है और वह विभिन्न स्तर के छात्रों के लिए उपयुक्त सामग्री के चयन एवं प्रस्तुतीकरण में समर्थ होता है। इतना ही नहीं, परीक्षण की विभेदकता के फल स्वरुप वह एक ही वर्ग के विभिन्न योग्यता वाले छात्रों को विभिन्न शिक्षण एवं अधिगम क्रियाओं में संलग्न रखता है, जिससे सभी छात्रों को सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

vi. **व्यवहारिकता -** परीक्षण की उत्कृष्टता का प्रमाण उसकी व्यवहारिकता है । परीक्षण अपने आपमें उत्कृष्ट हो सकता है परंतु व्यवहारिकता के अभाव में उसकी उत्कृष्टता निरर्थक सिद्ध होती है । व्यवहारिकता से तात्पर्य उसके प्रयोग एवं मूल्यांकन में सरलता एवं उपयुक्तता से है । परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं की परीक्षण अति सरल हो । यह आवश्यक है कि परीक्षण छात्रों के स्तर के अनुकूल हो ,उसकी भाषा सरल एवं बोधगम्य हो तथा उसके प्रयोग में कोई कठिनाई न हो । इसके लिए परीक्षण निर्माण करते समय अथवा परीक्षणों का चयन करते समय अध्यापक को उसके व्यवहारिक पक्ष पर विशेष रुप से ध्यान केंद्रित करना चाहिए । जिन परीक्षणों के प्रयोग एवं मूल्यांकन में बहुत समय लगता है तथा अधिक कठिनाई होती है, वह परीक्षण दोषपूर्ण माने जाते हैं । अतः सभी दृष्टियों से परीक्षणों में व्यवहारिकता का गुण आवश्यक माना गया है ।

vii. **भाषाई कौशलों का परीक्षण -** अन्य भाषा शिक्षण में भाषाई कुशलताओं के परीक्षण का विशेष महत्व है । भाषाई कौशल की विशेषता के अनुरूप विविध परीक्षणों के निर्माण की आवश्यकता होती है । इन परीक्षणों के निर्माण में उपर्युक्त सभी तथ्यों पर ध्यान देना तथा आवश्यक विशेषताओं का समावेश करना जरूरी समझा जाता है । विशिष्ट योग्यता का मापन करने के लिए परीक्षणों में विविध प्रकार की सामग्री का तथा विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है यद्यपि इन परीक्षणों का उद्देश्य छात्रों के भाषाई योग्यता का मूल्यांकन करना है

viii. परंतु यह मूल्यांकन उनके भाषा ही विकास में सहायक होना चाहिए ।

- भाषा- परीक्षणों की चर्चा करते समय कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है । यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा की परीक्षण की परंपरागत तकनीकें, जैसे- निबंध, साक्षात्कार आदि सही अर्थों में भाषाई परीक्षण नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि इन में भाषा के अतिरिक्त अन्य तत्वों का भी समावेश होता है, जैसे- कल्पना, स्मृति आदि । फिर भी इनका प्रयोग आवश्यक समझा जाता है।
- भाषाई कौशलों की परीक्षण में परीक्षण- बिंदु का चयन प्राथमिक आवश्यकता है । यह निश्चित कर लेना चाहिए की कौशल- विशेष के परीक्षण ने किस बिंदु का परीक्षण करना है ।भाषाई परीक्षण में एक समय में एक ही बिंदु का परीक्षण करना उचित है, एकाधिक बिंदुओं का नहीं । उदाहरण के लिए, श्रवण- कौशल में ध्वनि अभिज्ञान का परीक्षण करते समय बोधन का परीक्षण उचित नहीं ।
- परीक्षण बिंदु का निश्चय हो जाने पर परीक्षण के चयन का कार्य शेष रहता है । परीक्षण- चयन में छात्र की योग्यता- स्तर पर भी ध्यान देना आवश्यक है । उदाहरणार्थ, वाचन अनुतान- परीक्षण का एक माध्यम हो सकता है । परंतु प्रारंभिक स्तर पर लिपि- प्रतीकों से अपरिचित छात्र के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है ।

- परीक्षण- चयन में लक्ष्य- सापेक्षता तथा उपयुक्तता के साथ- साथ सरलता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। यह सरलता द्विआयामीय है - परीक्षण- प्रक्रिया में सरलता तथा परीक्षक- लक्ष्यों की सुस्पष्टता-जनित सरलता।
- अंत में परीक्षण- परिणामों की वस्तुनिष्ठता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इस संदर्भ में परीक्षण की दो आधारभूत मान्यताओं पर ध्यान देना आवश्यक है- विश्वसनीयता एवं वैधता। वैधता उसकी सत्यता एवं सार्थकता की द्योतक है। वैधता विश्वसनीयता के संदर्भ में ही ग्राह्य है।
- भाषाई कौशलों के परीक्षण- निर्माण में उपर्युक्त सभी मुद्दों को ध्यान में रखना में रखना आवश्यक है। तभी परीक्षणों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है।

अभ्यास प्रश्न

3. एक परीक्षण में वैधता से क्या आशय है ?
4. परीक्षण में विश्वसनीयता से क्या तात्पर्य है ?
5. नीतिगत निर्णय लेने,निर्देशन एवं परामर्श में किस प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है?

3.8 सारांश

एक उपलब्धि परीक्षण शिक्षण अधिगम प्रणाली का एक आवश्यक और महत्वपूर्ण भाग है। पूर्व निर्धारित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों और विद्यार्थियों के द्वारा जो वैयक्तिक और सामूहिक प्रयास किए जाते हैं यह उनका मापन करने में शिक्षकों और विद्यार्थियों की सहायता करता है। अपने प्रयोजन का अच्छी तरह निर्वहन करने के लिए, एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण को शिक्षा प्रणाली के मापदंड और कसौटियों पर खरा उतरना जरुरी होता है। इस इकाई में हमने उपलब्धि परीक्षण के विभिन्न विशेषताओं, आवश्यकता, महत्व, उपयोगिता, मानकीकृत और अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षणों में अंतर ,उपयोग एवं इन परीक्षणों के लिए आवश्यक मानकों का अध्ययन किया।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. संरचनावादी विचारधारा भाषा को यांत्रिक प्रक्रिया मानती है, जिसमें भाषा को उत्तेजना के प्रति की गई प्रतिक्रिया माना गया है।
2. भाषा मुख्यतः कौशल प्रधान विषय है जबकि अन्य विषय ज्ञान और विषय-वस्तु प्रधान है।

3. परीक्षण का वह गुण जो यह निश्चित करता है कि क्या परीक्षण उसी योग्यता,कौशल का मापन करता है जो इसका उद्देश्य था।
4. यदि एक परीक्षण का मूल्यांकन अनेकों बार, अनेक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों अथवा यांत्रिक साधनों के द्वारा किया जाए, और निर्धारित परिणामों में निश्चितता, स्थायित्व तथा एकरूपता का गुण वर्तमान रहता है तो वह परीक्षण विश्वसनीय माना जाता है।
5. मानकीकृत परीक्षण

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्त, मनोरमा, **भाषा -शिक्षण सिद्धांत और प्रविधि** आगरा,केन्द्रीय हिंदी, संस्थान)201(0
2. चौहान,रीता,**हिंदी शिक्षण**आगरा,अग्रवाल, पब्लिकेशन ,2016-17
3. श्रीवास्तव डॉ,रविन्द्रनाथ. **भाषा**, ,**शिक्षण-**नई दिल्ली ,वाणी प्रकाशन,2005
4. मंगल एस.के,शुभ्रा, व्यावहारिक विषयों में अनुसन्धान विधियाँ,पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली,2014

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भाषाई परीक्षण अन्य विषयों के उपलब्धि परीक्षणों से किस प्रकार भिन्न होते हैं ?
2. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उपलब्धि परीक्षण की उपयोगिता बतायें।
3. एक उपलब्धि परीक्षण के निर्माण में किन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए, बिन्दुवार वर्णन करें।
4. अध्यापक निर्मित एवं मानकीकृत परीक्षण का अंतर स्पष्ट करें।
5. अध्यापक निर्मित एवं मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण निर्माण के सोपानों का वर्णन करें।
6. वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षणों के मानकों का वर्णन करें।

इकाई 4- परीक्षण, मापन एवं मूल्यांकन :हिंदी भाषा के शिक्षण एवं अधिगम के विशेष संदर्भ में

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मूल्यांकन की भूमिका एवं महत्व
4.3.1 उत्तम मूल्यांकन की विशेषताएँ
4.3.2 मूल्यांकन के पक्ष
4.4 परीक्षण की वर्तमान समस्याएं एवं परिदृश्य
4.5 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन
4.5.1 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य
4.5.2 सी.सी.ई की विशेषताएँ
4.5.3 सीसीई के कार्य
4.6 मूल्यांकन की नवीन अवधारणाएं
4.7 सारांश
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विद्यालय में बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते हैं। वह विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के दौरान जीवन में विशेष प्रकार के अनुभव पाते हैं। यह अनुभव ही उसके ज्ञान में विविध प्रकार से वृद्धि करते हैं,उनकी विचार-शैली,कार्य-शैली में परिवर्तन लाते हैं। बालक का सम्पूर्ण विकास ,व्यवहार परिवर्तन के नाम से जाना जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया से शिक्षण की प्रक्रिया के उपरांत बालक के वांछित व्यवहार परिवर्तन की सीमा का मूल्यांकन किया जाता है। इस व्यवहार परिवर्तन में बालक के ज्ञानात्मक,संकल्पनात्मक तथा भावात्मक पक्ष सम्मिलित रहते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन एक विस्तृत प्रक्रिया है,जिसमें विद्यार्थियों की सफलता का सही अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें छात्र के शारीरिक, मानसिक सामाजिक तथा नैतिक गुणों की परीक्षा सम्मिलित रूप से की जाती है। मूल्यांकन में प्राप्त ज्ञान और

परिवर्तित व्यवहार दोनों की जाँच हो जाती है। संक्षेप में, मूल्यांकन में ज्ञान प्राप्त करने की वस्तुनिष्ठता और व्यावहारिकता पर अधिक बल दिया जाता है,परन्तु आधुनिक परीक्षा प्रणाली में विषयगत निष्ठा (Subjectivity) पर ही अधिकतम बल दिया जाता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. शिक्षण प्रक्रिया में मूल्यांकन का संप्रत्यय समझ पायेंगे।
2. अच्छे परीक्षण एवं मूल्यांकन की विशेषताओं की समझ निर्मित होगी।
3. मूल्यांकन के वर्तमान परिदृश्य और उसके समस्याओं का बोध विकसित होगा।
4. पारंपरिक मूल्यांकन के प्रणाली एवं दोषों से अवगत हो पायेंगे।
5. 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन' की अवधारणा,प्रकृति,उद्देश्य,प्रक्रिया से अवगत हो पायेंगे।
6. शैक्षिक मूल्यांकन के क्षेत्र में आए नवीन अभ्यासों को समझने का कौशल विकसित होगा।

4.3 मूल्यांकन की भूमिका एवं महत्त्व

'मूल्यांकन' शब्द दो शब्दों के योग से बना है-'मूल्य' और 'अंकन'। इस प्रकार मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ छात्र के गुण-दोषों की विवेचना कर उसके सम्बन्ध में सही निर्णय करना या उसके यथार्थ मूल्य को निर्धारित करना है। अन्य शब्दों में मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी कार्य-वस्तु या व्यक्ति का मूल्य निर्धारित करने का कार्य किया जाता है। हम इस प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक योग्यता का मूल्यांकन कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में थोर्नडाईक का मत है कि "कोई भी वस्तु जिसका अस्तित्व है वह किसी मात्रा में होती है और जब वह किसी मात्रा में है तो उसे मापा जा सकता है"। थोर्नडाइक के इस कथन का आशय है कि हम किसी प्रकार से प्रत्येक वस्तु को माप सकते है। परन्तु उस वस्तु का किसी न किसी मात्रा में उपस्थित होना आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार की योग्यता का मूल्यांकन करना भी संभव है। जहाँ तक छात्रों की योग्यता के मूल्यांकन का प्रश्न है – वह एकपक्षीय नहीं है। मूल्यांकन में छात्र की मात्र शैक्षिक प्रगति की जाँच नहीं होती वरन उसके शारीरिक,मानसिक,नैतिक और सामाजिक सभी गुणों की जाँच सम्मिलित है।

शिक्षा स्थिर न होकर एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है ,जिसके फलस्वरूप बालक की शैक्षिक योग्यताओं,रुचियों,आदतों,अभिवृतियों तथा व्यवहार में निरंतर परिवर्तन चलता रहता है । मूल्यांकन प्रक्रिया से यह पता करने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षण से बालक के व्यवहार में किस सीमा तक परिवर्तन हुआ है। इसके लिए बालक के व्यवहार से जुड़े तथ्यों को एकत्रित किया जाता है और उसकी विवेचना की जाती है।

भाषा शिक्षकों के लिए कक्षा में पाठ्य वस्तु का प्रभावी प्रस्तुतीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इतना होने पर भी सुनिश्चित नहीं कर सकते कि सभी विद्यार्थियों द्वारा कक्षा के आरंभ में निर्धारित ज्ञानात्मक,बोधात्मक और कौशलात्मक लक्ष्य प्राप्त कर लिए गए हैं। यदि कक्षा के समापन पर शिक्षक और विद्यार्थियों को पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का संतोष नहीं मिलता तो कक्षा की सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती। किसी भाषा संदर्भ के शिक्षण की सफलता में शिक्षक,विद्यार्थी और पाठ्यवस्तु तीनों पक्षों का समान योगदान रहता है। इसके अधिगम के प्रति सुनिश्चित होने के लिए मापन और मूल्यांकन का प्रावधान किया जाता है।

मापन- सृष्टि के समस्त पदार्थों और व्यक्तियों में परस्पर भिन्नता का गुण पाया जाता है। इस भिन्नता को परिभाषित और अभिव्यक्त करने के अनेक उपाय हैं जिन्हें मापन द्वारा स्पष्ट किया जाता है। भाषा- शिक्षण के संदर्भ में मापन द्वारा भाषाई तत्वों के अधिगम में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता का आकलन और प्रस्तुतीकरण किया जाता है। मापन से हमें व्यक्ति के अतीत का आभास होता है जिससे वर्तमान को समझने का आधार प्राप्त होता है और भविष्य की समस्याओं के समाधान में मदद मिलती है।

मापन की प्रक्रिया के तीन चरण है

क) किसी व्यक्ति के गुण की पहचान और परिभाषीकरण

ख) उस प्रक्रिया का निर्धारण जिससे उस गुण को प्रस्तुत किया जाता है।

ग) प्रस्तुत गुण को प्राप्तांकों या परिमाण सूचक इकाइयों में परिवर्तित करना

मापन द्वारा किसी व्यक्ति विद्यार्थी का मूल्यांकन नहीं होता अपितु प्रकरण विशेष के अधिगम में उसकी योग्यता और स्तर का मापन होता है।

मूल्यांकन- मूल्यांकन का अर्थ परीक्षा पत्रों के अंकन से लिया जाता है, किंतु मौलिक रूप से इसका उपयोग शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण -विधियों और पाठ्यक्रम की सापेक्षिक उपयोगिता का पता लगाने और विद्यार्थियों की उपलब्धियों के मापन इत्यादि में किया जाता है। शिक्षण और मूल्यांकन परस्पर अन्योन्याश्रित है। शिक्षण का मूल्यांकन व्यवहार में परिवर्तन को दृष्टिगत रखकर किया जाता है क्योंकि विद्यार्थियों में सकारात्मक और स्थाई परिवर्तन शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है। क्विलेन और हन्ना के मत में- "विद्यालय द्वारा बालक के व्यवहार परिवर्तन के विषय में साक्ष्यों के संकलन और उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है"।

शिक्षण हेतु प्रयुक्त समस्त उपायों, प्रक्रियाओं और उपकरणों का क्या, कितना और कैसा महत्व है, इसके उपयोग से शिक्षण प्रक्रिया किस प्रकार प्रभावित हुई और विद्यार्थियों के व्यवहार परिवर्तन का लक्ष्य कितना और किस स्तर तक उपलब्ध हुआ यह जानने के लिए मूल्यांकन एक उपयोगी प्रक्रिया है। मूल्यांकन के अभाव में शिक्षण की स्थिति और उपयोगिता को प्रमाणित करना और उसके प्रति आश्वस्त

हो सकना असंभव है। मूल्यांकन शिक्षकों के साथ ही विद्यार्थियों की आत्मसंतोष के लिए भी उपयोगी है।

मूल्यांकन का आशय है किसी शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से विद्यार्थियों के ज्ञान-कौशल और व्यवहार-परिवर्तन के स्तर की सटीक जांच करना। शिक्षण प्रक्रिया में मूल्यांकन की संकल्पना का काफी महत्व है। मूल्यांकन के माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया के प्रभाव, उपयोगिता, सीमाओं और अपेक्षित सुधारों या परिवर्तन के विषय नए तथ्य जुटा सकते हैं और उनके द्वारा शिक्षण प्रक्रिया को ज्यादा प्रभावी और सफल बना सकते हैं। इस दृष्टि से छात्राध्यापकों को मूल्यांकन के संकल्पना उद्देश्य प्रकार और विधियों से अवश्य परिचित होना चाहिए।

अतीत से आज तक शिक्षकों ने शिष्यों की उपलब्धियों को एक या अन्य विधियों से जांचा और परखा है , कभी संस्थागत परीक्षा के रूप में तो कभी सार्वजनिक प्रदर्शन के माध्यम से। मूल्यांकन का इतिहास वहां से शुरु होता है जहां विद्यार्थियों द्वारा पठित अंश या अधिगम कौशल की यथारूप प्रस्तुति के बिना आगामी सूत्र या कौशल की प्रस्तुति नहीं की जाती थी। तब से आज तक मूल्यांकन ने अनेक चरण पार किए हैं और अनेक रूप बदले हैं।

आज मूल्यांकन की सटीकता और पूर्णता के लिए अनेक उपायों का आश्रय लिया जा रहा है। इनमें प्रमुख है -लिखित परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा अर्जित अंक या श्रेणी। ये श्रेणी ही आज विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास की कसौटी बन गई हैं। हालांकि इस माध्यम से शिक्षार्थी के ज्ञानात्मक पक्ष का ही मूल्यांकन किया जा सकता है, प्रयोगात्मक या कौशलात्मक का नहीं। साथ ही यह भी सत्य है इस मूल्यांकन से विद्यार्थियों में स्थायी व्यवहार परिवर्तन की कोई सूचना नहीं मिलती। इन्हीं कारणों से यह मूल्यांकन प्रणाली विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की अन्य पहलुओं के विकास की कोई सूचना नहीं देती।

4.3.1 उत्तम मूल्यांकन की विशेषताएँ

परीक्षणों का निर्माण विशिष्ट कुशलता सापेक्ष प्रक्रिया है। सभी अध्यापक मूल्यांकन एवं परीक्षणों का निर्माण समान रूप से और सहज कुशलता से नहीं कर पाते। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण, सतर्कता एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। परीक्षणों में निर्माण के लिए विशेष कुशलता अपेक्षित है। तैयार किए गए प्रश्नों में निश्चित विशेषताओं का समावेश अनिवार्य माना जाता है। अतः परीक्षणों के चयन एवं निर्माण में निम्नांकित तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है -

i. **वैधता-** मूल्यांकन में वैधता का सामान्य अर्थ है सर्वस्वीकार्यता और नियमानुकूलता। मूल्यांकन पाठ के विशेष से संबंधित विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप और संप्राप्ति परीक्षण तक केंद्रित होनी चाहिए। उसके प्रयोग से विद्यार्थियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव होने या अपने प्रयोजन में सिद्ध ना होने पर मूल्यांकन की वैधता समाप्त हो जाती है। वैधता वास्तव में मूल्यांकन का वह गुण होता है कि एक परीक्षण ठीक उसी कौशल,क्षमता का मूल्यांकन करें जो उस परीक्षण का उद्देश्य है।
ii. **विश्वसनीयता-** विभिन्न परन्तु समतुल्य परिस्थितियों में किसी प्रश्न ,परीक्षण या परीक्षा का उत्तर पूर्णतः एक ही प्रकार का होगा तो ऐसा मापन विश्वसनीयता कहलाएगी। विश्वसनीय सामग्री वही हैं

जिसमें एक से स्तर के विद्यार्थी बार-बार परीक्षा में एक सा उत्तर देते हैं। अतः परीक्षक की योग्यता कैसी भी हो,मूल्यांकन प्रायः एक सा रहता है। व्यवहार में यह कठिन लगता है जहाँ एक ही प्रश्न या प्रश्नपत्र को अनेक लोग जाँचते है ,वहाँ मूल्यांकन की विश्वसनीयता बहुत महत्त्वपूर्ण है।

iii. **वस्तुनिष्ठता-** वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य यह है कि परीक्षण से प्राप्त परिणाम परीक्षक की व्यक्तिगत विचारधारा ,रुचियों तथा मान्यताओं से प्रभावित नहीं होते। परीक्षक के राग-द्वेष का अथवा उसके संवेगात्मक मनोभावों का परीक्षण के परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। छात्रों के ज्ञान का परीक्षण निरपेक्ष दृष्टि से किया जाता है।

iv. **समग्रता-** एक अच्छे परीक्षण में समग्रता का गुण अनिवार्यतः विद्यमान होता है। समग्रता से अभिप्राय यह है कि उस परीक्षण के द्वारा छात्र की विशिष्ट योग्यता का मापन समग्र रूप से किया जा सकता है। उसकी योग्यता का खंडित अथवा आंशिक मूल्यांकन परीक्षण के उद्देश्यों को पूर्ण करने में असमर्थ होता है, इससे निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती। इसके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण में इतने प्रश्न का समावेश किया जाए जिससे छात्र की विशिष्ट योग्यता से सम्बंधित सभी पक्षों का पूरा परिचय प्राप्त हो सके।

v. **विभेदकता-** अच्छा मूल्यांकन का मापदंड यह है कि वह छात्र की उपलब्धियों का पूर्ण विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करे कि उनके आधार पर उनकी योग्यता का स्तर निर्धारित किया जा सके। कक्षा में उपलब्धियों की दृष्टि से श्रेष्ठ छात्र कौन से है,सामान्य छात्र कौन से है और कमजोर छात्र कौन से है , इसकी जानकारी मूल्यांकन के आधार पर प्राप्त होनी चाहिए।

vi. **व्यावहारिकता** – मूल्यांकन की प्रक्रिया,लागत,समय और प्रयोग में आसानी की दृष्टि से वास्तविक,व्यावहारिक और कुशल होनी चाहिए। हो सकता है कि मूल्यांकन का कोई तरीका आदर्श हो परन्तु उसे व्यवहार में न लाया जा सके। यह ठीक नहीं है और इसे प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए विद्यार्थियों को प्रायोगिक परीक्षा के लिए एक ही प्रयोग देने के स्थान पर अलग-अलग प्रयोग कराना ज्यादा लाभकारी है क्योंकि एक ही प्रयोग के लिए अनेकों समान यंत्र उपलब्ध कराना कई स्थानों पर संभव नहीं हो सकता।

vii. **न्यायसंगतता-** मूल्यांकन सभी विद्यार्थियों के लिए समान रूप से न्यायसंगत होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब किसी पाठ के उद्देश्यों के अनुरूप विद्यार्थियों के अपेक्षित व्यवहारों को दर्शाए। विद्यार्थियों को पता होना चाहिए कि उनका मूल्यांकन कैसे होना है। इसका अर्थ यह है कि विद्यार्थियों को मूल्यांकन के विषय में सूचना मिलनी चाहिए जैसे वह सामग्री जिसमें उनका परीक्षण होना है उसकी प्रकृति (विषय,सन्दर्भ एवं उद्देश्य),परीक्षा की संरचना,विस्तार और परीक्षा का परिणाम तथा अंकों के आधार पर प्रत्येक भाग का महत्त्व।

viii. **उपयोगिता-** मूल्यांकन विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होना चाहिए। इसके परिणामों से विद्यार्थियों को अवगत होना चाहिए ताकि वह अपनी कमजोरियों को और जिन बातों में (बिन्दुओं) में उसे महारत हो , उनको जान सके। इस प्रकार वह अधिक सुधार लाने का सोच सकता है। मूल्यांकन से ही उसे पता चलता है कि किस दिशा में सुधार करना है। यह सुधार पठन सामग्री,अध्यापन विधि

अथवा अधिगम शैली में भी हो सकता है । इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थियों की कमजोरियों को जानने और उन्हें दूर करने में बहुत लाभकारी होता है।

4.3.2 मूल्यांकन के पक्ष

मूल्यांकन के तीन पक्ष होते है –

1. **ज्ञानात्मक पक्ष** –के.पी.पाण्डेय के अनुसार 'शिक्षण में ज्ञान उद्देश्य इस बात पर बल देता है कि छात्र नवीन सूचनाओं तथ्यों एवं सत्यों से परिचय प्राप्त करें इसमें स्मरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कार्यशील रहती है। प्रत्येक विषय की शिक्षा में ज्ञानात्मक पक्ष होता है और विद्यार्थी के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है ।हमारी आधुनिक शिक्षा का यह पक्ष बहुत महत्वपूर्ण बन गया है।"
    - विशिष्ट तथ्यों की जानकारी।
    - विशिष्ट तथ्यों को प्राप्त करने की विधिओं की जानकारी।
    - परम्पराओं एवं मान्यताओं का ज्ञान।
    - घटनाओं की गतिविधियों व प्रक्रियाओं की जानकारी।
    - मापदंडो अथवा कसौटी की जानकारी।
    - प्रणालियों की जानकारी।
    - किसी विषय के वर्गीकरण तथा श्रेणियों की जानकारी।
    - सिद्धांतों तथा सामान्यीकरण की जानकारी।
2. **संवेदनात्मक पक्ष** –ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में बच्चों की रूचि तथा मनोवृत्ति का विशेष योग रहता है "बालक के व्यवहार का भावात्मक पक्ष उसकी रुचियों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों से सम्बन्धित होता है ।बालक में जब किसी नई रूचि का जन्म होता है अथवा उसके सीखने की प्रवृत्ति के साथ प्रिय एवं अप्रिय भाव दिखाई देने लगते है तो यह परिवर्तन उसके भावात्मक पक्ष से जुडा हुआ माना जायेगा । मनोवृत्ति का पूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार भावात्मक होता है । सम्वेदनात्मक पक्ष के तीन स्तर होते है –
    i. मुख्य रुचियाँ
    ii. मान्यताएँ
    iii. अनुमूल्यन
    iv. व्यवस्थापन
    v. चारित्रीकरण

3. **क्रियात्मक पक्ष** –मूल्यांकन का क्रियात्मक पक्ष आंगिक गतिविधियों की आवश्यकता से सम्बन्ध होता है। शारीरिक शिक्षा व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा में बालक के व्यवहार का क्रियात्मक पक्ष होता है। क्रियात्मक पक्ष के निम्न 5 स्तर होते है –
    i. **उत्तेजन** – इसमे कार्य करने के प्रति उत्तेजना उत्पन्न की जाती है।
    ii. **कार्यवाही** –उत्तेजना के आधार पर बालक गतिशील क्रियाये करता है।
    iii. **नियंत्रण** –नियंत्रण से बालक अपनी क्रिया संगठित करता है।
    iv. **समायोजन**- समायोजन में विभिन्न क्रियाओं पर नियंत्रण के आधार पर आपस में समायोजन किया जाता है।
    v. **स्वभावीकरण** –स्वभावीकरण के अंतर्गत कार्य की शैली तैयार हो जाती है और वह कार्य विशेष गति एवं ढंग से पूर्ण होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. मूल्यांकन में विद्यार्थी की शैक्षिक प्रगति की ही जाँच होती है। (सत्य/असत्य)
2. मापन का पहला चरण विद्यार्थी के प्रस्तुत गुण की पहचान और परिभाषीकरण है । (सत्य/असत्य)
3. समतुल्य परिस्थितियों में एक प्रश्न का उत्तर,परिणाम समान आता है। परीक्षण का यह गुण 'वैधता' कहलाएगा। (सत्य/असत्य)
4. लिखित परीक्षा द्वारा विद्यार्थी के कौशलात्मक पक्ष का मूल्यांकन होता है। (सत्य/असत्य)
5. यदि परीक्षण के परिणाम परीक्षक के विचारधारा,रूचि और मान्यता से प्रभावित नहीं होते तो परीक्षण का यह गुण 'वस्तुनिष्ठता' कहलाता है। (सत्य/असत्य)

4.4 परीक्षण की वर्तमान समस्याएं एवं परिदृश्य

जब से शिक्षा प्रदान करने का प्रचलन हुआ है तब से परीक्षण प्रणाली किसी न किसी रूप में चली आ रही है। वैदिक काल में परीक्षण जहाँ अर्जित ज्ञान का पता लगाने के लिए किया जाता था वही इस बात को जानने के लिए भी किया जाता था कि कोई बालक आगामी विशिष्ट ज्ञानार्जन के योग्य है अथवा नहीं। यथार्थ में इस प्रकार के परीक्षण द्वारा बालक के पूर्व ज्ञान, अभिरुचि, क्षमता, योग्यता आदि का ज्ञान कर लिया जाता था।

अनेक उदाहरण है जिनसे परीक्षण व्यवस्था की व्यवहारिकता तथा व्यापकता का ज्ञान प्राप्त होता है। नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने वाले छात्रों के ज्ञान का परीक्षण पंडितों और विद्वानों

के द्वारा किया जाता था। परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन काल में परीक्षण की पद्धति मौखिक ही थी आज के समान लिखित नहीं।

भारत के समान विश्व के अन्य देशों में भी मौखिक परीक्षा का ही प्रचलन था। 'ओल्ड टेस्टामेंट' में जॉर्डन में मौखिक परीक्षाओं का उल्लेख मिलता है। यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात अपने शिष्यों के ज्ञान का परीक्षण करने के लिए 'प्रश्नोत्तर विधि' का प्रयोग करता था, जिसे कालांतर में 'सुकराती विधि' की संज्ञा दी गई।

कालांतर में मौखिक शैक्षिक मूल्यांकन की पुरानी प्रणाली ने विद्यालयी परीक्षा का रूप ले लिया था। लिखित परीक्षाओं का प्रचलन मौखिक परीक्षाओं के बहुत समय बाद प्रारंभ हुआ। चीन में 2200 वर्ष पूर्व राज पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करने के लिए लिखित परीक्षा ली जाती थी। इंग्लैंड में लिखित परीक्षा का प्रचलन सन 1700 के आसपास प्रारंभ हुआ था। इन्हें निबंधात्मक परीक्षा का नाम दिया गया था। विश्वास किया जाता था कि बुद्धि और व्यक्तित्व के अन्य गुणों को निबंध लिखने के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। एक खास विषय में विद्यार्थी ने कितना सीखा है यह भी उसके लिखे निबंध को जाँचने के माध्यम से सुनिश्चित किया जाता था। इस प्रकार इन निबंध आधारित परीक्षाओं के आधार पर विद्यार्थी के शैक्षिक प्रगति को तो जांचा ही जाता था साथ ही इसके आधार पर ही उसके आगामी प्रगति की भविष्यवाणी की जाती थी। निबंध परीक्षाएँ ही विद्यार्थी की प्रगति को मापने का एकलौता साधन था।

किन्तु शिक्षाशास्त्र,समाजशास्त्र,मनोविज्ञान एवं अन्य मानविकी विज्ञानों के शोधों के उपरांत विद्वानों द्वारा मूल्यांकन की इस निबंध आधारित परम्परागत पद्धति में अनेक दोषों को पाया गया। पाया गया कि विद्यार्थी की क्षमता को मापने के लिए केवल वार्षिक निबंध परीक्षाएँ पर्याप्त नहीं है। इन्हें हम निम्न प्रकार से सूचीबद्ध कर सकते हैं।

1. **अविश्वसनीयता-** यह पाया गया कि निबंधात्मक परीक्षा का एक ही उत्तर-पत्रक अलग-अलग परीक्षकों द्वारा अलग प्रकार से जाँचा जाता है, और अलग प्रकार के परिणाम दिया जाता है। अतः ये परीक्षाएँ अविश्वसनीय हैं।
2. **विद्यार्थियों का समग्र मूल्यांकन केवल सत्रांत लिखित परीक्षा द्वारा** – सत्रांत परीक्षाओं का पाठ्यक्रम लम्बा होने के कारण विद्यार्थियों के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम को सीमित समयावधि में पुनरावृति करना कठिन होता है।
3. **संपूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं-** कुछ परीक्षक परीक्षण में अपने पसंद के पाठों को ही अधिक महत्व देते हैं। समय की कमी के कारण भी परीक्षण में पूरे पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं होता।
4. **मनोदशा का प्रभाव-** इसमें आपगत तत्व की प्रधानता रहती है। उत्तरों के मूल्यांकन पर परीक्षक के विचारों और उसकी मनोदशा का प्रभाव पड़ता है।
5. **समय का अपव्यय-** निबंधात्मक परीक्षा में समय बहुत अधिक लगता है अतः छात्र किसी प्रश्न का उत्तर निश्चित समय में नहीं दे पाता।

6. **अस्पष्टता और जटिलता-** निबंधात्मक परीक्षा में पूछे गए प्रश्न अस्पष्ट,जटिल और असंतुलित होते हैं।
7. **भविष्यवाणी संभव नहीं-** निबंधात्मक परीक्षा का सबसे बड़ा दोष यह है इसके परिणाम के आधार पर हम छात्र के विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते क्योंकि परिणामों में एकरूपता नहीं होती।
8. **परीक्षा के विभिन्न माप-** निबंधात्मक परीक्षा पद्धति का सबसे बड़ा दोस्त यह है कि इस में छात्रों की उत्तर पुस्तिका जांचने का निश्चित मापदंड नहीं होता है। प्रत्येक परीक्षक अपने दृष्टिकोण के आधार पर कॉपियों की जांच करते हैं। यदि एक शिक्षक बच्चे के लेख से प्रभावित होकर तो दूसरा भाषा से और तीसरा विवरण से प्रभावित होकर अंक देता है। इस प्रकार परीक्षकों में मतभेद होने के कारण परीक्षाफल एक सा नहीं होता।
9. **धीमा संचालन-बड़ा तनाव-** शैक्षिक सत्र के प्रारम्भ में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों सुस्त हो जाते है, पाठ्यक्रम का संचालन धीमी गति से होता है क्योंकि परीक्षा दूर होती है, लेकिन परीक्षा पास आने पर शिक्षक और विद्यार्थी दोनों पाठ्यक्रम का दबाव अनुभव करते हैं।
10. **विद्यार्थी के केवल संज्ञानात्मक विकास का ही मूल्यांकन**
11. **भावात्मक एवं क्रियात्मक या मनोपेशीय शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन पूर्णतया उपेक्षित-** इस प्रकार की परीक्षा प्रणाली में व्यक्तित्व के समग्र पक्ष के मूल्यांकन के स्थान पर केवल ज्ञानात्मक पक्ष का ही मूल्यांकन होता है और विद्यार्थी 'रट्टू तोता' बनने को विवश था।
12. **अध्येता के स्मरणशक्ति का मूल्यांकन-** परीक्षा की प्रकृति निबंधात्मक होने के कारण अध्येता का सारा ध्यान रटन पर ही रहता है।
13. **मूल्यांकन के लिए अंक पद्धति का उपयोग-** मूल्यांकन के उपरांत अंक पद्धति से परिणाम दिए जाते थे जिससे मंद अधिगम विद्यार्थियों में हीन भावना का उदय होता था।
14. सतत नहीं
15. व्यापक नहीं

अभ्यास प्रश्न

6. सुकरात द्वारा अपने शिष्यों के ज्ञान का परीक्षण के लिए कौन सी पद्धति प्रयोग में लायी जाती थी?
7. किस प्रकार के परीक्षण को 'अविश्वसनीय' कहा जाएगा?

4.5 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

सतत तथा व्यापक मूल्यांकन भारत के स्कूलों में मूल्यांकन के लिये लागू की गयी एक नीति है जिसे 2009 में आरम्भ किया गया था। इसकी आवश्यकता शिक्षा के अधिकार 2009 के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक हो गया था। यह मूल्यांकन प्रक्रिया राज्य सरकारों के परीक्षा-बोर्डों तथा केन्द्रीय माध्यमिक

शिक्षा बोर्ड द्वारा शुरू की गयी है। इस पद्धति द्वारा 6ठी कक्षा से लेकर 10वीं कक्षा के विद्यार्थियों का मूल्यांकन किया जाथा है। कुछ विद्यालयों में 12वीं कक्षा के लिये भी यह प्रक्रिया लागू है।

भारत के मानव संसाधन विकास मंत्रालय और केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने विद्यालय शिक्षा क्षेत्र में सुधार लाने के दिनांक 20 सितंबर, 2009 को घोषित किया कि सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) को सुदृढ़ बनाया जाएगा और अक्टूबर 2009 से कक्षा 9 के लिए सभी संबद्ध विद्यालयों में उपयोग किया जाएगा। परिपत्र में आगे बताया गया था कि वर्तमान शैक्षिक सत्र 2009 -10 से कक्षा 9 और 10 के लिए नई ग्रेडिंग प्रणाली लागू की जाएगी। दिनांक 29 सितंबर, 2009 के परिपत्र संख्या 40/29-09- 2009 में उल्लिखित कक्षाओं के लिए लागू की जाने वाली ग्रेडिंग प्रणाली के सभी विवरण प्रदान किए गए थे। सीबीएसई ने 6 अक्टूबर, 2009 से प्रशिक्षक-प्रशिक्षण फॉर्मेट में कार्यशालाओं के माध्यम से देष भर में सतत तथा व्यापक मूल्यांकन प्रशिक्षण देना आरंभ किया था। सी.सी.ई का अर्थ छात्रों की विद्यालय आधारित मूल्यांकन की प्रणाली से है जिसमें छात्रों के विकास के सभी पक्ष (मानसिक,शारीरिक,आत्मिक) शामिल है। यह एक बच्चे की विकास प्रक्रिया है, जिसमें दोहरे उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। यह उद्देश्य एक ओर मूल्यांकन में निरंतरता और व्यापक रूप से सीखने के मूल्यांकन पर तथा दूसरी और व्यवहार के परिणामों पर आधारित है।

"सतत एवं व्यापक मूल्यांकन" के शिक्षक संदर्शिका में सी.बी.एस.ई के तत्कालीन अध्यक्ष विनीत जोशी ने इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा –

"विद्यालय शिक्षा रूपांतरण के दौर से गुजर रही है। उसके केंद्र में है मूल्यांकन तथा अध्यापन अधिगम की प्रक्रिया से अंतर्संबंध के प्रति एक नया दृष्टिकोण। आज सभी इस तथ्य को मानते हैं कि जो कुछ भी पढ़ाया जाता है और जैसे पढ़ाया जाता है ,अधिगम की प्रक्रिया मूल्यांकन की प्रक्रिया से प्रभावित होते हैं। शोधकर्ता शिक्षाविदों तथा शिक्षा जगत से जुड़े व्यक्तियों में यह एक सामान्य धारणा है कि मूल्यांकन कई बार सीखने के प्रतिफल को बढ़ाने की बजाए बढ़ने से रोक देता है। अध्यापन-अधिगम की प्रक्रिया में यदि हम शिक्षण के विकल्पों एवं अधिगम की गतिविधियों को अभ्यास को केवल परीक्षा की पूर्व तैयारी मानते हैं तो हम निश्चित रुप से अपने शिक्षार्थियों के प्रति असफल होने का जोखिम उठा रहे होते हैं। मूल्यांकन के लिए काम करते समय एक बड़ा दोष यह पाया जाता है कि शिक्षार्थी का प्रयास होता है वह पास होने के लिए न्यूनतम अनिवार्य कार्यों पर ही अपना ध्यान केंद्रित करें।

आज हमारे समक्ष पारंपरिक शिक्षा प्रणाली परीक्षण प्रणाली और मूल्यांकन को बदलने की चुनौती उभर आई है। माध्यमिक स्तर पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति को अपने सभी विद्यालयों में लागू करते हुए सी.बी.एस.इ ने यह स्पष्ट संदेश दिया है कि मूल्यांकन करते समय विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिगम एक सतत प्रक्रिया है इसका मूल्यांकन भी इसीलिए सतत होना चाहिए। मूल्यांकन अध्यापन एवं अधिगम की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। इसलिए सीसीई में मूल

रूप से विद्यार्थी के ज्ञान की परीक्षा के आधार पर उसके अधिगम की प्रक्रिया को मूल्यांकन के लिए चुना गया है।"

यहाँ "निरंतरता" का अर्थ इस पर बल देना है कि छात्रों की "वृद्धि और विकास" के अभिज्ञात पक्षों का मूल्यांकन एक बार के कार्यक्रम के बजाए एक निरंतर प्रक्रिया है, जिस में संपूर्ण अध्यापन अधिगम प्रक्रिया में निर्मित किया गया है और यह शैक्षिक सत्र की पूरी अवधि में फैली हुई है। इसका अर्थ है मूल्यांकन में नियमितता, अधिगम अंतरालों का निदान, सुधारात्मक उपायों का उपयोग, स्वयं मूल्यांकन के लिए अध्यापकों और छात्रों के साक्ष्य का फीडबैक।

दूसरा पद "व्यापक" का अर्थ है शैक्षिक और सह- शैक्षिक पक्षों को शामिल करते हुए छात्रों के वृद्धि और विकास को परखने की योजना। चूँकि क्षमताएं मनोवृत्तियां और सोच अपने आप को लिखित शब्दों के अलावा अन्य रूप में प्रकट करती है, इसलिए यह पद अनेक साधन और तकनीकों के अनुप्रयोग को संदर्भित करता है (परीक्षण कारी और गैर परीक्षणकारी दोनों) और यह सीखने के क्षेत्रों में छात्र के विकास के मूल्यांकन पर लक्षित है जैसे :

- ज्ञान
- समझ/व्याख्या
- अनुप्रयोग
- विश्लेषण
- मूल्यांकन
- सृजनात्मकता

4.5.1 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य

- बोधात्मक, मनोप्रेरक और भावनात्मक कौशलों के विकास में सहायता।
- सीखने की प्रक्रिया पर बल देना और याद रखने पर बल नहीं देना।
- मूल्यांकन को अध्यापन -अधिगम प्रक्रिया का अविभाज्य हिस्सा मानना।
- नियमित निदान के आधार पर उपचारात्मक अनुदेशों के बाद छात्रों की उपलब्धि और अध्यापन- अधिगम कार्य नीतियों में सुधार के लिए मूल्यांकन का उपयोग करना।
- मूल्यांकन को निष्पादन के वांछित स्तर पर बनाए रखने के लिए गुणवत्ता नियंत्रण युक्ति के रुप में इस्तेमाल करना।
- सामाजिक उपयोगिता ,वांछनीयता या एक कार्यक्रम की प्रभावशीलता का निर्धारण करना और छात्र सीखने की प्रक्रिया और सीखने के परिवेश के बारे में उपयुक्त निर्णय लेना।
- अध्यापन और अधिगम प्रक्रिया को छात्र केंद्रित कार्यकलाप बनाना।

4.5.2 सी.सी.ई की विशेषताएँ

- सीसीई के "निरंतर" पक्ष में मूल्यांकन के "निरंतरता" और "आवधिकता" पक्षों का ध्यान रखा जाता है।
- निरंतरता का अर्थ मूल्यांकन की अनेक तकनीकों का अनौपचारिक रूप से उपयोग करते हुए छात्रों का मूल्यांकन अनुदेशों के आधार पर (नियोजन मूल्यांकन) और अनुदेशात्मक प्रक्रिया के दौरान मूल्यांकन (निर्माणकारी मूल्यांकन) करना है।
- आवधिकता का अर्थ इकाई/ कार्यावधि (सारांश) के अंत में बार-बार निष्पादन का मूल्यांकन करना है।
- सीसीई के 'व्यापक' घटक में बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास का मूल्यांकन रखने का करने का ध्यान रखा जाता है। इस में छात्रों के वृद्धि के शैक्षिक और सह-शैक्षिक पक्षों का मूल्यांकन शामिल है।
- शैक्षिक पक्षों में पाठ्यक्रम के क्षेत्र या विषय विशिष्ट क्षेत्र शामिल है जबकि सह-शैक्षिक पक्षों में जीवन कौशल सह पाठ्यक्रम इतर कार्यकलाप मनोवृति और मान्यताएं शामिल है।
- शैक्षिक- क्षेत्रों का मूल्यांकन निरंतर और आवधिक रूप में मूल्यांकन के अनेक तकनीकों का अनौपचारिक और औपचारिक उपयोग करते हुए किया जाता है । नैदानिक मूल्यांकन इकाई/कार्यावधि परीक्षा के अंत में दिया जाता है। कुछ इकाईयों में खराब निष्पादन के कारणों का निदान करने के लिए नैदानिक परीक्षण का उपयोग किया जाता है। इसका अनुवर्तन उपयुक्त हस्तक्षेपों पर इसके बाद पुनः परीक्षा द्वारा किया जाता है।
- सह शैक्षिक क्षेत्रों का मूल्यांकन अभिज्ञात मानदंडों के आधार पर अनेक तकनीकों का उपयोग करते हुए किया जाता है जबकि जीवन कौशलों में मूल्यांकन का कार्य मूल्यांकन के संकेत को और जाँचसूचियों के आधार पर किया जाता है ।

4.5.3 सी.सी. ई के कार्य

- यह अध्यापक को प्रभावी अध्यापन कार्य नीतियां बनाने में सहायता देते हैं।
- निरंतर मूल्यांकन से छात्र की प्रगति (विशिष्ट शैक्षिक और सह-शैक्षिक क्षेत्रों के संदर्भ सहित क्षमता और उपलब्धि) सीमा और स्तर के नियमित मूल्यांकन में सहायता मिलती है।
- निरंतर मूल्यांकन से कमियों का निदान किया जाता है और अध्यापक छात्र की क्षमताओं और कमियों और जरूरतों को इससे सुनिश्चित कर सकते हैं। इससे अध्यापकों को तत्काल फीडबैक मिलता है, जो यह निर्णय ले सकते हैं कि एक विशेष इकाई या संकल्पना पूरी कक्षा को दोबारा पढ़ाने की आवश्यकता है या कुछ ही छात्रों को उपचारात्मक अनुदेश की आवश्यकता है।

- निरंतर मूल्यांकन द्वारा बच्चे अपनी क्षमता और कमियों को जान सकते हैं। इस से बच्चों को स्वयं अपने अध्ययन का वास्तविक मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। इससे बच्चों में पढ़ाई की अच्छी आदतें विकसित होती है। गलती को सुधारने अपनी कार्यकलापों में वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति योग और निर्देशित करने की प्रेरणा मिलती है। यह अनुदेश के क्षेत्रों का निर्धारण करने में छात्र की सहायता करता है जिस पर और अधिक बल देने की आवश्यकता है।
- निरंतर और व्यापक मूल्यांकन मनोवृति और रूचि के क्षेत्रों को अभिज्ञात कराता है। यह मनोवृत्तियों और मूल्य प्रणालियों के बदलाव को अभिज्ञात करने में सहायता देता है।
- यह भविष्य में विषयों पाठ्यक्रमों और कैरियर के विषय में निर्णय लेने में सहायता देता है।
- इससे शैक्षिक और सह शैक्षिक क्षेत्रों में छात्रों की प्रगति पर सूचना रिपोर्ट मिलती है और इस प्रकार छात्रों की भावी सफलताओं का अनुमान लगाने में मदद मिलती है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के मुख्य बिन्दुओं को एक विभेदक चार्ट द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है-

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति		
क्रम	**यह क्या है?**	**यह क्या नहीं है?**
1.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन बच्चे के आकलन की निरन्तर चलने वाली विकासात्मक प्रक्रिया है.	बच्चों में अवांछनीय परिवर्तन पाए जाने की स्थिति में उन्हें डरा-धमकाकर अध्ययन के लिए प्रेरित या बाध्य करना।
2.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन बच्चे के विकास के सभी पहलुओं को बताता है।	केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर बच्चे को मूल्यांकित करना।
3.		
4.	बच्चे की सीखने की सिथति को देखते हुए कितना सीखा है, को जानकर अपनी शिक्षण पद्धति में आवश्यकतानुसार बदलाव दिया जाता है।	बच्चे की सीखने की स्थिति को नजरअंदाज कर केवल एक ही शिक्षण पद्धति द्वारा ज्ञान प्राप्त करने हेतु बाध्य किया जाता है।
5.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का उददेश्य सीखने को और बेहतर बनाना और कमजोरियों का पता लगाना एवं उनका निदान करना है।	उन बच्चों की पहचान करना जिन्हें अतिरिक्त शिक्षण की आवश्यकता है।
6.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में बच्चे की संवृद्धि और विकास के शैक्षिक और सह- शैक्षिक उददेश्यों की प्रापित होती है।	परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर बच्चे को मूल्यांकित करना।
7.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में सीखने की गति एवं दिशा के साथ-साथ बच्चे की आवश्यकता, अभिरूचि, कौशल, योग्यता को भी जाना जाता है।	सीखने में आने वाली कठिनाइयों और समस्या क्षेत्रों की पहचान कर बच्चे को डरा-धमका के सिखाने का प्रयास करना।
8.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में बच्चे की तुलना उसकी अपनी पिछली स्थिति से की जाती है।	इसमें बच्चे की प्रगति की तुलना दूसरे बच्चों की प्रगति से की जाती है।

9.	सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में बच्चे ने क्या सीखा और आगे सीखने-सिखाने की प्रक्रिया कैसी होनी चाहिए तय किया जाता है।	केवल बच्चे की उपलब्धि-स्तर को जाना जाता है।
10.	बच्चों की प्रगति को देखकर उनका श्रेणीकरण नहीं किया जाता है।	बच्चों की प्रगति को देखकर उनका श्रेणीकरण जैसे होशियार, मूढ़, धीमी गति से सीखने वाला आदि शब्दों में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

8. 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम' किस वर्ष लागू हुआ ?
9. 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन' के अंतर्गत विद्यार्थियों के किन पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है?

4.6 मूल्यांकन की नवीन अवधारणाएं

राइटस्टोन के अनुसार परम्परागत परीक्षण मुख्यतया विषय-वस्तु का ही परीक्षण करता है जबकि इसका उद्देश्य विद्यालय के पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के व्यापक क्षेत्र का परीक्षण करना होता है । परंपरागत (निबंधात्मक) मूल्यांकन की प्रक्रिया के इस प्रकार के अनेक दोषों को ध्यान से देखने शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों के अध्ययन और अनेक अंतर-अनुशासनात्मक शोधों के उपरांत मूल्यांकन प्रणाली में अनेकानेक परिवर्तन किये गये जिससे मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक अर्थवत्तापूर्ण बनायी जा सके। इनमें से कुछ नवीन मूल्यांकन अभ्यास निम्नवत है-

क) **नई मूल्यांकन प्रणाली-** परम्परागत मूल्यांकन प्रणाली के इन दोषों को देखते हुए नई शिक्षा नीति (1986) ने मूल्यांकन प्रणाली में आधारभूत परिवर्तन हेतु निम्न सुझाव दिए

1. मूल्यांकन प्रणाली को सतत एवं व्यापक प्रक्रिया बनाए जाने की आवश्यकता है।
2. एक ही समय पर रचनात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन पर बल देना चाहिए।
3. विभिन्न विधियों द्वारा विकास के सभी पक्षों का मूल्यांकन होना चाहिए।
4. मूल्यांकन को रचनात्मक मूल्यांकन के सभी प्रकार्य पूरे करने चाहिए जिसमें त्वरित प्रतिपुष्टि,परिणाम की जानकारी,उपचारात्मक एवं निदानात्मक शिक्षण सम्मिलित है।
5. संकलनात्मक मूल्यांकन के माध्यम से ग्रेडिंग एवं प्लेसिंग के कार्य पुरे होने चाहिए।
6. मूल्यांकन प्रणाली में सेमेस्टर एवं ग्रेडिंग प्रणाली का प्रारंभ होना चाहिए।
7. बालकों के सर्वांगीण विकास जिसमें शैक्षिक क्षेत्र,सह-शैक्षिक क्षेत्र एवं उनके व्यक्तिगत एवं सामजिक गुणों का मापन,मूल्यांकन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

8. आगे वर्ष 2009 में 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पारित हुआ। अधिनियम के धारा 29 में स्पष्ट कहा गया है कि कक्षा 1 से 8 तक की कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम बनाते समय यह ध्यान रखा जाए कि पाठ्यक्रम बच्चों के सर्वांगीण विकास करने वाला हो। स्कूल और कक्षाओं में पढ़ने-पढ़ाने के तरीके बच्चों की अंतर्निहित क्षमताओं को उभारे और उनमें अपना ज्ञान निर्माण स्वयं करने की क्षमता विकसित हो। बच्चों ने जो सीखा है उसका मूल्यांकन उनके पढ़ने के दौरान लगातार होता रहे और उन्हें परीक्षा का भय नहीं लगे। परीक्षाएं बच्चों का मूल्यांकन भी बताने वाली हो साथ ही उससे शिक्षक को अपनी शिक्षण योजना में बदलाव करने का आधार एवं मौका भी मिले।इस प्रकार सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया वास्तव में व्यापक गुणवतासुधार प्रक्रिया ही है। इसे सीखने-सिखाने की विधा एवं विद्यार्थी के स्कूल-आधारित मूल्यांकन व्यवस्था के रूप में ही समझा जाये जिसमें विद्यार्थी के सीखने के सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाता है।सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में सततता जहां एक ओर कक्षा प्रक्रिया के रूप मे होगी वहीं सावधिक मूल्यांकन के रूप में भी होगी। व्यापकता उन मुद्दों को प्रमुख रूप से रेखांकित करेगी जो बच्चों के विभिन्न कौशल, भावात्मक और क्रियात्मक पक्ष को उजागर करेगी। शिक्षा के अधिकार अधिनियम -2009 के परिपेक्ष्य में ही 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पद्धति' की शुरुआत हुई जिससे विद्यालयी मूल्यांकन प्रणाली में आमूलचूल बदलाव आये। जिसकी विशद चर्चा आप अलग से इस इकाई के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन खंड में पढ़ चुके हैं।

ख) **सेमेस्टर पद्धति-** लम्बे पाठ्यक्रम, धीमी गति से पाठ्यक्रम पूरा करने,रटन पद्धति आदि की समस्याओं को दूर करने के लिए अनेक विकसित देशों में सेमेस्टर प्रणाली विकसित की गई, इस प्रणाली में पाठ्यक्रम को दो या अधिक सार्थक,सुसंयोजित आंतरिक रूप से समांग भागों में विभाजित किया जाता है। सेमेस्टर प्रणाली में शिक्षण को आपसी सहयोग और नई अनुदेशात्मक रणनीतियों के माध्यम से संपन्न किया जाता है। प्रणाली में शिक्षण और परीक्षा के दौरान अनावश्यक तनाव और दबाव को दूर किया जाता है और शिक्षण एक सोद्देश्य,आनंदपूर्ण क्रिया बन जाती है।

ग) **परख (tests) और क्वीज-** छात्रों की भाषाई उपलब्धि का मूल्यांकन के लिए अब समय-समय पर भाषाई परखों एवं भाषाई-क्वीजों का प्रयोग भी प्रचलन में है। वस्तुतः परख और सामयिक परीक्षण भाषाई कुशलता एवं उपलब्धियों के मूल्यांकन के प्रमुख आधार है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन दोनों में मुख्य अंतर क्या है ? भाषाई उपलब्धियों के मूल्यांकन ने इनमें कहां तक समानता पाई जाती है ? परख और सामयिक परीक्षणों के उद्देश्य की दृष्टि से भी भिन्नता पाई जाती है। इनमें एक प्रमुख अंतर विस्तार- क्षेत्र का भी है। परीक्षण की घोषणा निर्धारित तिथि से काफी समय पूर्व की जाती है। निश्चित कालावधि में जो कुछ पढ़ाया अथवा सिखाया जाता है, उसका मूल्यांकन विविध परखों की सहायता से किया जाता है । इस प्रकार परख का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता है। इसमें पूछे गए प्रश्नों की संख्या भी अधिक होती है तथा इनके उत्तर में अधिक समय लगता है। सामान्यतः इन परखों का

उत्तर देने में कक्षा के एक अंतर का समय लगता है। इन परखों का निर्माण सामान्यता इस दृष्टि से किया जाता है कि भाषा- अधिगम से संबंधित विभिन्न कुशलताओं का मूल्यांकन किया जा सके। इन परखों का प्रयोग महीने में एक बार, दो बार अथवा प्रति सप्ताह किया जाता है। उपलब्धियों के मूल्यांकन के साथ-साथ छात्रों को मूल्यांकन के परिणामों से अवगत कराना भी आवश्यक है। प्रभावशाली अधिगम इनका विशेष महत्व है।

घ) क्वीज की घोषणा पहले से नहीं की जाती। सप्ताह में कभी भी पढ़ाई के पाठों का मूल्यांकन करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। विलक्षणता के कारण इसे शिक्षण अधिगम का प्रभावशाली साधन मान लिया गया है। कक्षा में निरंतर प्रयोग करने से छात्र भाषा अधिगम में नियमित रुप से समय लगाते हैं और पर्याप्त अभ्यास करते हैं। इन में पूछे गए अथवा जांचे गए तथ्यों की संख्या परख की अपेक्षा कम होती है परंतु एक प्रकार से यह परख के लिए छात्रों को तैयार करते हैं। इनकी सहायता से छात्र परख में पूछे गए शिक्षण बिंदुओं का उत्तर देने के लिए मानसिक रूप से तैयार रहते हैं। इन परखों का नियमित रूप से कक्षा में प्रयोग किया जा सकता है। भाषा-शिक्षण के प्रत्येक अंतराल में पढ़ाए गए शिक्षण बिंदु के दृढीकरण के लिए इनका प्रयोग सफलता से किया जा सकता है। इस प्रकार यह अन्य भाषा अधिगम में विशेष सहायक है। इतना ही नहीं विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के लिए छात्रों को सहज रुप से तैयार करते हैं जिससे आगे चलकर उन्हें किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

ङ) वस्तुनिष्ठ परीक्षण- वर्तमान समय में निबंधात्मक परीक्षाओं के स्थान पर वस्तुनिष्ठ परीक्षण का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा में प्रश्नों की संख्या निश्चित होती है। निबंधात्मक परीक्षा के अविश्वसनीयता के कारण वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का चलन हुआ। इस प्रकार की परीक्षाओं का उपयोग बच्चों के विषय ज्ञान की निष्पत्ति,बुद्धि आदि का मापन करने के लिए किया जाता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण में प्रश्नों की प्रमुखता रहती है। दूसरे, वस्तुनिष्ठ परीक्षा में अनेक परीक्षक स्वतन्त्रतापूर्वक मूल्यांकन करने के पश्चात भी अंकों के सम्बन्ध में समान निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। सत्यासत्य परीक्षण,बहुविकल्प परीक्षण,समरूप परीक्षण,पूर्ति परीक्षण और प्रत्यास्मरण वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के प्रकार हैं। अपने निम्नांकित गुणों के कारण वस्तुनिष्ठ परीक्षण इतने लोकप्रिय हुए।

i. वस्तुनिष्ठ परीक्षा में शिक्षक के व्यक्तित्व, बच्चों की भाषा, लेखन-शैली और सुलेख आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
ii. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में पाठ्य विषय के अधिक से अधिक अंशों का परीक्षण करना संभव होता है।
iii. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।
iv. इनमें परीक्षण पर दिए गए अंको में स्थिरता और अचलता रहती है।
v. इन परीक्षणों में वैधता का गुण होता है।
vi. ये परीक्षण समय की दृष्टि से मितव्ययी होते हैं।

इसके अतिरिक्त सहयोगी परीक्षण,ऑन-लाइन परीक्षण,ओपन-टेक्स्टबुक परीक्षण जैसे अनेक नवाचार दिनानुदिन परीक्षण,मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक रोचक और सार्थक बना रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

10. घोषणा की दृष्टि से परख और क्वीज में क्या अंतर है ?
11. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के भिन्न प्रकारों के नाम बतायें।

4.7 सारांश

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना है ताकि वह अपनी अंतर्निहित शक्तियों का आधिकारिक विकास कर सकें। शिक्षण इस उद्देश्य की साधना की प्रक्रिया है। शिक्षण प्रक्रिया अपने लक्ष्य और उद्देश्य में कितनी सक्षम और उपयोगी है, यह जानने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है। शिक्षण में पूर्व निर्धारित लक्ष्य को पाने का प्रयास किया जाता है। इसके अंतर्गत विषयवस्तु, शिक्षण-कौशल, व्याख्या, उदाहरण और प्रश्नोत्तर जैसी क्रियाओं के माध्यम से ज्ञान, कौशल, रुचि इत्यादि के परिवर्तन व विकास का प्रयास किया जाता है। यह समस्त प्रक्रियाएं और उनका वांछित व्यवहारिक परिवर्तन पूरी तरह से उद्देश्य केंद्रित होते हैं। शिक्षण प्रक्रिया द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अधिगम का परीक्षण ही मूल्यांकन का लक्ष्य है।शिक्षण की सफलता और विद्यार्थियों के यथेष्ट विकास की सीमाओं को पता लगाने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों की संप्राप्ति का मूल्यांकन उन सभी क्षेत्रों में किया जाए जिन में उनका विकास वांछित हो। शैक्षिक मूल्यांकन की प्रक्रिया में अनेक परिवर्तन आये हैं,पारंपरिक मौखिक एवं दीर्घ निबंधात्मक परीक्षा के स्थान पर वस्तुनिष्ठ परीक्षा, ऑन-लाइन परीक्षा, आंतरिक मूल्यांकन,सहयोगी मूल्यांकन,सेमेस्टर प्रणाली अपने गुणों के कारण वर्तमान में ज्यादा प्रचलित हैं।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. प्रश्नोत्तर पद्धति
7. यदि एक परीक्षण के परिणाम अलग समय, अलग परीक्षकों द्वारा भिन्न-भिन्न आता है, तो वह परीक्षण अविश्वसनीय कहलाएगा।
8. वर्ष 2009

9. शैक्षिक,सह-शैक्षिक एवं व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुण
10. परख की सूचना विद्यार्थियों को काफी पहले दे डी जाती है, जबकि क्वीज की पूर्व घोषणा नहीं की जाती।
11. सत्यासत्य परीक्षण,बहुविकल्प परीक्षण,समरूप परीक्षण,पूर्ति परीक्षण और प्रत्यास्मरण

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक संदर्शिका** – नई दिल्ली,के.मा.शि.बोर्ड, (2010)
2. गुप्त, मनोरमा ,**भाषा- शिक्षण सिद्धांत और प्रविधि** ,आगरा,केन्द्रीय हिंदी संस्थान (2010)
3. चौहान,रीता,**हिंदी शिक्षण** ,आगरा,अग्रवाल पब्लिकेशन ,2016-17
4. श्रीवास्तव डॉ.रविन्द्रनाथ, **भाषा-शिक्षण**, ,नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन,2005
5. कलानिलयम,सतीश-**रिसेन्ट ट्रेंड्स इन इवैल्यूशन,** http://sathitech.blogspot.in/2009/03/recent-trends-in-evaluation.html#

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्यांकन को मापन से अलग करते हुए उसकी उपयोगिता बतायें।
2. एक अच्छे परीक्षण में कौन से गुण अनिवार्य है। उन गुणों पर टिपण्णी करें।
3. पारंपरिक मूल्यांकन प्रणाली में कौन से दोष हैं? शैक्षिक मूल्यांकन के नवीन अभ्यासों पर टिपण्णी करें।
4. मूल्यांकन के कितने पक्ष होते हैं? सविस्तार वर्णन करें।
5. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा को समझाते हुए उसके उद्देश्य और विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

इकाई 5- हिन्दी शिक्षण एवं क्रियात्मक अनुसंधान

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 क्रियात्मक अनुसंधान से आशय
5.4 क्रियात्मक अनुसंधान की विशेषताएँ
5.5 क्रियात्मक अनुसंधान की सीमाएँ
5.6 अनुसंधान के अन्य रुप
5.6.1 मौलिक अनुसंधान (फंडामेंटल रिसर्च)
5.6.2 मौलिक अनुसंधान की विशेषताएँ
5.6.3 मौलिक अनुसंधान की सीमाएँ
5.7 मौलिक अनुसंधान, अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान का तुलनात्मक अध्ययन
5.8 क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता
5.9 क्रियात्मक अनुसंधान के सोपान
5.10 क्रियात्मक अनुसंधान के प्रारुप या योजना एक उदाहरण
5.11 सारांश
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची एवं सहयोगी ग्रंथ
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

क्रियात्मक अनुसंधान अपेक्षाकृत एक नई घटना है। इसका मुख्य उद्देश्य समस्या का तत्क्षण निदान प्रस्तुत करना होता है। इससे विद्यालय की कार्य पद्धति में व्यापक सुधार आता है तथा शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया प्रभावपूर्ण ढंग से संपन्न होती है। भाषा शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह अधिक महत्वपूर्ण इसलिए हो जाता है कि अन्य विषयों का शिक्षण एवं अधिगम शिक्षक एवं विद्यार्थी के भाषा ज्ञान पर बहुत अधिक निर्भर करता है। चूँकि यह शिक्षण में आने वाली समस्याओं का तत्क्षण निदान प्रस्तुत करने में सक्षम है, अतः, भाषा शिक्षण के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसंधान बहुत

उपयोगी है। भारत एक बहुभाषी देश है और यहाँ हिंदी भाषा का शिक्षण अनेक स्तरों पर किया जाता है। यथा- मातृभाषा के रुप में, द्वितीय भाषा के रुप में तथा अन्य देश के नागरिकों के लिए विदेशी भाषा के रुप में। हिंदी भाषा के बहुस्तरीय शिक्षण के कारण इस क्षेत्र में समस्याएँ भी अनेक प्रकार की उत्पन्न होती है। हिंदी भाषा शिक्षण में क्रियात्मक अनुसंधान के प्रयोग के माध्यम से इन तमाम समस्याओं का तत्क्षण समाधान प्रस्तुत कर हिंदी भाषा शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। हिंदी भाषा शिक्षण में क्रियात्मक अनुसंधान का यह महत्वपूर्ण लाभ है। इस लाभ को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में क्रियात्मक अनुसंधान एवं उनके विविध पहलुओं की चर्चा की गई है ताकि हिंदी भाषा शिक्षण के कार्य में लगे हुए शिक्षक, विद्यार्थी एवं अन्य व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में इसका प्रयोग कर लाभान्वित हो सके।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएँगे कि -

1. क्रियात्मक अनुसंधान को परिभाषित कर सकेंगे।
2. अनुसंधान के अन्य रुपों, यथा- मौलिक अनुसंधान एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान तथा क्रियात्मक अनुसंधान के मध्य अंतर स्थापित कर सकेंगे।
3. हिंदी शिक्षण के विशेष संदर्भ में क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता का वर्णन कर सकेंगे।
4. क्रियात्मक अनुसंधान के विभिन्न सोपानों की व्याख्या कर सकेंगे
5. हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसंधान हेतु कतिपय समस्याओं का उल्लेख कर सकेंगे
6. क्रियात्मक अनुसंधान के प्रारुप या योजना का उदाहरण प्रस्तुत कर सकेंगे

5.3 क्रियात्मक अनुसंधान से आशय

क्रियात्मक अनुसंधान ज्ञान की एक अपेक्षाकृत नवीन शाखा है जो व्यवहारिक पक्ष से संबंध रखता है। कार्य के व्यवहारिक पक्ष, कार्य की उपादेयता, गुणवत्ता एवं कार्य निष्पादन की अवधि में आने वाली समस्याएँ, आदि इसका विषय क्षेत्र है। उदाहरणार्थ, एक विद्यालय शिक्षक के लिए उसकी शिक्षण प्रक्रिया, विद्यार्थी एवं विद्यार्थी के मध्य संबंध, विद्यार्थी तथा शिक्षक के मध्य संबंध, शिक्षक-शिक्षक के मध्य संबंध, विद्यालय प्रबंधन आदि क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र हो सकते हैं। स्टीफेन एम० कोरी ने क्रियात्मक अनुसंधान को परिभाषित करते हुए कहा कि यह "वह प्रक्रिया है जिसके जरिए अभ्यासकर्ता अपने निर्णय एवं कार्यों को स्वनिर्देशित करने, सुधारने एवं मूल्य अंकित करने के उद्देश्य से अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने का प्रयास करते हैं। इसे ही कई लोगों ने क्रियात्मक अनुसंधान का नाम दिया है।"

स्टीफेन एम० कोरी की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि क्रियात्मक अनुसंधान अभ्यासकर्ता से ही संबंधित होता है अर्थात इस प्रकर के अनुसंधान में जिसकी समस्या होती है वही वही समाधान ढूँढता है और इसलिए यह ज्यादा प्रभावी है।

सारा ब्लैकवेल के अनुसार, "विद्यालय की कार्य प्रणालियों में सुधार लाने की दृष्टि से विद्यालय के अभिकर्मियों के द्वारा विद्यालय के समस्याओं से संबंधित शोध- इसे ही क्रियात्मक अनुसंधान कहा जाता है। यह धारणा उतनी ही अमरीकन है जितना स्वतंत्रता की घोषणा का मुख्य प्रकरण। क्रियात्मक अनुसंधान को शैक्षिक व्यवहारों एवं शैक्षिक सिद्धांतों के मध्य घनिष्ठ तालमेल कायम करने के प्रयोजन से अपनाया गया है। क्योंकि देखना ही विश्वास करने के बराबर है तथा व्यक्ति द्वारा किए गए अपने प्रयोगों के परिणाम ही दूरगामी प्रभाव डाल पाते हैं।"

सारा ब्लैकवेल की परिभाषा क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र को सीमित करती है। इस परिभाषा के अनुसार सिर्फ विद्यालय ही कियात्मक अनुसंधान का क्षेत्र है।

उपरोक्त परिभाषाएँ क्रियात्मक अनुसंधान के अर्थ को को पूर्णतः स्पष्ट करती है। इन परिभाषओं के आधार पर सामान्य शब्दों में क्रियात्मक अनुसंधान को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है-

"क्रियात्मक अनुसंधान शोध के क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नवीन घटना जिसमें की अभ्यासकर्ता स्वयं अपने कार्यों को सुधारने एवं उसे और प्रभावी बनाने के लिए वैज्ञानिक ढंग से प्रयास करता है ताकि अपने कार्य क्षेत्र में आने वाली समस्याओं का बेहतर समाधान कर बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकें। इसका क्षेत्र सिर्फ विद्यालय ही नहीं है बल्कि व्यक्ति जिस क्षेत्र में भी कार्य कर रहा हो उस क्षेत्र में वह क्रियात्मक अनुसंधान को अपना सकता है"

5.4 क्रियात्मक अनुसंधान की विशेषताएँ

स्टीफेन एम० कोरी(1953), जॉन डब्ल्यु. बेस्ट(1980) तथा कोहेन और मैनियन(1980) के अनुसार क्रियात्मक अनुसंधान की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

1. क्रियात्मक अनुसंधान किसी समस्या का तत्क्षण समाधान ढूँढने के लिए किया जाता है।
2. यह स्वयं उसी व्यक्ति के द्वारा संचालित किया जाता है जो समस्या का सामना कर रहा है।
3. इसका लक्ष्य किसी भी परिस्थिति में किसी समस्या विशेष का समाधान प्राप्त कर परिस्थिति को बेहतर एवं उपयोगी बनाना होता है।
4. चूँकि यह एक परिस्थिति विशेष से संबंधित होता है इसलिए इसको परिस्थितिगत शोध भी कहते हैं।
5. क्रियात्मक अनुसंधान की समस्या अत्यंत ही मूर्त होती है।
6. क्रियात्मक अनुसंधान के लिए निर्मित शोध उपकल्पना को क्रियात्मक उपकल्पना कहा जाता है।

7. क्रियात्मक अनुसंधान का उद्देश्य सामान्यीकरण करना नहीं होता है बल्कि इसका उद्देश्य समस्या का तत्क्षण समाधान प्रस्तुत करना होता है।
8. क्रियात्मक उपकल्पना के दो पक्ष होते हैं – निदानात्मक पक्ष एवं उपचारात्मक पक्ष।
9. क्रियात्मक अनुसंधान के परिणामों का विज्ञापन या प्रसारण निरौपचारिक ढंग से यहाँ तक कि मौखिक संप्रेषण के रुप में भी किया जाता है।
10. यह एक ऐसा शोध है जिसमें शोधकर्मी द्वारा शोध के दौरान हो रहे परिवर्तन एवं प्रभाव का निरंतर मूल्यांकन किया जाता है ताकि अपेक्षित सुधार प्राप्त किया जा सके।

5.5 क्रियात्मक अनुसंधान की सीमाएँ

के.० पी० पान्डेय जी ने इसकी सीमाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि-

1. इसमें तथा सामान्य बुद्धि द्वारा समस्या का सामान्य समाधान ढूँढने की पद्धति में कोई अंतर नहीं है।
2. क्रियात्मक अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग नहीं हो पाता है क्योंकि इनके संदर्भ एवं विषयक्षेत्र स्पष्ट नहीं होते हैं।
3. क्रियात्मक अनुसंधान में सामान्यीकरण का निर्माण को शोध का उद्देश्य नहीं माना जाना भी इसकी एक सीमा है क्योंकि वैज्ञानिक ज्ञान के विकास हेतु सामान्यीकरण शोध का एक उद्देश्य होना चाहिए।
4. इस प्रकार के शोध में वस्तुनिष्ठता कम होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्टीफेन एम० कोरी के अनुसार, क्रियात्मक अनुसंधान को परिभाषित करें।
2. सारा ब्लैकवेल द्वारा दी गई क्रियात्मक अनुसंधान की परिभाषा का उल्लेख करें।

5.6 अनुसंधान के अन्य रुप

इस अध्याय की प्रस्तावना एवं खंड 5.3 में क्रियात्मक अनुसंधान को अपेक्षाकृत एक नवीन घटना बताई गई है। इसका आशय यह है कि इससे पूर्व अनुसंधान के अन्य रुप भी हैं अनुसंधान के विविध रुप कौन-कौन से हैं और क्रियात्मक अनुसंधान से उनका क्या संबंध है इसको समझना आवश्यक है। सामान्यतः कियात्मक अनुसंधान के इतर अनुसंधान के दो अन्य रुप हैं- मौलिक अनुसंधान (फंडामेंटल रिसर्च) तथा

व्यवहृत या अनुप्रयुक्त अनुसंधान (एप्लाइड रिसर्च) की बात की जाती है। आइए अब अनुसंधान के इन दो अन्य रुपों की चर्चा करें।

5.6.1 मौलिक अनुसंधान (फंडामेंटल रिसर्च)

मौलिक अनुसंधान को शुद्ध अनुसंधान की भी संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के शोध द्वारा शोध की परिणामों का सामान्यीकरण, अनुसिद्धांतों, नियमों एवं उपनियमों का निरुपण किया जाता है। इस तरह के अनुसंधान साधारणतया प्रयोगशाला में संपन्न किए जाते हैं। मौलिक शोध का विस्तार केवल इंद्रियों द्वारा अनुभूत करने योग्य विज्ञान जिसे कि हम इम्पिरिकल साइंसेज़ कहते हैं तक ही सीमित है। हाँलाकि स्वभाविक मानवीय परिस्थितियों में भी मौलिक शोध संपन्न किए जा रहे हैं लेकिन इनमें प्रयोगशाला जैसी नियंत्रित परिस्थिति का निर्माण संभव नहीं होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक शोध का उद्देश्य है शैक्षिक घटनाओं के वैध एवं विश्वसनीय वर्णन तथा व्याख्या हेतु शैक्षिक अनुसिद्धांतों, तथ्यों एवं सामान्यीकरण का प्रतिपादन करना है। शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक शोध के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

- बी० एफ० स्कीनर द्वारा शिक्षण यंत्रों से संबंधित प्रयोग;
- जीन पियाजे द्वारा बालक के वास्तविक संसार के संबंध में किया गया शोध;
- फ़्लैंडर्स का कक्षाकक्ष में शिक्षण व्यवहार संबंधी मापन के लिए किए गया अध्ययन;
- रविंद्र नाथ टैगोर का शांतिनिकेतन; तथा
- अरविंद का अरविंदो आश्रम; आदि

5.6.2 मौलिक अनुसंधान की विशेषताएँ

इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

1. यह आमतौर से नियंत्रित परिस्थितियों में संपन्न होता है।
2. इसमें सामान्यतः किसी समग्र(पॉपुलेशन) से चुने हुए नमूने (सैम्पल) नमूने के अध्ययन द्वारा समग्र के लिए समान्यीकरण किया जाता है।
3. सिद्धांत का निर्माण या प्रतिपादन, ज्ञान के क्षेत्र-विस्तार, अनुसिद्धांतों का विकास, आदि इसके मुख्य विषय हैं।
4. सामान्यतः ऐसे शोध में, शोध समस्या दो या अधिक चरों, संप्रत्ययों या साक्षियों के मध्य संबंध का अध्ययन किया जाता है जिसके आधार पर थ्योरी का विकास किया जाता है।
5. ऐसे शोध में सामान्यतः उपकल्पना (हाइपोथिसिस) का निर्माण किया जाता है।
6. मौलिक शोध के लिए निर्मित शोध-अभिकल्प (रिसर्च डिजाइन) कठोर होता है अर्थात जिस शोध-अभिकल्प का निर्माण किया जाता है उसका हुबहू क्रियान्वयन किया जाता है।

5.6.3 मौलिक अनुसंधान की सीमाएँ

इसकी निम्नलिखित सीमाएँ हैं:

1. ज्ञान के कुछ ऐसे क्षेत्र है, जिनमें, मौलिक अनुसंधान की संभावना अति अल्प होती है, यथा- समाज विज्ञान एवं व्यवहारवादी विज्ञान।
2. शोध-अभिकल्प एवं नियंत्रित परिस्थिति इसकी दूसरी सीमा है क्योंकि व्यवहारिक रुप से शोध-अभिकल्प को हुबहू लागू करना संभव नहीं है।

5.6.4 व्यवहृत या अनुप्रयुक्त अनुसंधान

अनुप्रयुक्त अनुसंधान का अर्थ है, सिद्धान्त, अनुसिद्धान्त आदि का परिस्थिति विशेष में प्रयोग। शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त अनुसंधान का अर्थ 'शिक्षण-अधिगम परिस्थिति या मूल्यांकन की प्रक्रिया में सिद्धांतों या नियमों या अनुसिद्धांतों का शैक्षिक परिस्थिति में प्रयोग। मौलिक अनुसंधान प्रयोगशाला या जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में संपन्न किए जा सकते हैं। जॉन डब्लू० बेस्ट ने इस संदर्भ में कहा है कि है कि शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले अधिकांश अनुसंधान या अधिकांश शैक्षिक अनुसंधान में शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया, मूल्यांकन की प्रक्रिया या अनुदेशनात्मक सामग्री आदि के बारे में सामान्यीकरण का विकास करने का प्रयास किया जाता है अतः, ये स्वरुप से अनुप्रयुक्त होते हैं।

अनुप्रयुक्त अनुसंधान का उद्देश्य नए सिद्धांतों, नियमों एवं सामान्यीकरणों को जीवन की विभिन्न व्यावहारिक परिस्थितियों में लागू होने की संभावना का पता लगाना है ताकि प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों की गुणवत्ता में सुधार संभव हो सके। शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी, कक्षाकक्ष का वातावरण, विद्यालय का वातावरण, मापन एवं मूल्यांकन, शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन, आदि से संबंधित अध्ययन अनुप्रयुक्त अनुसंधान के उदाहरण हैं।

5.6.5 अनुप्रयुक्त अनुसंधान की विशेषताएँ

इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. पूर्व अन्वेषित ज्ञान का जीवन की व्यावहारिक परिस्थितियों में अनुप्रयोग किया जाता है ताकि व्यावहारिक परिस्थिति में होने वाले संख्यात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों का अनुमान लगाया जा सके।
2. इस प्रकार के शोध यह बताते हैं कि पूर्व निरुपित नियमों, प्रतिपादित सिद्धांतों, तथा शोध-परिणामों के समान्यीकरण का किन-किन दशाओं में संभावित उपयोग हो सकता है।
3. इस प्रकार के अनुसंधान में परिकल्पना अपेक्षित होती है।
4. इस प्रकार के शोध में भी प्रतिदर्श के अध्ययन से प्राप्त परिणाम को समग्र पर लागू कर समान्यीकरण किया जाता है

5. इस प्रकार के शोध में शोधकर्ता अनुसंधान द्वारा प्राप्त परिणामों या निष्कर्षों के आधार पर शैक्षिक परिस्थितियों में सुधार लाने हेतु सुझाव देने का प्रयास करता है।

5.6.6 अनुप्रयुक्त अनुसंधान की सीमाएँ

इस प्रकार के शोध की मुख्य सीमा है कि ये समय एवं धन की दृष्टि से अधिक खर्चीले होते हैं तथा ऐसे शोध के परिणाम का अन्य परिस्थितियों में सामान्यीकरण हो सकता है कि नहीं यह भी संदेहास्पद होता है।

अभ्यास प्रश्न

3. मौलिक अनुसंधान को परिभाषित करें।
4. अनुप्रयुक्त अनुसंधान को परिभाषित करें।
5. इस इकाई में दिए गए मौलिक अनुसंधान के उदाहरण को सूचीबद्ध करें।

5.7 मौलिक अनुसंधान, अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान का एक तुलनात्मक अध्ययन

मौलिक अनुसंधान, अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान का तुलानत्मक अध्ययन करने हेतु निम्नलिखित तालिका का विकास किया गया है। इस तालिका का विकास के० पी० पांडेय जी की द्वारा उनकी पुस्तक 'शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान' में मौलिक एवं क्रियात्मक अनुसंधान के मध्य अंतर स्थापित करने के लिए प्रयुक्त तालिका के आधार पर किया गया है।

तालिका सं० 1: मौलिक अनुसंधान, अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान का तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	मौलिक अनुसंधान	अनुप्रयुक्त अनुसंधान	क्रियात्मक अनुसंधान
उद्देश्य	नवीन सत्यों, नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन के द्वारा ज्ञान में वृद्धि करना।	नवीन सत्यों, नियमों एवं सिद्धांतों का जीवन के वास्तविक परिस्थितियों में प्रयुक्त होने की संभावना का पता लगाना तथा इनका प्रयोग कर प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों की गुणवत्ता में सुधार लाना है।	विद्यालयों की कार्य-प्रणाली को उन्नत करना। विद्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों, यथा- प्रधानाचार्य, अध्यापकगण, निरीक्षक, प्रबंधक आदि में संवेदनशीलता को उत्पन्न करना एवं में वैज्ञानिक चिंतन का

			भाव विकसित करना।
अनुसंधान की समस्या एवं उसका महत्व	सामान्य रुप से प्रत्यक्षीकृत परिस्थितियों से अनुसंधान की समस्या का जन्म। समस्या का क्षेत्र व्यापक होता है। शिक्षा विषयक नए सत्यों एवं तथ्यों को प्रकाशित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण।	नवीन सत्यों, नियमों एवं सिद्धांतों के वास्तविक परिस्थितियों में अनुप्रयोग संबंधी चिंतन से अनुसंधान की समस्या का जन्म। समस्या का क्षेत्र व्यापक। मौलिक अनुसंधान के समान ही महत्वपूर्ण।	अनुसंधान की समस्या विद्यालय विशेष से संबंधित होती है। समस्या का क्षेत्र संकुचित होता है। विद्यालय में सुधार अथवा परिवर्तन लाने की दृष्टि से समस्या महत्वपूर्ण है।
मूल्यांकन हेतु प्रयुक्त होने वाले मापदंड	नवीन सत्य, ज्ञान, सिद्धांत आदि की प्राप्ति। शोधकर्ता की सफलता उसकी उपाधि के रुप में आती है।	शोध द्वारा प्राप्त साक्ष्यों के अनुप्रयोग संबंधी संभावनाओं का किस सीमा तक पता लागा पाता है , यह इस प्रकार के अनुसंधान की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है।	विद्यालय की कार्य पद्धति में सुधार एवं परिवर्तन की सीमा तथा अनुसंधानकर्ता की कार्यप्रणाली एवं चिंतन में परिवर्तन घटित होना शोध की सफलता का मापदंड होता है।
अनुसंधान के लिए आधारभूत प्रतिदर्श	जीवसंख्या से सतर्कतापूर्वक वास्तविक प्रतिनिधि न्यादर्श का चयन। जीवसंख्या एवं न्यादर्श दोनों का आकार अपेक्षाकृत विस्तृत।	जीवसंख्या से सतर्कतापूर्वक वास्तविक प्रतिनिधि न्यादर्श का चयन। जीवसंख्या एवं न्यादर्श दोनों का आकार अपेक्षाकृत विस्तृत।	प्रतिदर्श के चयन के कोई आवश्यकता नहीं। जीवसंख्या पर ही अध्ययन का संचालन जीवसंख्या का आकार अपेक्षाकृत छोटा।
सामान्यी-करण	सामान्यीकरण मौलिक अनुसंधान का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष। सामान्यीकरण मानव जीवन के वर्तमान परिस्थितियों से सबंधित। इस प्रकार के सामान्यीकरण को पार्श्विक सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है।	सामान्यीकरण की दृष्टि से यह मौलिक अनुसंधान के समान है।	सामान्यीकरण शोध का उद्देश्य नहीं । यदि सामान्यीकरण की संभावना होती है तो उदग्र सामान्यीकरण संभव होता है।
अनुसंधान की रुपरेखा का अनुसरण	शोध-अभिकल्प या अनुसंधान की रुपरेखा अपने स्वरुप में कठोर होती है तथा उसका हुबहू	मौलिक शोध के समान ही कठोर शोध-अभिकल्प एवं हुबहू अनुपालन।	समायोजनशील शोध-अभिकल्प एवं अनुगमन में लोचशीलता अनुसंधान की रुपरेखा प्रस्तुत करने

	अनुगमन किया जाता है। अनुसंधान की रुपरेखा प्रस्तुत करने में विशेष तकनीकी ज्ञान अपेक्षित होता है		में किसी तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है।
कार्यकर्ता	अनुसंधानकर्ता शिक्षा विषय के स्नातक, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापक अथवा अनुसंधान अधिकारी होते हैं।	मौलिक अनुसंधान के समान ही।	अनुसंधानकर्ता विद्यालय के प्रधानाचार्य, अध्यापक, प्रबंधक एवं निरीक्षक स्वयं होते हैं।

स्रोत: उपरोक्त तालिका का विकास के पी पांडे की पुस्तक शिक्षा में 'क्रियात्मक अनुसंधान' में दी गई एक तालिका के आधार पर किया गया है।

5.8 कियात्मक अनुसंधान के सोपान

अनुसंधान किसी भी प्रकार का हो उसके संपादन की एक प्रक्रिया होती है। अब अगर प्रक्रिया है तो उसके कुछ निश्चित सोपान भी होंगे। चाहे मौलिक अनुसंधान हो या अनुप्रयुक्त अनुसंधान या फिर क्रियात्मक अनुसंधान सबको एक निश्चित प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है और हर प्रकिया के कुछ निश्चित सोपान होते हैं। इन सोपानों का अक्षरशः पालन ही अनुसंधान कार्य को सफल बनाता है। प्रख्यात शिक्षाविद के० पी० पान्डेय जी ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान' में इसके निम्नलिखित सोपान बताए हैं:

1. समस्या की पहचान करना;
2. समस्या को परिभाषित करना एवं उसकी सीमाएँ तय करना;
3. समस्या के कारणों को विश्लेषित करना;
4. क्रियात्मक अनुसंधान हेतु उपकल्पना हाइपोथिसिस का निर्माण करना;
5. क्रियात्मक अनुसंधान हेतु निर्मित उपकल्पना के परीक्षण हेतु रुपरेखा तैयार करना; तथा
6. क्रियात्मक उपकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णय लेना एवं उस निर्णयन के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना

के० पी० पान्डेय जी ने अपनी पुस्तक में क्रियात्मक अनुसंधान के इन सोपानों को एक रेखाचित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वह रेखाचित्र निम्नलिखित है:

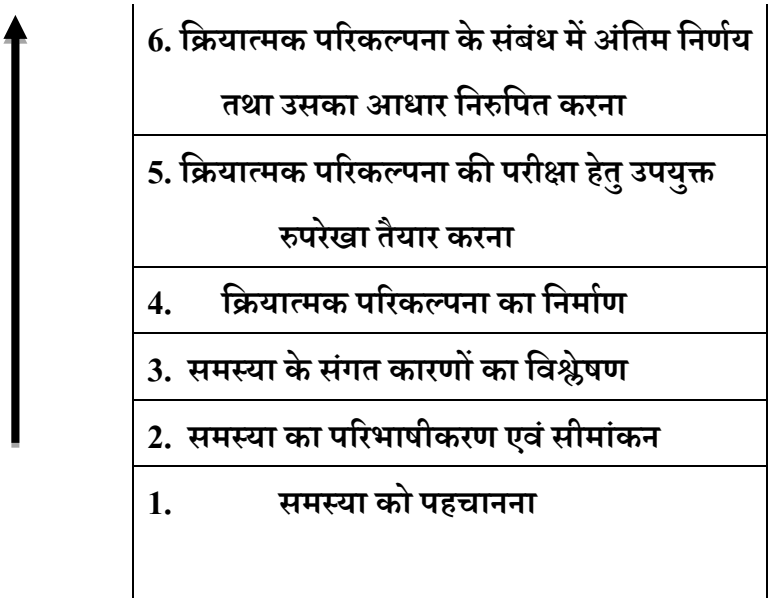

चित्र 1: क्रियात्मक अनुसंधान के सोपान

(स्रोत: के० पी० पांडेय जी द्वारा रचित पुस्तक 'शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान')

आइए अब इन सोपानों पर बारी-बारी से चर्चा करें।

i. **समस्या की पहचान करना-** अनुसंधान कार्य का आधार एक समस्या होती है। अतः, किसी भी प्रकार के अनुसंधान के लिए समस्या का होना आवश्यक है। फलस्वरुप समस्या की पहचान करना किसी भी प्रकार के अनुसंधान का प्रथम सोपान होता है। कियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया का पहला सोपान भी यही है। इस सोपान पर अनुसंधानकर्ता पहले उस क्षेत्र की पहचान करता है जिससे समस्या संबंधित होती है। क्षेत्र की पहचान करने के बाद वह समस्या की पहचान करता है। समस्या की पहचान एक दुष्कर कार्य है। इसके लिए अनुसंधानकर्ता को स्वयं को संवेदनशील बनाना होता है तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण उत्पन्न करना होता है।

ii. **समस्या को परिभाषित करना एवं उसकी सीमाएँ तय करना-** सिर्फ समस्या की पहचान कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। अनुसंधान कार्य के सफल संचालन के लिए समस्या को परिभाषित करना होता है। यह क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया का दूसरा सोपान है। समस्या के परिभाषीकरण से आशय समस्या के कथन में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ को सुस्पष्ट करने से है। इस सोपान पर यह ध्यान रखा जाता है कि कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग ना हो जाए जिसके कई अर्थ निकलते हों। समस्या का विश्लेषण कर उसका विशिष्ट स्वरुप निश्चित करना समस्या का सीमांकन कहलाता है। समस्या

का स्वरुप जितना विशिष्ट होता है अनुसंधान कार्य के सफल होने की संभावना उतनी ही प्रबल होती है।

iii. **समस्या के कारणों का विश्लेषण-** समस्या के परिभाषीकरण एवं सीमांकन के बाद अर्थात जब समस्या का स्वरुप विशिष्ट हो जाता है उसके बाद अनुसंधानकर्ता क्रियात्मक अनुसंधान के तीसरे सोपान समस्या के कारणों के विश्लेषण पर आता है। यहाँ अनुसंधानकर्ता इस बात का विचार करता है कि समस्या का वास्तविक संबंध किन-किन कारणों से हो सकता है। वह कारणों का पता लगाने के लिए अनेक साक्ष्यों को एकत्र करता है। फिर वह समस्या के संभावित कारण एवं उनके साक्ष्यों की एक सूची बनाता है।

iv. **क्रियात्मक अनुसंधान के लिए उपकल्पना का निर्माण-** उपकल्पना का किसी भी अनुसंधान में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसके द्वारा अनुसंधानकर्ता को एक स्पष्ट दिशा मिलती है जिस दिशा में वह अनुसंधान के सफल संचालन का प्रयास करता है। क्रियात्मक उपकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उपकल्पना में अनुसंधान के उद्देश्य एवं अपनाई जानेवाली कार्य-प्रणाली का स्पष्ट उल्लेख किया गया हो। क्रियात्मक उपकल्पना के दो पक्ष होते हैं - लक्ष्य पक्ष एवं क्रिया पक्ष। लक्ष्य पक्ष में निर्धारित लक्ष का उल्लेख होता है एवं क्रिया पक्ष में उसे प्राप्त करने के लिए की जानेवाली क्रिया का।

v. **क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण हेतु उपकल्पना निर्माण-** यह क्रियात्मक अनुसंधान का पाँचवा सोपान होता है। यहाँ अनुसंधानकर्ता क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण के लिए उपयुक्त रुपरेखा या अभिकल्प का निर्माण करता है। रुपरेखा का निर्माण करते समय यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि इससे विद्यालय के अन्य कार्यक्रमों में किसी प्रकार का कोई व्यवधान न हो। इस परीक्षण के आधार पर अनुसंधानकर्ता यह निर्णय लेता है कि उसे अपने कार्यपद्धतियों में क्या परिवर्तन लाना है एवं कौन सी नई क्रियाओं को प्रारंभ करना है? यह रुपरेखा कठोर नहीं होती है अर्थात आवश्यकता पड़ने पर इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन किया जा सकता है।

vi. **क्रियात्मक परिकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णय तथा उसका आधार-** यह क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया का अंतिम सोपान है। यहाँ अनुसंधानकर्ता क्रियात्मक उपकल्पना के संबंध में निर्णय लेता है। इस निर्णय में उसके पास दो विकल्प होते हैं- सत्य और असत्य। यदि उपकल्पना सत्य प्रतीत होती है तो अनुसंधानकर्ता परिस्थितियों में अनुसंधान के अनुकूल परिवर्तन लाता है। लेकिन क्रियात्मक अनुसंधान यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। यह अनवरत चलता रहता है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और इस प्रकार इसका चक्र चलता रहता है। क्रियात्मक उपकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णय लेने से तात्पर्य यह है कि अनुसंधानकर्ता यह निश्चय करता है कि जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर क्रियात्मक उपकल्पना का निर्माण किया गया था उस उद्देश्य की प्राप्ति हुई या नहीं। क्रियात्मक उपकल्पना के दो पक्ष- लक्ष्य पक्ष और क्रिया पक्ष को यहाँ ध्यान में रखा जाता है। क्रिया पक्ष में जिस क्रिया के द्वारा जिस लक्ष्य की प्राप्ति का संकेत किया जाता है अगर वह प्राप्त हो जाता है तो क्रियात्मक अनुसंधान को

सफल घोषित किया जाता है और यदि लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है तो क्रियात्मक अनुसंधान को अनुपयोगी या अप्रमाणिक कहा जाता है।

ऊपर क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया के सोपानों को प्रस्तुत किया गया है। एक क्रियात्मक अनुसंधान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुसंधानकर्ता इन सोपानों को किस प्रकार अपनाता है। चूँकि अनुसंधान की एक निश्चित प्रक्रिया होती है और प्रक्रिया का यह आशय होता है कि इसमें निहित विभिन्न सोपानों को एक निश्चित क्रम में क्रियान्वित किया जाए। अतः, क्रियात्मक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता से यह उम्मीद की जाती है कि वह इन सोपानों को उस क्रम में क्रियान्वित करेगा जिस क्रम में ये बताए गए हैं।

5.9 क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता

क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कोरी ने कहा कि "हमारे विद्यालय तब तक ऐसी गतिविधियों को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं जिन्हें धारित रखने एवं सुधारने की उनसे अपेक्षा की जाती है, जब तक शिक्षकगण, विद्यार्थीगण, पर्वेक्षकगण, प्रशासकगण तथा विद्यालयों के संरक्षकगण सतत इस बात का परीक्षण नहीं करते कि वे क्या कर रहे हैं, अकेले तथा समूह में उन्हें अपनी कल्पना का अर्जनशील एवं रचनात्मक ढंग से प्रयोग करना आना चाहिए, इस उद्देश्य से की ऐसी गतिविधियों को पहचानना जा सके जिन्हें आधुनिक जीवन की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए बदलने की जरुरत है, ऐसी गतिविधियों को साहसपूर्वक लाना जो बेहतर आशाएँ विकसित करती हैं तथा जिन की उपयोगिता के बारे में विधिवत एवं व्यवस्थित रुप में साक्ष्यों को एकत्र करने की जरुरत है।"
स्टीफेन कोरी का यह कथन बहुत ही व्यापक है इस कथन में समाहित मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं:

- एक विद्यालय से प्रत्यक्ष रुप से जुड़े समस्त व्यक्तियों तथा शिक्षक, विद्यार्थी, पर्यवेक्षक, प्रशासक, आदि को अपने कृतियों का बारीकी से परीक्षण करना चाहिए।
- विद्यालय के कुछ ऐसे कार्य-कलाप होते हैं जिन्हें सुरक्षित रखने या जिन में सुधार करने की आवश्यकता होती है।
- इन गतिविधियों में सुधार संभव है लेकिन
- ऐसी गतिविधियों को पहचान हो सके जिनको, आधुनिक जीवन की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए, परिवर्तित करना आवश्यक है।

क्रियात्मक अनुसंधान इन सारे कार्यों को करने में सहायता करता है। क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता को निम्नलिखित माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. विद्यालय की कार्य-प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता है;

2. तकनीकी के विकास के परिणामस्वरुप विद्यालय से समाज की बढ़ती हुई अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए इसकी आवश्यकता है;
3. विद्यालय से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित समस्त व्यक्तियों यथा शिक्षक, विद्यार्थी, निरीक्षक, प्रबंधक आदि को अपनी कार्य पद्धति का वैज्ञानिक ढंग से मूल्यांकन करने तथा इसके साथ ही यदि आवश्यक हो तो उनमें परिवर्तन लाने में सक्षम बनाना;
4. छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु विद्यालय में पाठ्यसहगामी क्रियाओं को प्रभावी ढंग से आयोजित करने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता पड़ती है;
5. विद्यालय के विभिन्न समस्याओं को सरलता से प्रभावी समाधान प्राप्त करने के लिए;
6. हिंदी शिक्षण-एवं अधिगम के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न समस्याओं यथा- त्रुटिपूर्ण वर्तनी एवं उच्चारण की समस्या, अरुचि की समस्या आदि का समाधान प्राप्त करने के लिए;
7. सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल विद्यालय पाठ्यक्रम एवं अन्य क्रिया-कलापों को समायोजित करने के लिए; तथा
8. विद्यालय में समूह कार्य को बढ़ावा देने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता है।

उपरोक्त विवेचन से क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। यदि विद्यालय अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है तो उसे क्रियात्मक अनुसंधान को अपनाना होगा।

अभ्यास प्रश्न

6. क्रियात्मक अनुसंधान के सोपानों को सूचीबद्ध करें।
7. क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता के संबंध में स्टीफेन एम० कोरी के जिस कथन का उल्लेख इस इकाई में किया गया है का उल्लेख करें।

5.10 क्रियात्मक अनुसंधान की योजना का उदाहरण

- **समस्या-** लेखन कार्य नहीं करने से वर्तनी संबंधी उपलब्धि पर बुरा प्रभाव प्रभाव पड़ता है।
- **समस्या क्षेत्र-** छात्रों द्वारा लेखन कार्य नहीं किया जाना।
- **समस्या का सीमांकित रुप-** कक्षा 8 के छात्रों में हिंदी भाषा में लेखन संबंधी आदतों में सुधार लाना।
- **परिभाषीकरण-** लेखन कार्य संबंधी आदत से यहाँ आशय श्रुतलेखन से है।

- **समस्या के कारणों का विश्लेषण-** तालिका सं० 2, जिसके प्रारुप का निर्माण के० पी० पांडेय जी द्वारा अपनी पुस्तक "शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान" में इस आशय के लिए निर्मित प्रारुप के आधार पर किया गया है, में समस्या के कारणों का विश्लेषण किया गया है।

तालिका सं० 2: समस्या के कारणों का विश्लेषण

समस्या का परिभाषित एवं सीमांकित रुप	समस्या के संभावित कारण	साक्ष्य
कक्षा 8 के छात्रों के हिंदी भाषा में लेखन संबंधी आदतों में सुधार लाना।	1. घर में श्रुतलेखन पर जोर ना देना।	छात्रों से पूछकर तथा उनके अभिभावकों से बातचीत कर यह पता लगाया।
	2. घर के अन्य सदस्यों द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग नहीं करना।	घर के विभिन्न सदस्यों के साथ कई बार संप्रेषण करके निश्चित किया गया। हिंदी भाषा के प्रति अभिवृत्ति मापने के लिए एक प्रश्नावली का निर्माण कर अभिभावकों पर प्रशासित किया गया तथा उससे प्राप्त परिणाम के आधार पर यह निश्चय किया गया।
	3. विद्यालय में शिक्षकों द्वारा हिंदी भाषा में श्रुतलेखन के लिए छात्रों को अभिप्रेरित नहीं करना।	अध्यापकों से साक्षात्कार किया गया और उनसे पूछा गया कि क्या वे हिंदी भाषा में श्रुतलेखन के लिए छात्रों को अभिप्रेरित करते हैं या नहीं।

कियात्मक उपकल्पना का निर्माण – निम्नलिखत दो योजनाओं का निर्माण किया गया है:

1. यदि विद्यालय समय सारणी में हिंदी भाषा में श्रुतलेखन को स्थान दिया जाए तो छात्रों के लेखन संबंधी आदतों में सुधार होगा।
2. यदि अध्यापक हिंदी भाषा में एक पृष्ठ श्रुतलेखन को प्रतिदिन विद्यार्थियों को गृह कार्य के रुप में देता है, उनकी नियमित जाँच भी करता है तथा नहीं लिखनेवाले छात्रों को यथोचित दंड देता है, तो विद्यर्थियों लेखन संबंधी आदतों में सुधार होगा।

क्रियात्मक उपकल्पना के परिक्षण हेतु उपयुक्त रुपरेखा का निर्माण- के० पी० पांडेय जी द्वारा अपनी पुस्तक "शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान" में इस आशय के लिए निर्मित प्रारुप के आधार पर विकसित तालिका सं० 3 में क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण हेतु उपयुक्त रुपरेखा का निर्माण किया गया है।

तालिका सं० 3: क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण के लिए उपयुक्त रुपरेखा

प्रारंभ किए जा सकने वाले कार्यक्रम	क्रियान्वयन की विधि	आवश्यक साधन	समय
विद्यालय समय-सारणी का एक स्पष्ट रुप तैयार करना।	अध्यापक विद्यालय में अन्य शिक्षकों एवं गैरशैक्षिक कर्मियों के साथ मिलकर यह कार्य करेगा।	विद्यालय की समय सारणी	3 दिन
समय सारणी में रिक्त चक्रों की सूची बनाएगा।	अध्यापक समय- सारणी के स्पष्ट रुप को देखकर यह कार्य स्वयं करेगा।	समय सारिणी का स्पष्ट रुप	2 दिन
समय-सारणी के ऐसे चक्र जो रिक्त तो नहीं है लेकिन रिक्त किए जा सकते हैं की सूची बनाना।	शिक्षक समय सारणी का स्पष्ट रुप देखकर यह कार्य स्वयं करेगा।	समय सारणी का स्पष्ट रुप	2 दिन
हिंदी भाषा में श्रुतलेखन को समय सारणी में शामिल करने के लिए विद्यालय के प्रधानाध्यापक से बातचीत करना।	शिक्षक प्रधानाध्यापक के साथ व्यक्तिगत रुप से मिलकर इस विषय पर बातचीत कर सकता है।	समय-सारणी का स्पष्ट रुप एवं बनाई गई सूचियाँ	1 सप्ताह
हिंदी भाषा में श्रुतलेखन देने के लिए प्रयुक्त की जा सकने वाली रचनाओं की सूची बनाना।	शिक्षक हिंदी भाषा के पाठ्य पुस्तक एवं समाचार पत्रों का विश्लेषण कर निश्चित करेगा।	हिंदी भाषा के पुस्तक एवं विद्यालय के पुस्तकालय में आने वाले समाचार पत्र	3 दिन
कक्षा के आकार के आधार पर हिंदी भाषा में श्रुतलेखन कार्य का स्वरुप (यांत्रिक/मौखिक) निश्चित	शिक्षक उपस्थिति पंजी के आधार पर कक्षा में पंजीकृत छात्रों की संख्या एवं कक्षा में नियमित रुप से उपस्थित रहने	श्रुतलेखन के स्वरुप (यंत्रों की सहायता से प्रसारित/ मौखिक रुप से उच्चरित) के आधार पर टेप रिकॉर्डर,	1 सप्ताह

करना।	वाले छात्रों की संख्या के आधार पर कक्षा के आकार का अनुमान लगा सकता है।	कैसेट स्पीकर्स, पाठ्यपुस्तक, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ आदि।	
लिखित कार्यो को प्रति सप्ताह निश्चित समय पर जाँचना तथा उन्हें छात्रों को लौटा देना।	शिक्षक विद्यालय के अन्य शिक्षकों के साथ मिलकर और यदि आवश्यकता पड़े तो कुछ वरिष्ठ एवं प्रबुद्ध छात्रों की सहायता ले कर इस कार्य को कर सकता है।	कोई साधन विशेष की आवश्यकता नहीं है।	एक शैक्षणिक सत्र
लिखित कार्यों की जाँच करते समय अशुद्धि अंकन एवं अशुद्धि निवारण हेतु सुझाव को स्थान देना।	शिक्षक विद्यालय के अन्य शिक्षकों के साथ मिलकर और यदि आवश्यकता पड़े तो कुछ वरिष्ठ एवं प्रबुद्ध छात्रों की सहायता ले कर इस कार्य को कर सकता है।	लाल कलम	एक शैक्षणिक सत्र

कियात्मक परिकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णयन तथा उस निर्णयन के पक्ष में प्रस्तुतीकरण - के० पी० पांडेय जी द्वारा अपनी पुस्तक "शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान" में इस आशय के लिए निर्मित प्रारुप के आधार पर विकसित तालिका सं० 4 में क्रियात्मक उपकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णयन तथा उस निर्णयन के पक्ष में तर्क प्रस्तुतीकरण हेतु उपयुक्त रुपरेखा का निर्माण किया गया है।

तालिका सं० 4: कियात्मक परिकल्पना के संबंध में अंतिम निर्णयन तथा उस निर्णयन के पक्ष में प्रस्तुतीकरण

समस्या का परिभाषित एवं सीमांकित रुप	**उपकल्पना**	**क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण विधि**	**क्रियात्मक उपकल्पना के परीक्षण से संबंधित**	
			साक्ष्य	**अंतिम निर्णय**
कक्षा 8 के छात्रों के हिंदी भाषा में लेखन संबंधी आदतों में सुधार लाना।	यदि विद्यालय समय सारणी में हिंदी भाषा में श्रुतलेखन को स्थान दिया जाए तो छात्रों के लेखन संबंधी आदतों	समय सारणी में निश्चित किए गए चक्र में विद्यार्थियों को श्रुतलेखन देगा तथा निश्चित तिथि पर	छात्रों की अभ्यास-पुस्तिका के द्वारा। छात्रों की अभ्यास-पुस्तिका के द्वारा।	यदि छात्र स्वतः लेखन प्रारंभ करते हैं तो क्रियात्मक उपकल्पना को प्रामाणिक माना

	में सुधार होगा। यदि अध्यापक हिंदी भाषा में एक पृष्ठ श्रुतलेखन को प्रतिदिन विद्यार्थियों को गृह कार्य के रुप में देता है, उनकी नियमित जाँच करता है तथा नहीं लिखने वाले छात्रों को यथोचित दंड देता है तो लेखन संबंधी आदतों में सुधार होगा।	उनकी जाँच कर करेगा। शिक्षक छात्रों के गृहकार्य की अभ्यास-पुस्तिका में लिखे गए श्रुत लेखन की जाँच करेगा।		जाएगा। यदि छात्र गृह कार्य अभ्यास पुस्तिका में श्रुतलेखन कार्य नियमित रुप से करते हैं तो उपकल्पना को प्रामाणिक माना जाएगा।

5.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई में क्रियात्मक अनुसंधान का वर्णन किया गया है। इकाई की शुरुआत क्रियात्मक अनुसंधान की परिभाषा की गई है। परिभाषीकरण के बाद अनुसंधान के विभिन्न रुपों यथा, मौलिक अनुसंधान एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान के साथा क्रियात्मक अनुसंधान के तुलनात्मक अध्ययन को अत्यंत ही सुंदर ढंग से तालिकाबद्ध किया गया है। इकाई में क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता को भी स्थान दिया गया है। क्रियात्मक अनुसंधान के विभिन्न सोपानों का समुचित वर्णन भी इस इकाई में मिलता है। क्रियात्मक अनुसंधान की योजना को एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट कर शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के लिए इसे और उपयोगी बना दिया गया है। इस प्रकार यह इकाई अत्यंत ही शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में शामिल व्यक्तियों के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.3 देखें।
2. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.3 देखें।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.6.1 देखें।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.6.4 देखें।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.6.1 देखें।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंड 5.8 देखें।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए इस इकाई का खंद 5.9 देखें।

5.13 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रंथ

1. कोरी, स्टीफेन एम.(1953). एक्शन रिसर्च टू इमप्रूव स्कूल प्रैक्टीस, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशंस, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क.
2. कोहेन, लूविस तथा मैनियन, लॉरेंस(1980). रिसर्च मेथड्स इन एजुकेशन, क्रूम हेल्म: लंदन, नई दिल्ली.
3. पांडेय, के. पी. तथा पांडेय अमिता (2005)). शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.
4. बेल, जुडिथ(1996). हाउ टू कम्प्लीट योर रिसर्च प्रोजेक्ट स्कसेसफुली, यू. बी. एस. पब्लिशर्स, दिल्ली।

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. क्रियात्मक अनुसंधान को परिभाषित करें।
2. क्रियत्मक अनुसंधान की विशेषताओं एवं सीमाओं का वर्णन करें।
3. मौलिक अनुसंधान, अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान का तुलनात्मक अध्ययन कर उनमें समानता एवं अंतर स्थापित करें।
4. क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया का सोदाहरण वर्णन करें।
5. हिंदी शिक्षण करते समय आपने जिन समस्याओं का अनुभव किया है उनमें से किसी एक के समाधान के लिए एक क्रियात्मक अनुसंधान योजना का निर्माण करें।